जीवनी

परम संत परम दयाल स्वामी गोविंद कौल



पुश्करनाथ रैणा

ॐ

जीवनी

परम संत परम दयाल स्वामी गोविंद कौल



पुश्करनाथ रैणा

प्रकाशक	:–	पुश्करनाथ रैणा M.A. B.Ed. B.E.C. 96–7बी, मनोरमा विहार, पटा· बोडी जम्मू–2 दुरभाष : 2502888
सं.	––	500
		© सर्वाधिकार सुरक्षित
मूल्य	–	100 रुपये
मिलने का पता	–	स्वामी गोविंद कौल, कमला, पंडित दयाल आश्रम (सामने ईश्वर आश्रम) मुख्य गली, महेन्द्र नगर, जम्मू – 180002
तिथि	–	15 सितंबर, 2006

मुद्रक– कॉपी सेंटर, नागपुर (महा.)

संजीवनी ज्ञान केन्द्र को सप्रेम भेंट

प्यासे साधकों के लिए सागर इसे कहो ।
भटके पथिकों के लिए रहबर इसे कहो।
गोविंद ने दिया सार यह वेदों का पुश्कर।
नेत्र हीनों के लिए इसे नयन ज्योति कहो।

श्री गुरुवे नमः

सर्व वेदान्त सिद्धान्त गोचरम तमगोचरम।
गोविन्दम परमानंदम सद्गुरुम प्रणतोस्म्यहम। 1

अर्थ, मैं गोविन्द की वन्दना करता हूं जिसका स्वभाव परमानंद है। जो सद्गुरु है, जो वेदांत द्वारा ही जाना जाता है, तथा जो मन वाणी की पहुंच से परे है।

ओम सतचिद्‌ानंद गोविन्द निस्पंद नमामिहं।
चिदानन्द्‌ह सदानंदह परमानन्दह नमामिहं।
दीनबन्दह दयास्यन्दह, निर्द्वन्दह नमामिहम।
सानि ज़ुवह सदाशिवह गोवेन्दह नमामिहम। 2

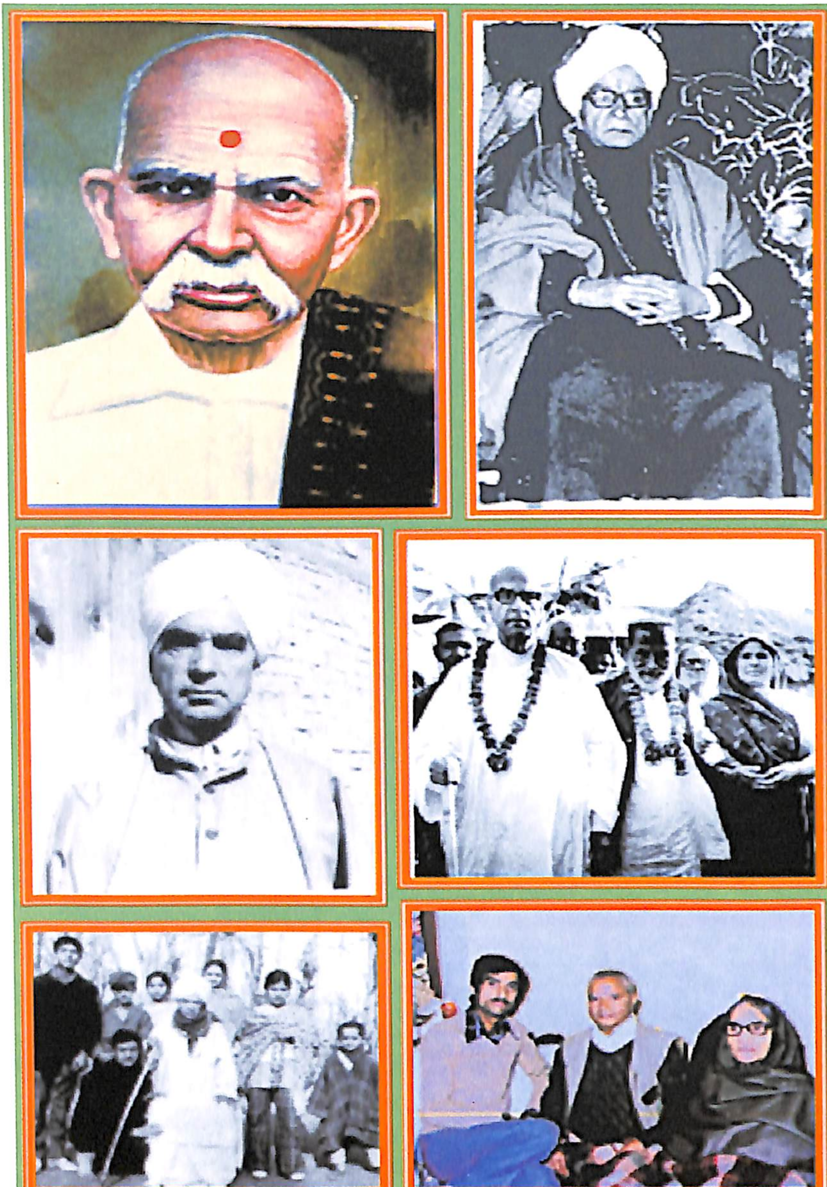
अर्थात ओम जिसका नाम है, जो सत, चित्त, आनंद रूप है। स्पंद से पहले की अवस्था वाला होने के नाते निस्पंद रूप है। जो सदा परमानंद रूप है, निर्द्वन्द है अर्थात जिसके सिवा कोई दूसरा है ही नहीं, जो दीनों का बन्धु तथा दया का सागर है, ऐसे सदाशिव हमारे प्राण गोविंद को मैं नमस्कार करता हूं।

सूर्यतुल्यंप्रभायुक्तमसौमसमंहिसौख्यदम।
गंगानिभंसदाशुद्धंगोविंदमनौमिसद्गुरुम।
आसीदवाणीसुदास्रोतमदयासिंदुर्मनस्तथा।
ब्रहमतेजयुतमसन्तंगोविंदमनौमि सद्गुरुम। 3

अर्थात सूर्य की जैसी दीप्ति वाले और चंद्रमा जैसा सुख दाता, गंगा की तरह नित्य शुद्ध, जिसकी वाणी से अमृतधारा बह चली, ऐसे मेरे सदगुरु श्री गोविंद को मैं नमस्कार करता हूं अर्थात अपने आपको उनमें मिलाता या फना करता हूं।

मैं अपने माता पिता के गुरु श्रीरामजी महाराज धन्यहामी, जिनका आशीर्वाद अभी भी मेरे साथ है, जिनके सत्संग एवं कृपा से मेरे मनमें भगवत प्राप्ति की लालसा जाग उठी तथा सदा संतों का सत्संग मिलता रहा, को दंडवत करता हूं जिनकी दया व मेहर से मेरे हर शुभ कार्य में कोई भी बाधा नहीं आई। तथा

कशमीर की मिट्टी और उससे उत्पन्न समस्त संतों, मेरे विद्या गुरुजनों, महामहिम डाक्टर बलजीनाथ पंडित तथा डाक्टर त्रिलोकी नाथ गंजू ,को मेरा सादर नमन स्वीकार हो।

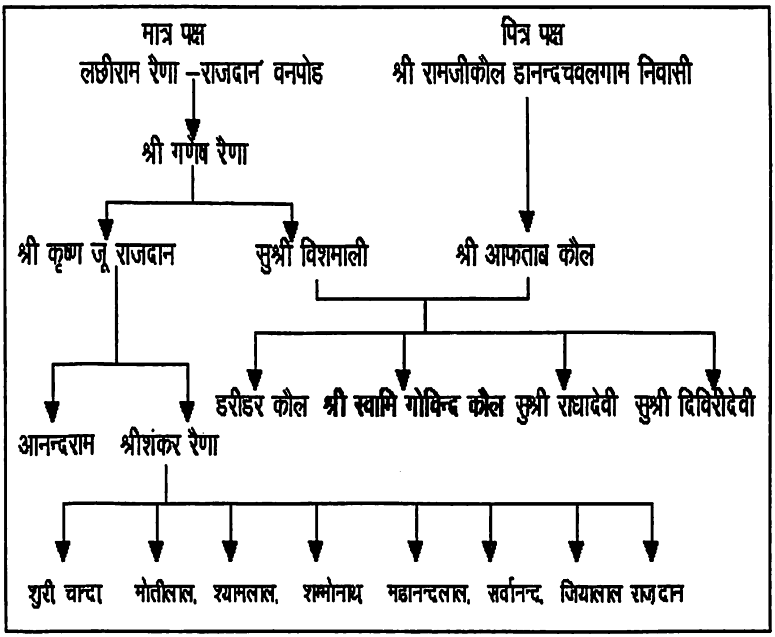


1 दाता दयाल शिवब्रतलाल 2–3स्वामीजी 4 बाबा फकीरचंद के साथ 5 बच्चों के सग 6 सुरेंदरजी माता कमलावती काचरू एव पडित दयाल पृथ्वीनाथजी के साथ

अनुक्रमणिका

वंशावली

काश्मीर के महान संतों के शिरोमणि परम दयाल परम संत **स्वामि गोविन्द कौल महाराज** (10.3.1892 to 9.8.1973) वनपोह निवासी की वंशावली । गोत्र– दतात्रिय



प्रस्तावना

परमसंत स्वामी गोविन्द कौल महाराज के अध्यात्मिक अनुभव की अभिव्यक्ति उनके भजनों में निहित हैं। एक रचनाकार की रचना में उनके जीवन का चित्रण होता है। संत कवि होने के नाते यह बात अनिवार्य हो जाती है कि स्वामी जी की संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाए ताकि स्वामीजी के शिष्यों की इच्छा भी पूरी हो जाए तथा सामान्य जनता को भी स्वामीजी के अनुभवों का लाभ मिल सके। स्वामीजी ने अपने भजनों में अध्यात्म के भिन्न भिन्न चक्रों के गहन अनुभवों की अभिव्यक्ति प्रभावात्मक ढंग से अति सरल शैली में की है। जिनको पढकर आनंद की अनुभूति होती है। ऐसे महान संत के बारे में कुछ लिखना सूर्य को दिया दिखाने के बराबर है।

यह बात सत्य है कि ऐसे महान आध्यात्मिक पुरुष अपने परिचय के बारे में उदासीन ही रहते आए हैं, संभवतः इसलिए कि ऐसे संत देह अध्यास को छोड चुके होते है तथा कोई भी वस्तु स्थाई नहीं रहती तो नाम पीछे रहे या न रहने का इनके लिए कोई प्रयोजन नहीं? स्वामीजी के शब्दों में

> कृष्ण रूदा राम रूदा, रोज़ि दय सुन्द नाव।
> ज़ाल रुस्तुम साम रुदा रोज़ि दय सुंद नाव।
> काहशथ पोर स्वन् लंका म्यच़ि स्ृतिय मीज्य ना।
> द्वारिका ब्रजगाम रूदा रोज़ि दय सुंद नाव।
> खास रूदा आम रूदा, रोज़्या व्वन्य गोव्यन्द कौल,
> मोल रूदा माम रूदा। रोज़ि दय सुंद नाव। ग,अ,भ 74,2

अर्थ – इस संसार में प्रभु के नाम के सिवा कुछ भी शेष रहने वाला नहीं। जब इस संसार में राम, कृष्ण, रुस्तुम, सोने की लंका, द्वारिका, ब्रजगांव, खास तथा आम, मातापिता तथा मामा नहीं रहे तो कौन रहेगा? गोविंद कौल भी इस संसार में शेष नहीं रहेगा। फिर भी शेष संसार के लिए उनका जीवन चरित्र जानना अनिवार्य हो जाता है। पूर्व संतों जैसे तुलसी, कबीर, सूर, ललीश्वरी, नुन्दऋषि, अभिनवगुप्त इत्यादि का जन्म मृत्यु तथा जीवनचरित्र न्यूनाधिक अनुमान पर ही आधारित है। इसलिए स्वामीजी की संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत करने का मात्र प्रयत्न है। यह संकलन

किसी शोध कार्य के अभिप्राय से नहीं किया गया है, अपितु सामान्य बातों को जनता तक पहुंचाने के लिए तथा आने वाली पीडियों में कशमीर के कुछ महान संतों की विचारधारा की जानकारी देने के लिए एक छोटा सा प्रयास है। इसके संकलन में स्वामीजी के प्रिय भक्तों का विशेष योगदान है। फिर भी कोई भी प्रामाणिक संशोधन अमान्य नहीं है।

स्वामीजी के करीब 459 भजन भक्तो के हाथ लगे है, जो पहले चार भागों में छपवाए गए थे और अब तीन भागों में पुनः मुद्रित करवाए गए हैं। पहली भजन माला 'गोविंदअमृत' का प्रथम संस्करण, स्वामीजी के प्रिय शिष्य श्री पृथ्वीनाथजी पंडित दयाल मम्बई निवासी द्वारा 23 नवंबर 1970 ई को छपवाई गई थी। इसके बाद जितने भी भजन स्वामी जी के भक्तों के हाथ लगे हैं, महेंन्दनगर आश्रम जम्मू तथा गोविंद कौल आश्रम श्रीनगर द्वारा तीन भागों में छपवाए गए हैं। बहुत से भजन स्वामीजी ने अपने भक्तों को संबोधित किए है। स्वामीजी भक्तों को ऐसे भजन पत्रों का उत्तर देते हुए लिखकर भेजते थे। संत कथा के 441 दोहे भी इन्हीं के साथ छपवाए गए हैं।

इस पुस्तक में स्वामीजी के काव्य का वर्गीकरण, विशेषताएं, संत मत एवं राधास्वामी शब्द का संक्षिप्त परिचय, सहज ज्ञान, सहज समाधि, भक्ति, सुरत शब्द योग अभ्यास, अभ्यास के चक्रों का व्योरा, चक्रों के आधार पर कई कविताओं का संभावित अर्थ तथा विशलेषण करने का प्रयास, कविताओं में समन्वयात्मक दृष्टिकोण, गुरु, स्वधर्म पालन, आचार विचार, संतों की शक्ति और भक्ति, संत कथा, नुन्दऋषि की पूर्वजन्म की कहानी, उक्तियां, सिद्धियां, तथा पातंन्यजल योग, परमशिव का आध्यात्मिक नाटक, कुडिलिणी योग चक्र, दयाल देश की तालिकाएं भी प्रस्तुत की गई हैं। इसके अतिरिक्त कशमीर का गौरवमय स्थान, महानता, यहां उत्पन्न संतों सोफियों की एक झलक तथा भक्तों के प्रकार आदि और कुछ मौलक बातें भी प्रस्तुत हैं। यहां के इतिहास लिखने की गोरवमय परंपरा के साथ साथ विपरीत वातावर्ण में भी काव्य की धारा अविरल भाव से बहती चली आई है, जिस में संत मिर्ज़ काक,

परमानंद, प्रकाश कुर्यगामी, लक्षमण जू नागामी, अबदुल अहद ज़रगर आदि हैं। उनकी रचनाओं में तत्कालिक परस्थितियों के संकेत आदि प्रस्तुत करने का यहां पर प्रयत्न किया गया है।

जीवनी लिखने के इस शुभ कार्य को पूर्ण करने में स्वामीजी के प्रेमी भक्तजनों ने मौखिक तथा लिखित रूप में जानकारी दी उनका आभार प्रगट करना अनिवार्य है। उन में क्रालबब के गुरुभाई तथा संत नंदलाल जी टिकर के शिष्य श्री कृष्णजी, स्वामीजी के शिष्य रामजी बान (जो अपने को स्वामीजी के डयोढीवान कहते हैं), कमलाजी रैणा (वनपोह), चवगांव निवासी श्यामलाल कौल चूनीजी, माता परमीश्वरी, तथा लुप्त हुई भजन पंक्तियों के संकलन, उनके शुद्ध रूप को पाने में तथा हस्तलिखित भजनों के साथ तुलना करने में सहायक, रूपा गंजू, श्रीहरीकृष्ण रैणा (प्रस्तुत पुस्तक लिखवाने के प्रेरक), श्री बंसरीलाल कोतवाल आदि हैं। इनके अतिरिक्त फार्सी भाषा का अनुवाद करने में सहायक श्यामलाल रैणा लारीयार, कुछ महत्वपूर्ण प्रामाणिक तथ्यों का संकेत देने में सहायक श्री विजय कौल नाज़िर को भी धन्यवाद देता हूं। इस पुस्तक के गणकीकरण अर्थात कंप्यूट्राइज़, एडिटिंग तथा मुद्रण करने तथा अंतिम रूप देने में अतुलनीय योगदान देने वाले पुत्र डाक्टर अवतार कृष्ण रैणा आशीर्वाद के योग्य हैं।

आशा है कि सामान्य जनता स्वामीजी के जीवन के अनुभव का अधिकतम लाभ उठा सकेगी।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रयोग की गई कशमीरी भाषा के ध्वनि चिन्ह सर्वथा अनुकूल तथा पूर्ण है, कशमीरी भाषा का प्रत्येक शब्द का उच्चारण इन ध्वनि चिन्हों से संभव हो सकता है। इसकी यह विशेषता है कि गणक (Computer) पर अंग्रज़ी बटनपटी (Keyboard) द्वारा सरलता से इसको अंकित (Type)किया जा सकता है। इसलिए यह ध्वनि चिन्ह कशमीरी लिखने हेतु सफलता से प्रयोग में भी लाए जासकते हैं। इनमें से कुछ चिंह श्री श्यामलाल राज़दान कृत श्रीकृष्णजू राज़दान की कविता संग्रह कृष्णवाणी में प्रयोग में लाए गए हैं।

पुश्करनाथ रैणा

ध्वनि चिन्ह

इस पुस्तिका में प्रयोग किए गए ध्वनि चिंहः–

च'र	चिड़िया	sparrow	ग'र	घडी	watch
दा'र	खिडकी	window	ख्र	फिसलन	slip
स्च़	दर्ज़ी	tailor	त्र	सर्दी	cold
स्त्य	साथ	along	दो'र	मज़बूथ	strong
दो'दमुत	जला हुआ	burnt	ने'ठ न्यठ	अंगूठा	thumb
छे़'ठ	शेष	residue	छ'त्र्य	छतरी	umbrella
बीठि	बैठे	sat			

प्रत्येक भजन अंश के पश्चात ग,अ,भ, संकेत दिए गए हैं जिसका अर्थ है गोविंद अमृत भजन संख्या तथा पुस्तक संख्या। इसी प्रकार मन,पं,से अर्थ है मन पंपोश भजन संख्या दी गई है। भजन अंश के अंत में यथा संभव अर्थ दिया गया है।

अथस क् ़'च़ ओं'गजि छे'ह ? ओं'गुल, ज़ो'गुल, काठ, किस , ने'ठ न्यठ म्वठ,

कशमीर की सांस्कृतिक तथा दार्शिनिक परंपरा

कशमीर अनादि काल से भारतीय भू–भाग का अविभाज्य अंग रहा ही है तथापि भारतीय आर्य संस्कृति और सभ्यता का प्रमुख क्रीडास्थल भी रहा है।

भारतवर्ष के उत्तर में विशाल हिमालय की गोद में भूस्वर्ग कशमीर स्थित है जो पहले एक विशाल सर था। लोग इसके किनारों पर नावों में और त्रागों में रहते थे, तथा नावों को किनारों पर बांधकर रखते थे। कमलावन की चोटी पर 'नावनोंकुड' [4] इसी तथ्य को दर्शाता है। शिव तथा सती इस झील में क्रीडा करते थे। पार्वती 'सती' अपने घर हरमुख पहाड से कौंसर नाग तक सैर किया करती थीं। इस झील का नाम सतीसर था। इस में रह रहे जलोदभव देव के अत्याचार से तंग आकर सतीसर के किनारे पर रह रहे लोग शिवजी की शरण में आए। श्री शंकर भगवान ने लोगों से कश्यप ऋषि के पास जाने को कहा। कश्यप ऋषि ने झील का पानी वराहमूला के रास्ते निकाल कर इसे सुखा दिया। जलोदभव देव फिर भी आज के श्रीनगर के पास गहरे पानी में छिप कर लोगों को मारने से पीछे नहीं हटा। अंततः माता सती पार्वती ने शारिका 'हा'र' पक्षी का रूप धर कर एक पत्थर उस स्थान पर जहां यह दुर्दान्त देव छिपा था, गिरा दिया और जलोदभव को गहरे पानी के अंदर दबाकर उसका अंत कर दिया। यह पत्थर पहाडी का रूप लेकर 'हा'रीपर्वत' नाम से प्रसिद्ध है। यहां पर माता शारिका के शिला रूप [5] का पूजन किया जाता है। माता शारिका ने श्रीनगर के उनके एक परम भक्त श्री माधवजू दर की कामना पूर्ति के लिए उनके घर अलक्षेश्वरी अर्थात श्रीरूपभवानी (1621 ई से 1721 ई), के रूप में जन्म लिया था। सतीसर का पानी निकल गया तथा नंदनवन की तरह परम सुन्दर घाटी प्रगट होकर खिल उठी।

नीलमुनि ने "नीलमत पुराण" में इस देश के बारे में घोषणा की कि यह देश अतीत इतिहास की ऊषा में विशाल सतीसर था अतः नील के आग्रह पर कश्यपऋषि ने अपनी तपस्या के बल से – कं अर्थात जलको हरिणा अर्थात, बहाया, अश्मनः पत्थर से, अर्थात कं+अश्म+ईर चट्टानों के बीच रुके हुए पानी को बहा दिया [6]

ऐसा भी माना गया है कि कश्यप ऋषि के नाम पर इसका नाम *कश्यपमर* पड़ा जो बिगडकर *कशमीर* नाम से प्रसिद्ध है। समस्त कशमीरी इसको **कशीर** नाम से पुकारते हैं। भारत माता के इस कशमीर रूपी मुक्ट में अनेक महापुरुष तथा संत रूपी मणि तथा रत्न उत्पन्न होकर जुड गए, जिनकी भगवत भक्ति एवं आध्यात्मिक भजनों की मधुर झण्कार से संसार आनन्दमय होकर झूमने लगा। काशमीरी ब्राहमणों को आर्या आप्रवासी (जो अब अपवाद है) कहा जाता है। भारतीय इतिहास के रचियता थामसन लिखते हैं कि आर्या लोग ऊंचा कद, पतली नाक, सर कुछ लंबा तथा सुन्दर गोरा शरीर रखते थे। जिनका विशुद्ध रूप आजकल सर्वाधिक काशमीर में ही मिलता है। मोनियर कशमीरियों को ''Finest Type of Aryan Race'' कहते है, यद्यपि आर्या एक सुसंस्कृत मनुष्य को कहते है। आईज़क टेलर का मत है कि मनुष्य जाति की जन्म–भूमि स्वर्गतुल्य कशमीर ही है। [7],

इतिहास बताता है कि सुन्दर चेहरे वाले पांडव वंश कशमीरी ही थे और इन्होंने यहां से ही ''हिंदुस्तान के मैदानों के लिए श्रेष्ठ राजे उपलब्ध कराए''। [8]

कई लोगों का मानना है कि आर्यों ने इतिहास की ऊषा में इस घाटी में वेदों का संग्रह और संकलन किया था[9]। इसीलिए कशमीर को वेदों की जननी कहा गया है [10]। आज भी कशमीरी भाषा में अधिक मात्रा में वैदिक शब्दों का ही प्रयोग हो रहा है [11]।

कशमीर की एक मान्यता के अनुसार अहल्या गौतम के शाप से यहां ही श्रीराम के छूने से मुक्त हुई थी और वानर सेनानी सीताजी की खोज में यहां आए थे।

आज से पांच हज़ार साल पहले कशमीर का राजा दामूदर जरासिंध का समीपी संबंधि होने के कारण उस की ओर से श्रीकृष्णजी के विरुद्ध लडते हुए मारा गया था। भगवान श्री कृष्णजी स्वयं कशमीर पधारे थे। उन्होंने स्वर्गीय दामूदर की विधवा और गर्भवती पत्नि यशोमती का स्वयं राज्याभिषेक किया था। और कहा था

> कश्मीराः पार्वती तत्र राजाज्ञेयोहरांशजः ।
> नावज्ञेयः स दुष्टो अपि विदुषा भूतिमिच्छता।।

कल्हण *राजतरंगिणी*,1– 72

अर्थात कशमीर भूमि साक्षात पार्वती है। इस भूमि के राजा को शिव का अंश समझना चाहिए। यदि यहां का राजा दुष्ट भी हो तो भी ऐश्वर्य चाहने वाले बुद्धिमान को कभी भी उसका विरोध नहीं करना चाहिए।

स्वामी प्रज्ञानंद के अनुसार "यह सर्वमान्य तथ्य है कि समस्त कशमीरी संगीतकार मुसल्मान हैं। कशमीरी पंडित संगीत शास्त्रज्ञ थे तथा एक निश्चित राग में मंत्र तथा श्लोक पढते थे [12]।"

कशमीर संस्कृत साहित्य का प्रमुख केन्द्र रहा है। कहा जाता है कि यदि कशमीर से संस्कृत साहित्य के योगदान को भारत से काट दिया जा तो भारतीय संस्कृति का संस्कृत साहित्य पंगु हो जायेगा। चौथी शताब्दी के "विज्ञानपतिमात्रतासिद्धि" ग्रंथ के रचयता वासुबंधु, कशमीरी थे, जिसमें बुद्ध धर्म पर गहन चर्चा की गई है [13] ।

मानी हुई वास्तविकता है कि संगीत रत्नाकर' के रचयता महान आचार्य शारंगदेव कशमीरी ही थे [14]। सुरदमना गांव में एक विशेष स्थान पर नाचने की प्रथा थी [15] इसी संगीत परंपरा के आधार पर जेष्ठा भगवती या ज़ीठिया'र में सेंकडों शाही नृत्यांगनाएं तथा नृत्यकला प्रेमी नृत्य सीखा करते थे। यह परंपरा बडशाह ज़ैनुल–आबुदीन के दरबार तक जीवित रही।

ललद्यद (1335ई), नुन्दऋषि (1377ई–1444ई), परमानंद (1794–1879ई), कृष्णजू राज़दान (1850–1926ई), सोफी संत शमस फकीर (1843–1901ई), अहद ज़रगर (1908–1984ई), पीर पंडित पादशाह (सतरहवीं शताब्दी) आदि कितने ही शक्तिशाली महापुरुष इसी भूमि से उत्पन्न हुए हैं। गुप्त संतों की बात ही क्या उनमें से केवल कुछ एक की जानकारी तो उनके मोक्ष के पश्चात ही मिल जाती है, जैसे श्रीनगर के एक संत ज़यराम [16] उपनाम 'ज़नानृजो'य' आदि, क्योंकि गुप्त भक्ति का अभ्यास द्वैत को शीघ्र समाप्त करता है। अपने आपको प्रकट करने से साधक अहं एवं द्वैत भाव को प्राप्त होता है तथा जीवन चक्र में पुनः फंस जाने की संभावना रहती है। स्वामीजी के शब्दों में–

छ़ो'प् छ़ो'पय छ़ो'प् छ़ो'पय छ़ो'पि ह्ंदे स़ृतिय नपय। ग,अ,भ 152,1

अर्थ–गुरु शब्द को खामोशी से जपने से चमक उठोगे।

श्री मे'रज़्काकजी **16ब** के शब्दों में

दय नाव हे'ज़ि रसय, युथ न् कांह बोज़ि ठसय,
तथ अंदर सुय छु बसय, भजन नाम राम राम।।

अर्थ–राम का नाम गुप्त रूप से जपो, कोई सुन न ले।

बौ़द्धकालीन भारत में भी कशमीर का एक विशिष्ट स्थान रहा है। महाराजा अशोक के समय में कशमीर के ब्राहमण बौद्ध सिद्धांतों का प्रचार और प्रसार करने के लिए चीन मंचूरिया और मंगोलिया आदि देशों को गए थे। तिब्बत को उन्होंने अपना प्रमुख केन्द्र ही बना लिया था। शायद इसीलिए कहा जाता है कि कशमीर की शारदा लिपि ने ही तिब्बत की लिपि को जन्म दिया है [17]। कशमीर स्वयं शैव–शक्ति प्रधान देश होने के नाते उसने बौद्ध धर्म को भी प्रभावित किया। श्रीनगर के पास पांद्रेंठन में बौद्धों की दो प्रमुख सभाओं का श्रेय कश्मीर के इतिहास को मिला है। पहली सभा अशोक के समय में सम्पन्न हुई, कनिष्क के समय में बौद्धों की बडी सभा हा'रवन में हुई जिस सभा के सिद्धांतों को ताम्र पत्रों पर खुदवा कर धरती के अंदर गाढ़ दिया गया था। बौद्ध धर्म का विभाजन हीनयान और महायान के रूप में कशमीर में ही हुआ है।

समय की घडी आगे चली तो कशमीर में शैव दर्शन उभर कर आया। जो पहले गुप्त रूप से चल रहा था और बौद्धों में नैतिकता के ह्रास तथा चरित्र के पतन के कारण शैव दर्शन खुले तोर जनता के सामने आया। वैदिक "ब्रह्म सत्यम जगत मिथ्या" के स्थान पर दोनों को सत्य मान कर सर्वत्र शिव ही लीला कर रहे हैं ऐसा तर्क देकर सकारात्मक सोच प्रस्तुत की गई, जो कश्मीर शैवदर्शन के रूप में नए विचार का उद्घोष है। इसके कारण साधकों की कई उलझी हुई गुथियां सुलझ गईं। शैव दर्शन ने उदासीनता के स्थान पर एक सह–अस्तित्व के वातावरण में जीवन के मूल्य को आंका और खोज के नए दरवाज़े खोल दिए।

यहां के स्पंदवाद (स्पंद-vibration) ने समस्त ब्रह्मांड की चेतना को एक स्पन्द मानकर सामने रखा। इसी भूमि में शैवदशर्न के आचार्य एवं 'स्पंदकारिका' के रचियता वासुगुप्त, (आठवीं शताब्दी) 'प्रत्यभिज्ञा शास्त्र" के रचियता उत्पलदेव, 'तंत्रालोक', 'परमार्थसार' तथा 'प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनि' आदि पुस्तकों के रचियता अभिनवगुप्त (993–1070 ई), उत्पन्न हुए जिन्होंने रस शास्त्र में रस की बृहद व्याख्या तथा भरत मुनि के नाट्य शास्त्र की टिप्पणि (commentry) [18]की। भट्ट कल्लट, भास्कराचार्य,

साहिब कौल, आठवीं शताब्दी ई. के टिपणिकार तथा 'शिवसूत्रविमर्शिनी' के रचियता क्षेमराज तथा अन्तिम आचार्य श्रीराम उत्पन्न हुए हैं। शैव परंपरा के विश्व विक्षात महान शैवाचार्य श्री लक्षमण जी तथा डाक्टर बलजीनाथ पंडित ने शैव सूत्रों की संस्कृत, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में अपनी खोज के आधार पर भाष्य देकर कठिन गुथियों को सुलझा कर संसार के सामने प्रस्तुत किया। पश्चमी शोधकर्ताओं को कशमीर में आकर अपनी पिपासा शांत होती रही। इन में महर्षि महेष योगी के शिष्य जॉन और डिनाइस को कशमीर शिवदर्शन को जानने का सौभाग्य स्वामी लक्षमण जी [19] से ही प्राप्त हुआ।

यह कशमीर ही है जिसने अभिनवगुप्त जैसे महान आचार्यो को जन्म दिया। '12वीं शताब्दी' में कल्हण पंडित द्वारा रचा 'कशमीर का इतिहास राजतरंगिणी' एक प्रमाणिक विश्व प्रसिद्ध तथा भारतवर्ष का प्रथम मानक इतिहास है, जो पांच हज़ार वर्ष पूर्व से आरंभ होता दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त नीलमुनि का "नीलमत पुराण", क्षेमेन्द्र की नृपावली' जोनराज की 'जोनराज तरंगिणी', श्रीवर, शुक तथा अन्य स्थानीय लोगों का लिखा कशमीर का इतिहास प्रसिद्धि पा चुका है। कशमीर ने ही भारत में सर्वप्रथम प्रामाणिक इतिहास लिखने की परंपरा दी है जो अभी तक अबाध गति से आगे चल रही है।

यहां के संत भी अद्वतीय है तथा सर्वत्र वंदनीय हैं। एक पारंपरिक कथा के अनुसार पांडवों के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्णजी के कहने पर कशमीर से कैगाम निवासी कैव भट्ट [20] को विशेष तोर से दिल्ली आमंत्रित किया गया था। भारत का कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं है जो कशमीर के साथ तुलना कर सके।

कशमीर ने काल के थपेडों में भी अपने को जीवित रखा। जितनी बर्बरता कशमीर ने देखी और सहन की है यदि ऐसा कहर दूसरी किसी जाति पर हुआ होता तो संसार से उसका नाम ही मिट गया होता। फिर भी कशमीर ने किसी की सहायता के बिना ही अपने को संभाले रखा है और शेष भारत को धर्मांतरण से बचाया है।

जगतगुरु शंकराचार्य, स्वामि विवेकानंद आदि महान आचार्यों ने कशमीर के महान तीर्थों का भ्रमण किया और अपने को पूर्णता को पहुंचा हुआ

मान लिया। संसार के कितने ही महान लोग यहां के संतों के अनुभवों से लाभान्वित हुए हैं।

'साहित्य' शब्द का जन्म भी आठवीं शताब्दी में काशमीर निवासी कंटुक ने ही दिया था। कैयट ने पाणिणि के प्रायः लुप्त होते संस्कृत व्याकरण को पुनः जीवित किया। जयशंकर प्रसाद की कामायणी की बुनियाद, जगधरभट्ट 1350 ई, की 'कुसमान्जली' ही है।

जहां सारे भारत में तीन प्रदेशों दक्षण उत्तर मध्य के लिए तीन कर्मकांड पद्धतियां नियुक्त की गई हैं वहां कशमीर के छोटे से प्रदेश के लिए ऋषि लवगाक्ष **21** का बनाया कर्मकांड पद्धति प्रचलित है। जो आसुरी प्रकोप के कारण प्रायः लुप्त होचुका था। जिसको अंतमें श्री केशव भट्ट ने पुनः संकलित करके मुद्रित करवा दिया।

अलबिरुनी ने इस घाटी को भूस्वर्ग कहा है। इस भूस्वर्ग के साथ आत्मीयता तथा प्रेम दर्शाते हुए एक भजन में स्वामीजी ने इसकी अभिव्यक्त की है।

जीते जी जिनको बिहिश्त हो देखना।
आए वह मुल्तान से फिर कश्मीर को।

उन्होंने कहा है "स्वर्ग के अतिरिक्त कश्मीर को ऋषिवा'र अर्थात ऋषिभूमि भी कहा जाता है। इसी लिए स्वामीजी के एक भजन में यहां के लोगों को "तोहि ऋेषन हंद्य सन्तान अज़पा ज़पिवु संतो" कह कर संबोधित किया है। अर्थात कशमीर ऋषियों तथा संतों का देश है।

महान आचार्यों, इतिहासकारों, दर्शनकारों, शास्त्रज्ञों, महान संतों सोफियों के इसी देश में, इसी मिट्टी से, अपने समय के संतों के बादशाह परमसंत परम दयाल स्वामि गोविन्द कौल जी का जन्म हुआ तथा एक और दमकता हुआ तारा कशमीर के आकाश पर उदय हुआ, जिसकी किरणों से भारत से परे के भू भाग भी प्रकाशित हुए। स्वामीजी के भजनों में अद्यात्मिकता की पराकाष्ठा साफ झलकती है।

स्वामीजी के समय तक का संक्षिप्त राजनीतिक इतिहास

जोनराज की राजतरंगिणी के अनुसार 1339ई से कशमीर में हिन्दू साम्राज्य का पतन आरंभ हुआ और इस्लाम की प्रभुसत्ता स्थापित हुई। इस पतन का मुख्य कारण ब्राह्मणों की अदूर–दर्शिता, जातीयता की संकीर्णता, विलासिता तथा आपसी फूट था। कोटा रानी की हत्या के बाद हिंदू सामराज्य का ह्रास हुआ और शहमीरी मुसलमान–राज्य की नीव पड गई। इस के बाद कशमीर ने अपना महाविनाश देखा। इसलाम के दमन से, बलपूर्वक धर्मान्तरण से अठारहवीं शताब्दी तक कला, साहित्य का ह्रास हो चुका था। श्रीवर लिखते हैं कि सब पुस्तके जलाई गईं। सिकंदर बुतशिकन, जबार खां जैसे महा क्रूर शासकों ने अत्याचार की सारी सीमाऐं पार की। इस काल में भी ललीश्वरी ने अपने धर्म पर अडिग रहने के लिए लोगों को प्रेरणा दी और पर धर्म को अपनाने से मना किया कि बार बार जन्म लेना न पडे। अपने एक वाख (पद) में ललीश्वरी ने चेतना देकर लोगों का मनोबल बढाया।

हा च्येता कव् छुय लो'गमुत परमस, कव गोय अपज़िस पज़्युक ब्रोंथ।
वे'शि बो'ज़ वश को'रनख पर धर्मस, यिन् गछ़न् ज़ेन् मरन् क्रोंत।

अर्थात (हे मन, तू दूसरे के धर्म को, विषय वासना की तृप्ति के लिए, क्यों अपना रहा है। आप झूठ बात को कैसे सच मान कर आवागवन के चक्र में पड रहे हो)। संत नुंदऋषि ने भी धर्मान्धों को फटकारते हुए समाज को समनवयात्मक रास्ता अपनाने की प्रेरणा देते हुए ललद्यद का समथर्न किया। जो इनके 'श्रुक्य' अर्थात श्लोकों से साफ झलकता है।

17वीं शताब्दी के मध्य में अत्याचारों से ग्रस्त लोगों ने माता अलखेश्वरी की शरण ली। माता अलखेश्वरी श्री रूपभवानी के अनुरोध पर पंडित कृपा राम दत्त मटन निवासी के नेत्रत्व में पांच सौ कशमीरी ब्रहमण गुरु तेगबहादुर महाराज के पास फरयाद लेकर गए। [22] उनका बलिदान (27 नवंबर, 1675ई) से एक नई धर्म रक्षक पीढी पनपी। 1805 ईस्वी में जबार खां के बारे में अभी भी कहावत है कि "वुछतोन यि जबार जन्द् हारस ति को'रुन वन्द्" [23] इसके कुछ समय बाद सिखों के कशमीर में पदार्पण करने से दमन चक्र कम हो गया। आपत काल में भी कशमीर के अनेक संतोंने अपनी धर्म परायणता तथा भगवत भक्ति की परिपाटी को जीवित

रखा। कुछ एक ने काव्य द्वारा अपने गहन अनुभवों की अभिव्यक्ति की। इन गीतोंमें तत्कालिक–सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परस्थितियों का भी वर्णन किया गया है। जिनमें स्वामी मे'रज़्काकजी (1744 ई–1830ई) तथा परमानंदजी (1791–1879AD) तथा श्रीकृष्णजू राज़दान (1850-1926 AD) आदि के गीतों से स्पष्ट है। श्री मे'रज़्काक के पास जाकर लोगों ने अत्याचार तथा क्रूरता को समाप्त करने की दुहाई दी तो इन्होंने पठान शासन का अत्याचार समाप्त होने के बारे में भविष्य वाणी की थी कि अब जल्दी यह ज़ालिम शासन सिखों के आने से समाप्त होगा। इन ज़ालिमों की बर्बरता का वे स्वयं शिकार हुए थे। लोगों की विनती का उत्तर उन्होंने इस वाख में दिया जो वाखपोथी में इस प्रकार लिखित है।[24]

नरसिंह भगवान शब्द त नाराण, शब्द्य द्राव वाख गव वाख गुरु।
गुरु नानक पंथ वाक् गुरु, सिख अवतार छुय स्॒त्य स्॒त्य ।
गुरु गोविंद दो'नवय कुनुय, ओम गुरुवे शब्द गोविंदय ।
गुरू गोविंद, सेंत यक जाई, वाक गुरु छुय स्॒त्य स्॒त्य ।

परमानंद जी रचित भजन 'त्राहि माम त्राहे' गीत के 'अट्बारि हे'थ कठ कह वात् घाट' से उस दौर के शासन पद्धति का साफ ज्ञान हो जाता है।[25]

त्राहि माम त्राहे पाहे मुरारी, कटु संकट ही मुकट दा'री। ..
हो'ल हो'ल पापुन बोर गो'ब त् डे'जि अट्, अट्,बारि हं'थ कठ
कह वात् गाठ। वथ दूर यंद्रेय चूर बडि सट् वट्। कटु।
तावन्नि बाज़ार् म्वखतस लो'गमा वट्, यावुन पो'खत्कार
सोदा खाम, यावुन याम मे' सोरि बुजरस कति वट्। कटु.. । आदि।

निकटतम अर्थः– हे कृष्ण मुरारी, मुकट धारी मुझे बचालो, मुझे बचालो, इस संकट से रक्षा करो! जन्म लेते लेते कृष्णपक्ष का सा गहन अन्धेरा छा गया है, खुले आकाश में कोई आसरा तो तेरे बिना दिखाई ही नहीं देता। यह पापों का भेड रूपी टेढा मेढा तथा ढीला भारी बोझ कंधे पर उठाकर खनबल अर्थात घाट पर कैसे पहुंचाऊं। क्योंकि रास्ता बहुत दूर है। इस बे सहारगी के बाज़ार में मोतियों की कोई कदर नहीं। हे मुक्टधारी, हे श्रीकृष्ण! इस ज़ालिम अत्याचारी शासन में हमें संकट से आपके सिवा कौन बचा सकता है। हे कृष्ण! त्राहि माम! इस दर्द भरे

आर्तनाद के कारण खनबल में ठहरे नवाब को तत्कालीन ऐसे जुलाब लग गए कि परमानंदजी से मुआफी मांगकर ही उसके जाते प्राण बचे थे।

श्री कृष्णजूव राज़दान महाराज प्रभुसे अनुगृह की याचना करते हुए तत्कालीन जनता की आर्थिक परस्थितियों अथवा निर्धनता का संकेत देते है। उदाहरण प्रस्तुत हैं [26]।

वो'थु न्यंदरे बाल गोपालो श्याम लाला गाश हो आव।
क्याह करव अ'स्य न्यचिव कोरि वा'ली ब'ड़ि नावदार खा'ली दस्त।
द्यन छु गुज़रान कमि कशालो श्याम लालो गाश हा आव।
क्याह करौ अ'स्य छि कर्महीन सा'रिय यिछ़ि दुनिया दारी मंज़।
अडि खर्च् त् बडि अयालो श्याम लालो गाशहो आव।
क्या करौ अ'स्य छि चा'री फ्यारी क्याह पकान नादारी मंज़।
छ'र्य अथ् हो'छि कथ् मुर्ख् चालो श्याम लालो गाश हो आव।.

कुलयाति कृष्णजू राज़दान

अर्थात हे बालगोपाल, श्यामलाल, श्रीकृष्ण! नींद से जागिए, प्रकाश हो चुका है।......हम लडके तथा लडकियों वाले माता–पिता क्या करें, हमारे हाथ खाली हैं, नादार हैं, कर्महीन हैं, अवाक है, कुटंभ बडा है किंतु आधा खर्चा भी पूरा नहीं होता। हमारी नादारी को तो देखिए। हम बातें करने में तेज़ हैं मगर हाथ खाली हैं और चाल भी मूर्खों जैसी है....।

अर्थात समसामयिक परस्थितियों को संत कवि किसी न किसी रूप में व्यक्त कर ही देते हैं। क्योंकि कोई भी कवि अपने समाज का दपर्ण होता है।

मध्य मार्ग को अपनाने वाले अली मर्दान खां को जब भगवान शिव के दर्शन मिले तो हजूर पुरनूर श्री शिव शंकर के दर्शन को फार्सी भाषा में 'शबशाहे कि मन दीदम'[27] कविता के रूप में अपने दर्बार में सुनाकर सब को मुग्ध कर दिया। उनके कहने का आशय यह था कि कशमीर पर भगवान शिव की कृपा दृष्टि है इसको विध्वंस करने वाले किसी भी हाकिम अथवा सरकार का नाम भी शेष नहीं रहेगा।

स्वामीजी के जन्म के समय के बाद ही कशमीर में अंग्रेजों का प्रभाव बढना आरंभ हो चुका था। मिशन स्कूल तथा अस्पताल खुल चुके थे। फारसी शब्दावली का प्रयोग कुछ कम हो चुका था। कशमीरी भाषा में

रचित भक्ति काव्य पर संस्कृत का ही प्रभाव रहा। सोफी कवियों ने भी आध्यात्मकता की दृष्टि से उच्च श्रेणी की कविताओं में संस्कृत के ही परिमार्जित शब्दों का प्रयोग किया है।

भारत छोडो आंदोलन के साथ साथ कशमीर में डोगरा शासन के विरुद्ध आवाज़ उठ चुकी थी। 1931 ई की घटना इस का साक्ष्य है जिसके बारे में कहा जाता है कि यह एक शडयंत्र था जिसके अंतस्तल में पश्चिम का हाथ था। 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। डोगरा राज्य का अंत हुआ। कशमीर का इलहाक भारत के साथ हुआ। दफा 370 लागू हो गया, किंतु कशमीर से मुसीबतें टली नहीं। हिन्दुओं को उखाडने का शडयंत्र अति सुनियोजित ढंग से आरंभ हो गया। भूमि सुधार इस का एक उदाहरण है जो भारत के किसी प्रदेश में लागू नहीं था। 1975–76 ई में इस पर सरकार की मुहर लग गई। अनेक मानसिक वेदनाओं के सहते हुए भी लोगों ने विद्या का दामन नहीं छोडा। 1986 से कशमीर में "वो'जुल वाव"[28] अर्थात लाल हवा बह चली। 1989 ई में केन्द्र सरकार के देखते देखते समस्त हिंदुओं को बंदूक की नोक पर और अपनी खरबों रुपए की सम्पति छोड कर कशमीर से निष्कासित कर दिया गया और उनको माईग्रंट की उपाधि मिली तथा दमन कारियों को मिलिटेंट की। इस नाटकीय बचाव के लिए माता शारिका की कृपा तथा संतों का ही हाथ हो सकता है।

ऊपर कही हुई घटनाओं को यहां इसलिए व्यक्त किया गया है ताकि यह ज्ञात हो जाए कि कशमीर ने सामान्य तथा विपरीत एवं क्रूर्तापूर्ण वातावरण तथा प्रतिकूल परस्थितियों में भी अपने चिरंतन लक्ष्य– अध्यात्मिकता से तनिक भी विचलित न होते हुए अविरल गति से आगे पग बढाए , साथ ही समाज को स्वधर्म पर अडिग रहने को उत्साहित करते रहे। इस चिरंतन सत्य की पैतृक सम्पति को संतों ने आज तक संजोये रखा है। जिस में सोफी संत किसी से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। गोया सरकारी तंत्र के चलते हुए संतों का समानांतर तंत्र साथ साथ चल रहा होता है।

जन्म

स्वामि जी का जन्म फालगुण शुक्लपक्ष त्रियोदशी, गुरुवार संवत 1948 बिक्रमी, तदानुसार 10 मार्च 1892ई को हुआ। इन का जन्मदिन उनके होते हुए भी फाल्गन शुक्ला त्रियोदशी को मनाया जाता था। उन की

जन्म कुन्डली किसी भी तरह प्राप्त न हो सकी। अत्यंत गहन विचार करने के पशचात इनके द्वारा रचित एक भजन में इनके जन्म का संकेत मिल गया।

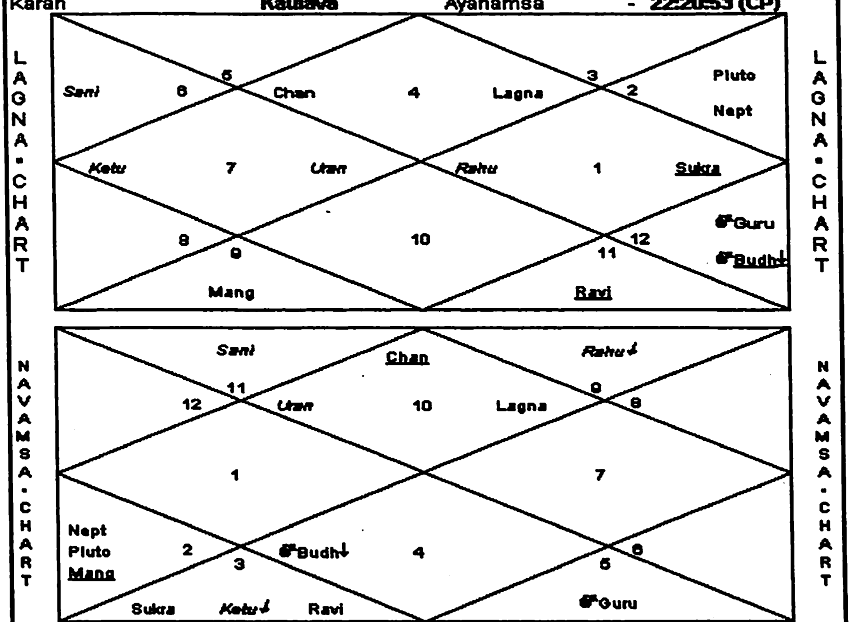
ब्रहस्पत नविमे गर् चन्द्र छुस क्यन्दरो, तोलि ह्न्दे व्शशनश्चर्, शंकर शुक्ल स्वन्दरो। ग,अ,भ 8,1

इसी श्लोक को लेकर मैं श्री पुनीत शास्त्री सुपुत्र डाक्टर मनमोहन शास्त्रीजी बिजबिहारा, जम्मू निवासी के पास गया। उन्होंने अपने 'गणक' [29] अर्थात कमप्यूटर पर देखा तो 1892ई से पहले तीस वर्ष तक तथा इसके पश्चात दस वर्ष तक इस प्रकार की एक ही ऐसी जन्म कुन्डिली विद्यमान थी। इसी पंचांग को संक्षेप में नीचे दिखया गया है।

जन्म कालीन पंचान्ग

॥ अथ श्री जन्मपत्रिका ॥

Birth-Date	10/03/1892	Birth-Day	-	Thursday
Birth-Time	15:44:31	Time-Zone	-	+05:30
Birth-Place	ANANTNAAG/KASHMIR / INDIA			
Latitude	033:43:N	Longitude	-	074:17:E
Chandra Rasi	Karka	Tithi	-	Shukla - 13
Nakshatra	Aslesha	Yoga	-	Sukarma
Karan	Kaulava	Ayanamsa	-	22:20:53 (CP)



जन्म दिनः— 10 मार्च 1892 ई। विक्रम संवत— 1948, मास— फाल्गुन, शक संवत 1813, पक्ष—शुक्ल पक्ष। वार—गुरुवार। जन्म समय—15: 44: 31घंटे। इष्टकाल—22: 34: 2 घड़ी। ऋतु— वसंत। जन्मकालीन तिथि फाल्गुन शुक्लपक्ष त्रयोदशी। जन्मकालीन नक्षत्र—आश्लेषा।
सूर्योदय समय—6: 42: 54 घंटे। सूर्योस्त—18: 21 :43घंटे। स्थानः वनपोह कशमीर, भारत।

यह जन्म तिथि भी फाल्गुन शुक्ल त्रियोदिशी को ही पडती है इसलिए उपरोक्त जन्म तिथि शुद्ध तथा असंदिग्ध है। फिर भी मनमोहन जी ने 8 अगस्त 06 को पुनः जांच करके इसे शुद्ध पाया।

स्वामीजी के पिताश्री का नाम रामजी कौल था जो चौवलगाम के रहने वाले थे। जो अनन्तनाग ज़िला में पडता हैं। इन की माताश्री का नाम वे'शमाली था जो तत्कालीन विक्षात कृष्ण भक्त कृष्णजू राज़दान (1850—1926 ई) वनपोह निवासी की चहेती बहिन थी। वनपोह के बारे में श्री कृष्णजू राजदान ने कहा हैः—

कशमीर सदफ दुरस्त वनपूह, अज़ लैलो गवहर पुरस्त वनपोह [30]

अर्थात यदि कशमीर सीपीं है तो वनपूह मोती है। वनपूह लाल जवाहिर से भरपूर है।

कृष्णजू ने अपनी बहिन को हिब्बा में लगभग 64 कनाल उपजाऊ ज़मीन दे दी थी। इसके बाद वे वनपोह में ही आकर बस गए। इसका कारण यह था कि एक बार अमरावती (वे'शिमाली का सुसराल का नाम) नदी से मिट्टी के घडे में पानी भरकर घर लोट रही थी कि किसी कारण मिट्टी का घडा गिर कर टूट गया। लज्जा और सास सुसर की झिडकी के कारण सिर झुकाये मानो उसके ऊपर घडों पानी पड रहा हो। राज़दान साहिब अचानक अपनी बहिन के पास चौ़लगांव पहुंचे तो देखा कि उनके ससुर श्री रामचंदजी अमरावती द्वारा टूटे मिट्टी के घडे के लिए कुछ क्रोधी हो रहे थे। राज़दान साहिब अपने समय के रईस थे, जिनको सरकार की ओर से लगभग 250 ईकड भूमि मिल चुकी थी। जम्मू से राजधानी श्रीनगर आते जाते जम्मू काशमीर के महाराजा प्रताप सिंह (1885—1925ई), वनपोह में रुक कर इनका दर्शन करते थे। राज़दान साहिब ने रामजी कौल से कहा कि यह कोई साधारण महिला नहीं है। इसके गर्भ से संत उत्पन होंगे। इस कारण रामचंद कौल के घर एक

घडे के बदले मिट्टीके पच्चास घडे भिजवा दिए और तत्पश्चात अपनी बहिन को वनपूह लाकर बसाया। बाद में इनके रहने के लिए एक मकान बनवाया गया जो अभी भी मौजूद है। स्वामीजी के बडे भाई का नाम श्री हरीहर कौल था जो एक कवि भी थे। इन की दोनों बहनों सुश्री राधा देवी और दिवरी देवी का विवाह श्रीनगर में हुआ था। दिवरी देवी का विवाह श्री प्रसादराम रैणा के साथ हुआ था। श्री दीनानाथ "फिलासफर" दिवरी देवी के ही पुत्र थे। वह पहले कशमीरी थे जिसने कशमीर में भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का आरंभ किया था। वे 'कशमीर छोड दो' आंदोलन की वार कौंसल के सच्चिव थे। श्रीनगर में इन्हीं के घर रह कर स्वामीजी ने हिकमत की शिक्षा ली थी तथा सिद्धहस्त हकीम बन गए थे। दूसरी बहन राधामाली का विवाह सोमनाथ सपरू के नाना के साथ हुआ था। श्री सोमनाथ सपरू (जो स्वामी लक्ष्मणजी के शिष्य हैं) के कथन के अनुसार उनके लिए ही उन्हीं के घर पर यह रचना अवतरित हो गई, जब सपरु जी की नानी ने कहा था कि "गोविंद, सोमनाथ सपरू को कुछ उपदेश देदो।" तो स्वामी जी ने तत्काल भजन बनाकर सुनायाः–

तोह्य ऋेषन हंद्य संतान अज़पा ज़पिवू संतो ।....
दम अख म् रावरा'विव ओमकार ललना'विव,
हृदकमल फो'लना'विव सिर्यि हिव नपिवु संतो ।
च्यथ थ्यर न्यरभयी क'रिवो सहज़ क्रयी, ...
हृदयस ओम लयी त्रेय द्वार त्रो'पिवु संतो ।....
अ'लिमि गा'ब गछ़िव् रोशन हरगाह व्यपिवु संतो। ग,अ,भ 80,1

अर्थात तुम ऋषि पुत्र हो तो अजपाजाप में रहकर एक भी श्वास को व्यर्थ मत करो और सूर्य की तरह प्रकाशित हो। यदि मेरी बात को आत्मसात करोगे तो आंख, कान और जीह्वा को बंद करके हृदय में ओम धारण करके सूक्षम बात को जान जाओगे।

स्वामी गोन्दि कौल महाराज ने उस समय आंख खोली जब अंधेरे युग के बादल छट गए थे और कशमीरी स्वतंत्र रूप से सांस ले रहे थे। 1931ई से उनके महा प्रस्थान करने तक कशमीर में सूक्षम रूप से इस की तबाही के बादल नई रूप रेखाऐं लेकर फैल चुके थे परंतु भक्ति की धारा अबाध गति से बहती चली जा रही थी, जिसमें सोफी संतों का योगदान कुछ कम नहीं है। संतों की धारा किसी वाद की अनुयायी नहीं

होती, इस कारण कशमीर में संतों को हर समाज द्वारा आदर की दृष्टि से देखा जाता हैं। परमानंदजी मटन निवासी का 'सुदाम चरित्र', 'शिवलग्न' तथा 'राधा स्व्यंवर' काव्यों का जन्म हो चुका था और कृष्णजू राज़दान की वाणी कशमीर के हिंदू परिवारों मे अपना स्थान बनाकर गूंज रही थी। श्री प्रकाशराम कुर्यगाम का कशमीरी भाषा में 'रामावतार' घर घर में हर ज़बान पर आचुका था जिस का हर पद्य सरल तथा आकर्षक है।

कौशल्यायि ह्ंदि ग्वबरो करयो गूर्‌गूरो।
परयो राम रामो कर'यो गूर्‌गूरो । (रामावतार)

अब्दुल अहद आज़ाद की स्वतंत्र तथा स्वच्छंद वाणी उभर कर ठंडी हो चुकी थी। स्वच्छ क्राल, शमस फकीर आदि सोफियों ने आकर्षक काव्य रचनाएं की। अहद ज़रगर साहिब ने तो सोफीमत की पराकाष्ठा को ही छू लिया था। उनकी रचना इस बात का साक्ष्य हैं। उनका अकनंदुन अद्वतीय है। उनकी वाणी भी कशमीर शिव दर्शन का ही दूसरा रूप है। ऐसे ही स्वच्छ क्राल की वाणी तो गहन अनुभव को ही दर्शाता है–

------'दप्योमस मे'ति हावतम पनुन आसुन,
त'म्य दो'पनम पान पनुन गछ़ि ठरि कासुन ।....
दप्योमस कुनुय छुख च् लाशरीक
त'म्य दो'पनम तमि गछ़िथ छि म्यान्य तरीक...' ।

अर्थात भगवान से मैंने प्रश्न किया कि अपना अस्तित्व तो दिखा दो उसने उत्तर दिया कि अपने आप अथवा 'मैं' को हमारे बीच से हटा दो। मैंने फिर कहा कि तुम्हारा कोई भागीदार नहीं है, अकेले हो, तो उत्तर मिला कि इससे भी बहुत आगे मेरा अस्तित्व या तरीक है।

स्वामीजी के जन्म के समय राज़दान साहिब की **आयु** [42] **वर्ष** थी तथा इनका बचपन श्रीकृष्णजू राज़दान की देख रेख में ही गुज़रा, राज़दान साहिब ने स्वामीजी को मटन चाका [31] के पास सीतारामजी के दर्शन भी कराये थे। यह था श्रीकृष्णजू राज़दान का स्वामी जी पर कृपा पूर्वक प्यार। श्रीकृष्णजू राज़दान जैसे पहुंचे हुए संत की ही देख रेख में स्वामीजी बडे हुए, जिन की पूर्ण दृष्टि के सामने स्वामी जी पनपे इसलिए उनकी पूर्णता प्राप्त करने में कोई संशय नहीं है। जिन के शक्ति पात ने स्वामीजी के अंदर दुगनी ताकत प्रधान की, उन्हीं कृष्णजू राज़दान

महाराज के चरण छूए बिना नांदी नहर का पानी किसी निश्चित स्थान से आगे जाने को राज़ी नहीं होता था। जब तक न कि–"त्यलि वस् ये'लि ग्रज़् चान्यन पादन–" [32] ।

स्वामीजी पूर्ण परम संत थे– इस सत्य को आगे बढाने से पूर्व संत, साधु तथा भक्त में अंतर के बारे में संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

संत, साधु तथा भक्तमें अंतर– [32,क]

सामान्यतयः संत, साधु तथा भक्त को लोग एक ही श्रेणी में रखते हैं। किंतु साधु सरल स्वभाव युक्त, निर्लिप्त जीव हैं जो असतगामी संसार को देखते है किंतु उसे परिवर्तित करने का प्रयास नहीं करते है। **शांडल्य** ने भक्ति को "सापरानुरक्तिईश्वरे" ईश्वर के साथ अत्यंत अनुरक्ति या लगाव होने की संज्ञा दी है। भक्त अपने इष्ट को सर्वत्र देखता हुआ समर्पित होता है और संत जितेन्द्रिय, निष्कपट मन, संतोषी, बुद्धिमान, ज्ञान विज्ञान सहित स्वात्म में स्थित, पूर्ण रूपसे ब्रह्म को जानने वाला तथा उसमें निरंतर रहने वाला, अर्थात परमसत्ता के साथ तदरूपता, निष्काम, परोपकारी, मानावमान से परे, सतकर्मी, वैरागी तथा सदगुणी होता है तथा उसमें ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा कर्मयोग का अदभुत सम्मिश्रण होता है। अतः संत शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है जिसने परम सत्ता के साथ स्वयं को तदरूप कर लिया हो जो सत्य स्वरूप प्रभु का साक्षातकार कर चुका हो। जिस ने अपरोक्ष अनुभूति से अखण्ड परम सत्य को स्वयं में स्थापित, प्रतिष्ठित और समाहित कर लिया हो। स्वामीजी ऐसे ही पथ के अनुगामी तथा निरंतर सत् में रहने वाले थे। वह सच्चे तोर संत की कसौटी पर खरे उतरे हैं अर्थात गुरुधाम या सतलोक पहुंचकर अनामी देश में पहुंचे थे। तभी तो वे परमसंत कहलाए।

माता अलखेश्वरी के शब्दों में–

बेनिशां आमद निशाने बेखुदां। सर बिनेह बर आसताने बेखुदां।।
अर्थात अलमस्त, बेखुद और ब्रह्मलीन लोगों की पहचान यही है कि उनकी कोई पहचान नहीं है। ऐसे लोगों की दहलीज़ पर सर रखदो। अर्थात सजदा करो क्योंकि वे पूज्य हैं। श्री रूपा भवानी रहस्योपदेश से'
गोव्यंद यिम गय पथ आसमानय, तिमन्य सु्त्य वुफानय गछ़,
तमि तोर ग'छ़िथ छु लाबयानय । शमह बनिथ पान् पानय गछ।

अर्थ– गोविंद! जो आकाश से परे गए, उनके साथ उडते जाओ। उस के आगे स्वयं देखो क्यिों कि वह कहने में नहीं आता है।

वे अपने समय के बादशाह थे, जो द्वैत से परे थे। उन्हों स्वयं के कई जन्मों का ज्ञान था। इस कारण उनकी आध्यात्मिक भूमिका पक्की थी और आठों पहर तपस्या में ही रहते थे अर्थात वर्तमान में रहकर निजस्वरूप को कभी नहीं भूलते थे। गहण तपस्या से अपने को उन्होंने कुन्दन बनाया था जिसकी चमक से अन्य लोग भी पवित्र होकर आगे बढते गए।

यहां पर यह लिखना अनुचित न होगा कि मोटे तोर पर संत दो प्रकार का व्यवहार करते माने जाते हैं जो भगवान के घरसे संसारी लोगों की भलाई के लिए भेजे जाते हैं। इनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो अपनी तपस्या या भगवान की भक्ति का दूसरे को आभास तक भी नहीं होने देते हैं। एक **(मलंग)** वे जो परोक्ष रूप से दैवी कैब्निट का संसारी काम चलातें हैं। इनके कार्यक्रम की आम जनता को कोई जानकारी नहीं होती। कभी अनापशनाप बोलते है। किसी के प्रश्न का जवाब किसी पेड की ओर मुंह करके देते हैं। किसी की पिटाई होती है तो किसी को फटकार मिलती है। किसी को कलम थमाकर मुख्यमंत्री बनाया जाता है और कुछ समय पश्चात कलम वापस लेकर हटाया जाता है। जैसे नंद बब और बखशी गुलाम मुहम्मद की कथा। कशमीर के अधिकतर लोग ऐसी कई घटनाओं के साक्षी है तथा इसे सहानुभुति तथा कृपा मानतें है। ऐसे संत दूसरे का दुःख दूर करते हैं जैसे ललमाता के कहने पर नवजात शेख नूरदीन नूरानी [33] ने अपनी मां का दूध पिया था (क्योंकि ललद्यद को शेख के पिछले जन्म की जानकारी थी)। कभी किसी दूर स्थान को जाना हो तो क्या गम, दुनिया इनकी नौकर है, रास्ते में किसी लोकल गाडी पर सवार होकर चालक [34] से दिल्ली जाने का प्रस्ताव होता है।

इनमें से कुछ एक मौन रहते है। कुछ कमरे के अन्दर ही रहकर आज्ञा चलाते हैं। संसारी लोग इनके सामने गास फूस की सी शक्ति रखते हैं। ये संसारी हाव भाव से विरक्त, अपने ही विचारों में मस्त, बेपरवाह रहते हैं- न किसी से मित्रता न किसी से शत्रुता। कई शराब चरस आदि पीते हैं, किंतु अपने कार्यक्रम में जागरूक तथा चैतन्य रहते हैं। ये अपार

शक्ति के मालिक होते हैं। यह त्रिकाल–दर्शी होते हैं। ये सागर को सुखाने की ताकत रखते हैं। ऐसी अपार शक्ति को संभाले रखना इन के ही बस की बात है। यह कोई चेला नहीं बनाते है। इनके कारनामों को बहुत लोगों ने देखा है।

जनसाधारण इनको मसताना, दीवाना, मलंग आदि नामों से पुकारते हैं। इनमें नंद बब साहिब, भगवान गोपीनाथ जी आदि हैं। सोपोर के अहद साहिब आदि आज भी ऐसे मलंग विद्यमान हैं। श्रीनगर के 'ऋषिपीर पीर पंडित पादशाह' की शरण आने पर अवरंगज़ेब संत सरमद के क्रोध से बच गया। पठानों की एक टोली कशमीरी लडकियों को बलात्कार के उद्देश्य से नावों में भर कर डल झील के पार ले जा रही थी। जीवन साहिब से लोगों का आर्तनाद युक्त विनती करने पर झील के लिए जीवन साहिब का कागज़ पर लिखित आदेश देखिए–

> गर हुकुमे खुदा नेस्त, बहुकुमि जीवन साहिब गिरिफतार बर किनार, गीरंदह गरकि आब। अर्थ–

यद्यपि खुदा का हुकुम या आदेश नहीं है किंतु जीवन साहिब के आदेश से गिरिफतारों को किनारे पर लाया जो तथा गिरिफतार करने वालों को पानी में डुबोया जा।

तुरंत ऐसा ही हुआ : आंधी आई और लडकियां सलामत किनारे पर आगईं और पठान पानी में डूबकर मर गए। "सुल्तान साहिब ने जून 1989 में कुकर नाग के श्री प्यारेलाल से कहा "भागो, तुम लोगों को यहां मारेंगें" तथा कशमीरी जहादियों से कहा "खून की नदी बह रही है"। हबीबउलाह नवशहरी साहिब [35] ने हरमुकट गंगा में डूबकर मरे एक पंडित घराने के इकलौते लडके को उसके घरवालों की आकुलता देखकर श्रीनगर में ज़िन्दा किया। इसी प्रकार अली साहिब, बदुर महेंद, ने मुझे उनके पिछले जन्म के उसके बेटे को दिखाया जो एक पंडित लडका है जिसने उन्हीं की इच्छा के अनुसार श्रीनगर में हज़रतबल दर्गाह के पास उन का कफन दफन किया। चुरसू अवन्तीपुर के अनवर मो'त तथा हलमत गनय [36] आदि के कमालात से सारे लोग अवगत हैं। करगिल युद्ध में भगवान गोपीनाथ फौज के करनेल [37] को रास्ता दिखाते देखे गए थे। इन लोगों का व्यवहार अलग–अलग प्रकार का होता है।

इन संतों की करामातों से सारा कशमीर भरा पडा है। विस्तार में जानने का यहां स्थान नहीं है।

फर्ज़ाना—दूसरे प्रकार के संतों को फरज़ाना संत कहा जाता है। यह आम लोगों की तरह व्यवहार करते हैं। यह लोग स्वयं प्रभु भक्ति में लीन रहते हैं, ग्रहस्थी होते हुए भी संसार सें विरक्त अथवा निर्लिप्त रहते हैं, और पूर्णता को प्राप्त होकर समाज में भक्ति रस धारा बहाकर लोगों को प्रभु के समक्ष आने का रासता बताते है। पूर्णता को प्राप्त होकर यह किसी जिज्ञासू पुरुष को शिष्य बनाकर उसके अंदर आध्यात्मिक बीज बो देते है ताकि वह अपने रूपको पहचान कर संसार सागर से पार होवे तथा दूसरे लोगों को भी ठीक रास्ता बताकर सत्संग द्वारा समाज का भी कल्याण कर सके। संतों का काम निष्पक्ष कहा जाता है। संत तथा मलंग आपस में इशारों में बात करते हैं। संत आपस में पहचान रखते हैं। इनकी आपस में किसी समस्या या परस्थिति पर बातचीत भी होती है। कभी खेंचतान भी होती है। जैसे कशमीर पाक का भाग बनेगा क्या? तय यह हुआ कि कभी नहीं, आदि। किसी समाज में इनका होना समाज के लिए शुभ तथा मंगलमय होता है। ये अपने अन्दर ही रमते होते हैं। मसताना संतों को तो जल्दी से पहचाना जाता है किंतु फर्ज़ाना संतो को पहचानना दुष्कर होता है। बहुत बार इनको अपने घरवालों द्वारा परेशानी का सामना होता है। कभी समाज की निंदा सहनी पडती है, वे सज्जन होने के नाते ऐसे व्यवहार को अवज्ञा के कानों से सुनते हैं। किंतु समाज में भगवत मिलन के अभिलाषी लोग ऐसे संत महापुरुषों को पाने की प्रतीक्षा करते हैं। ऐसे लोगों को भगवान पैनी दृष्टि देते हैं और पथ प्रदर्शन के लिए इन्हें संतों से मिला ही लेते हैं तथा जिज्ञासु इन्हें गरु बनाते हैं। इनका यह पवित्र संबन्ध गुप्त रहता है। इसीलिए इन संतों के बारे में समाज को बहुत विलंब से जानकारी मिलती है। ऐसे फर्ज़ाना संतों की काशमीर में कोई कमी नहीं रही हैं। जैसे स्वामी नंदलालजी टिकर, स्वामी गाशकाक, स्वामी आत्मारामजी, शमस फकीर आदि। ये संत समाज में तो रमते हैं किन्तु जिज्ञासु लोगों को रास्ता दिखाना ही इनका मुख्य कार्य होता है।

इन्हीं फरज़ाना सशक्त संतों की अवली में स्वामी गोविंद कौल जी महाराज का नाम भी आता है जो एक कवि भी थे। वनपोह में अपनी ज़मीन जायदाद, मकान रखते हुए भी बहुत ही कोमल थे। इन्हें संतों के

सरदार अर्थात परमसंत की पदवी भी प्राप्त थी। क्योंकि किसी भी साधक की किसी भी आध्यात्मिक कमी को दूर करने के लिए या आगे का रास्ता दिखाने के लिए इन्हीं का आश्रय लिया जाता था। इनकी पगडी पर तुर्रा होता था जो इनकी सरदारी को दर्शाता था तथा किसी दूसरे संतके द्वारा भेजे संदेश वाहक को पहचानने में दुशवारी न हो। इस बात के प्रमाण के रूप में श्री सोमनाथ पंडित मुम्बई वाले का अनुभव सारांश में प्रस्तुत है।

एक बार उनके साथ बैठे साथियों में किसी एक ने पूछा कि स्वामीजी अपनी पगडी पर तुर्रा क्यों बनाते हैं। किसी ने इसका जवाब नहीं दिया। फिर उन्हों ने स्वामीजी के पास वनपोह जाकर पूछना चाहा किंतु पूछने का साहस नहीं हुआ। वे अंतरयामी थे तो स्वामीजी ने उसे घर से बाहर मैदान में चलने के लिए कहा। वहां बैठने के लिए चादर बिछाई गई तो एक जवान बहुत ही कमज़ोर तथा निढाल, कठिनाई से चलकर सडक को पार करते हुए नदी को भी पार करके स्वामीजी के पास आया। उसने तुरंत स्वामीजी के चरणों पर झुक कर नमन किया और उठकर जेब से कागज़ का एक पन्ना निकाल कर स्वामीजी को पकडा दिया तथा विनती करते हुए कहा कि आप इस कागज़ पर अपने हस्ताक्षर कर दें। स्वामीजी ने कलम हाथ में लेकर अपने हस्ताक्षर कर दिए। हस्ताक्षर होने की देर थी कि वह जवान बडी तेज़ीसे निकल पडा। स्वामीजी के आदेश के अनुसार सोमनाथ जी ने उसे वापस बुलाया और जवान तुरंत वापस आकर सामने खडा हो गया। उसके हाथ से कागज़ लेकर सोमनाथजी को पढकर सुनाने के लिए कहा क्योंकि स्वामीजी अपना चश्मा साथ नहीं लाये थे। इस कागज़ के वर्क़े पर उर्दू लिपि में लिखा था "बहुकमि सुलतानी, इस जवान को सरहद के उसपार जाने की इजाज़त दी जाती है"। स्वामीजी ने उस जवान से पूछा कि क्या बात है? वह जवान बोला कि "मुझे सरहद के उस पार ज़रूरी काम से जाना है, आपकी आज्ञा के बिना मैं वहां जा नहीं सकता हूं। इसलिए यह परवाना आपके हस्ताक्षर के लिए लाया था"। इसके बाद वह जवान चला गया।

ज़रगर साहिब भाग्यवान को अध्यात्मिक पथ पर आगे ले जाने के लिए स्वामी जी के पास वनपोह लेकर चले गए थे। यह उनकी सरदारी की दूसरी घटना थी। स्वामीजी गुप्त ही रहा करते थे। जनसाधारण इन्हें

साधारण मनुष्य ही मानते थे। हैरानी की बात है कि अधिकतर वनपोह निवासी भी इन महापुरुष को सामान्य मनुष्य ही मानते रहे। जब किसी एक ने वनपोह आकर इनके बारे में पूछा कि क्या आप उन्हें जानते हैं तो वहां के एक निवासी ने कहा क्यों नहीं जानते, सारा दिन तो अपनी गाय चराते रहते हैं। किंतु इसी गाय चराने की घटना को सुंदर प्रकार से स्विटज़रलैंड से डाक्टर ई हॉक ने अपने अंतिम पत्र में अभिव्यक्ति किया है। सत्य यही है कि अध्यात्म सब के लिए है किंतु सब अध्यात्म के लिए नहीं होते हैं।

स्वामीजी से लेखक की पहली भेंट

मेरे बचपन में माता–पिता के अच्छे संस्कार देने तथा उनके गुरु महाराज श्री रामजी धन्यहामी [37(क)] के अनुग्रह के कारण मन में भगवत प्राप्ति की असीम लालसा थी। घंटा शब्द, अनहद धुन बचपन में ही ऐसी तीव्र गति से सुनाई देते थे कि मैं सुनकर ऊब जाता था। आठ वर्ष की आयु में सपने में माता क्षीर भवानी ने कहा कि समय आने पर तुझे एक महापुरुष संत मिलेंगे। 1971 ई की एक रात को सोने से पहले मैं योग वाशिष्ठ पढ रहा था कि आंख लग गई। रात को मेरे सोच में विचित्रता आने लगी। आंखों के सामने अंधेरा छा गया। पौष मास की काली रात जैसा अंधेरा दिखाई दे रहा था। इस के आगे ईश्वर का न होना ही सिद्ध होने लगा तथा विश्वास भी हो गया कि कोई ऐसी शक्ति नहीं हैं जो चेतन तथा प्रकाशमय हो और जिस में विमर्ष हो, यह सारा संसार फिज़िक्ल अर्थात भौतिकीय नियमों से बंधा है जो स्वचालित है, और इस पर नियंत्रण रखने वाली नाम की कोई शक्ति नहीं है। मूर्ति या फोटो पूजा से मेरा विश्वास उठ गया था।

संभवतः मैंने 1971 ई. के वैशाख की अमावसी का व्रत रखा हुआ था। सोचा कि त्राल 'कश्मीर' हायर सेंकंडरी स्कूल पहुंच कर कुछ आवश्यक काम करके जल्दी से घर आकर व्रत का पारायण कर लूंगा। मार्च का महीना था, लडकों की परीक्षा हो रही थी। परचों के अंक देते इतना व्यस्त हो गया कि दो बज गए। मैंने उठकर घर जाने की तैयारी की तो साथ में मेरे वरिष्ठ सहयोगी, मास्टर श्री बंसरीलाल कौतवाल, ने कहा कि उनके घर में भी अमावसी व्रत का खाना बना है तो वे मुझसे अनुरोध करके अपने ढेरे पर ले गए। वहां पर उनके बच्चों ने रात के लिए उनके घर पर ही ठहरने का अनुरोध किया। मैं यह सोचकर मान गया कि

स्कूल वापिस जाकर सारे पर्चे अंकित करलूं। ऐसा ही हुआ। रात को श्री बंसरी लाल और मैं अलग कमरे में सो गए। वे गुरुमुख थे और हमारी चर्चा केवल आध्यात्मिक ही रही। बातों बातों में उस रात की घटना प्रसंगवश उन को सुनाई । कुछ दिनों के बाद वे मुझे अपने साथ वनपोह ले गए और स्वामीजी से मेरा परिचय कराया। स्वामीजी का आकर्षक व्यक्तित्व मेरे मन को भाया। अंदर बाहर से हिम की भांति साफ शफाफ दिखाई दे रहे थे। कोतवाल जी की माता ज़परी भी साथ थीं। स्वामी जी ने मेरा बाहर से ही मानो अंतःकरण का निरीक्षण किया। ज़परी कोतवाल ने स्वामीजी से कहा कि महाराज इनके शीष पर भी कृपा का हाथ रखिए। ऐसा ही हुआ। वहां मेरे कहे बिना ही मुझे दीक्षा मिली और तत्काल ही मुश्किल हल हो गई और मैं गहन अनुभूतियों को महसूस करने लगा। स्वामीजी के कुछ निर्देशों में विशेष बात यह थी कि लोल अर्थात प्रेम ही सब कुछ है।

समय निकाल कर जब भी मैं स्वामीजी के दर्शनार्थ वनपोह चला जाता ताकि शंका का समाधान मिले, तो स्वामीजी के पास उनके दत्तक पुत्र डाक्टर विनोदजी की दादी, माता ज़परी भी आकर बैठ जाती और पूछती कि भूमि सुधार का क्या हुआ? सारी काश्तकारी ज़मीन सरकारी बनाकर मामूली राशि (लगभग पांच रुपये प्रति मरला) के बदले काश्तकारों के नाम करने का बिल पास होने को था। ज़मीन अधिकतर हिन्दुओं की थी इसलिए जल्दी से शासन बिल को पास करवाना चाहता था ताकि कशमीरी बहुसंक्षक का दिल जीत कर केन्द्र सरकार को कह सकें कि सारे कशमीरी लोग उसी शासक के साथ हैं और उन्नति के नाम पर केन्द्र से खूब पैसा प्राप्त कर सके। भूमी सुधार में सुधार कम और प्रतिशोध ज़्यादा था। प्रत्येक ज़मीनदार के काश्तकारों को स्थाई बनाकर चौथाई भाग फस्ल या उपज निर्धारित किया गया। इससे कम ज़मीन रखने वालों पर यह भूमि सुधार लागू नहीं था। शेख मुहम्मद अबदुला के बाद की सरकरों ने सारी काश्तकारी भूमि को स्थाई काश्तकारी के अंतरगत लाकर उलझाव पैदा कर दिया और सारी काश्तकारी ज़मीन काश्तकारों को दी गई और सरकार ने बलपूर्वक आदेश पर अमल करवा दिया कि कोई काश्तकार ज़मीन मालिक को कोई लगान न दे। मेरी जानकारी में था कि संजवोतुर पुलवामा की एक विधवा पंडित महिला को काश्तकारों ने धान का आधा भाग दिया था। नए कानून के अनुसार उसकी सारी शाली को तहसीलदार ने बल पूर्वक ज़ब्त करके काश्तकार

को वापस करवा दिया। इस आदेश को कठोरता से लागू कराया गया। लगभग सारे कशमीरी ज़मीनदार विशेषकर पंडित लोग इस चपेट में आ गए और उनके पावं के नीचे से ज़मीन खिसक गई। कशमीरी पंडितों में हाहाकार मचा था कि अब क्या खाएं। मैं स्वामीजी के सामने बैठा इस परेशानी को सुन रहा था। इस आशंका से मैं भी अछूता न था। मेरी तथा माता ज़परी के मनोदशा को पढते हुए स्वामीजी भी कुछ क्षणों के लिए मौन रहकर बोले, "कागज़ लाओ"। मैंने कागज़ का एक पन्ना उनकी ओर बढा दिया। मुझसे दो स्थान पर जाकर दो संतो के हस्ताक्षर कराके लाने का आदेश दिया और कहा कि अब यह कानून पास नहीं होगा। सरकार के किसी काममें दख्ल देना ठीक नहीं परन्तु जब जनता कष्ट के बारे में संतो से अपील करे तो यह दैवी कर्म करना ही पडता है। मालिक ज़मीन को अब लगान का अपना हिस्सा मिलेगा। जल्दी ही क्रूर शासन बदल गया तथा ऐसा काला कानून पास नहीं हो सका।

जनवरी के अंत या फर्वरी 1986 ई की ऐसी ही एक घटना मुझे अच्छी प्रकार से याद है। मैं अवंतिपुर थाने के सामने सडक पर श्रीनगर जाने वाली किसी बस की प्रतीक्षा कर रहा था कि अनायास ही मेरे सामने तत्कालीन शाह सरकार के एक मंत्री की फ्लैग कार रुकी। वह दो विभागों का मंत्री था और मुझे जानता था। मैंने समय को उपयुक्त जानकर अपने पुत्र के एक माह के लीव चान्स के लिए आवेदन पत्र उनके हाथ दे दिया। इसे पढ़कर उसने अहंकार पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखकर साफ कह दिया कि "तुमने नेश्नल कांफ्रेंस को वोट दिया है इसलिए 1990 के चुनाव की प्रतीक्षा करो। नेशनल कांफ्रेंस यदि पावर में आजाएगी तो वे ही तुम्हारा काम करेगें। अपने साथियों से भी यही संदेश देना"। मेरी भावना को उस समय कैसी चोट पहुंची व्यक्त नहीं कर सकता हूं। मेरा वोट किसको पडा इसे कैसे मालूम हुआ? इतने में वहां पर श्रीनगर जाने वाली एक बस आकर रुक गई और मैं उसमें सवार होकर श्रीनगर पहुंच गया। श्रीनगर के चिंक्राल मुहल्ले में अपने एक मित्र रहते थे। मैं कुछ बादाम देने के लिये उसके घर पहुंच गया। उसकी 'अमांजी' को नमस्कार किया। उसने कहा कि पहली मंज़िल के कमरे में देलिना के संत आए हैं और पूजा कर रहे हैं। मुझे इस बात का पहले कोई ज्ञान नहीं था कि देलिना से श्री अमर नाथ जी वहां आए हुए हैं। मैं उन को पहले से ही जानता था तथा मैं झटसे उनके दर्शन के लिए जल्दी से सीढियां चढ़ कर कमरे के दरवाज़े पर खडा रहकर सादर

प्रणाम किया क्यों कि उन्होंने मुझे उनके सामने झुकने से मना किया हुआ था। मुझे उनके चेहरे में स्वामी जी की झलक नज़र आई। उन्हों ने कमरे के अंदर आने से पहले ही मेरी ओर तेजस्वी नेत्रों से देखते हुए कह दिया कि परेशान क्यों हो रहे हो उस मंत्रीसे क्यों नहीं कह दिया कि 20 फरवरी 1986 तक ही तेरी हकूमत है और फिर कभी भी मंत्रीपद सपने में भी नहीं मिलेगा। अभी जाकर उसे यही चेतावनी देने के लिए प्रस्थान करो। क्या यह सत्य ही कह रहे हैं कुछ अनिशचिता और निश्चयता का मिश्रित भाव मन में आया। मैं गुपकार सडक पर रह रहे उस मंत्री के निवास पर गया और सूचित किया। घर पहुंच कर दूसरे कार्यों में व्यस्त रहा कि अचानक 20 फर्वरी 1986 को सायं के साढे सात बजे रेडियो कशमीर श्रीनगर से शाह सरकार के गिरने का समाचार मिल गया। मैं अत्यंत आश्चर्य चकित तथा प्रसन्न भी हुआ, तथा उसके कुछ समय बाद आनेवाले चुनाव में उसके हार का शुभ समाचार भी सुनने को मिल गया। हालांकि फारोक अब्दुला हकूमत से कोई सहायता लेने में मेरी कोई रुचि नहीं थी। कुछ लोगों के प्रति दुर्भावना रखनेके कारण संतों के हस्तक्षेप करने पर शाह सरकार तुरंत गिर गई तथा उस मंत्री का मंत्री पद छूट गया। स्वामीजी के पास तो मेरी निजी बातचीत के लिए ज्यादा समय ही नहीं मिलता था।

1972 मई की बात है कि मैं स्वामीजी के दर्शन के लिए वनपोह गया। वहां पर अन्य लोगों के अतिरिक्त श्री बंसरी लाल कुटवाल भी उपस्थित थे। प्रणाम दंढवत के बाद स्वामीजी ने बैठने का इशारा किया। स्वामीजी ने हमें कोई सा भजन गाने को कहा। स्वामीजी के गीतों के संकलन "गोविन्द अमृत" (प्रथम संस्करण 20 मार्च, 1960, मूल्य दो रुपए) से हमने कुछ भजन गाएँ। उस समय एक भक्त आंखे बंद करके गाने लगा तो स्वामिजी ने उसे कहा "आंखे खोलो, अंदर क्या दिखता है?" मैं इस प्रतीक्षा में था कि कब भजन समाप्त हो जाए और स्वामीजी से कुछ बातचीत हो जाए। मैं गाते समय केवल बिना किसी रुचि के साथ देता रहा। क्यिोंकि मैं नया नया ही स्वामीजी की शरण में आया था। मैंने अभी बहुत कुछ सीखना था। इसलिए मेरे मन पर इन गीतों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड रहा था। कारण यह कि मैं पद्य के स्थान पर गद्य को जल्दी समझ सकता था। स्वामीजी इस बातको भांप गए। हमारे वनपूह से चलते समय स्वामीजी ने मुझको इस भजन संग्रह की एक प्रति दी। अपने घर लारीयार, त्राल पहुंचकर मैं इन भजनों को नियमित ढंग से

पढने लगा। मेरें बच्चों ने सुर ताल मिलाने में मेरा साथ दिया किंतु कुछ पल्ले नहीं पडता था। जैसे घी की मालिश करके शिवलिंग पर पानी पड रहा हो। अनेक भजन पढने के बाद एक भजन ऐसा था जिसमें ''हतो हा सादक गनयो बोज़'' लिखा था। स्वामीजी ब्रहमण और सादक गनय मुसलमान यह कैसे संभव हो सकता है? इस भजन की कुछ पंक्तियां यहां लिखना समीचीन होगा–

हतो हा सादक गन'यो बोज़, सु असरार्‌य वन'हयो बोज़।
मनहयो छुय यि फितिनय साज़, बुलंद परवाज़ गोविन्दो ।
वनन छुय पीरि का'मिल बोज़, अर्श कुर्सी यो'हय दिल बोज़।
चु़ शागुल रोज़ दिलस मल पाज़, बुलंद परवाज़ गोविन्दो।

गोविंदामृत–102,1

अर्थ–ऐ सादक गनय! राज़ की बात सुनो, यह मन ही सब झगडे का मूल कारण है और यही मन अर्श और कुर्सी है। इस मन का मैल निकाल बाहर कर नाम स्मरण करते रहो और ऊंची उडान का आनंद ले लो।

समय की आंख मिचोली में कुछ क्षण मिले तो मैं वनपूह स्वामीजी के दरबार में गया। वे अपने मकान की पहली मंज़िल के विषेश कमरे में बैठे थे। आंखें बंद, अपने में मगन, तेजवान चेहरा, आंखों पर चशमा चढा था। मैं दरवाज़े पर हाथ जोडे खडा था कि अंदर आकर दंडवत करूं। चूंकि स्वामी जी की आयु उस समय लगभग असी साल की थी, साथ ही मधुमेह के रोगी भी थे इसलिए देखने के लिए उन्हें दूर तथा नज़दीक दोनों प्रकार का चश्मा बारी बारी लगाना पडता था। उनकी झलक देखते ही नज़र खुद बखुद झुक जाती थी तथा ह्रदय पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव पडता अनुभव होता था। शायद यह उनकी दृष्टि का विचित्र प्रभाव था। मैं अध्यापक होने के कारण छोटे बच्चों से तो खुलकर बात कर सकता था परन्तु बडों के सामने खुलकर बोलने में काफी झिझक रहती थी। स्वामीजी के सामने की झिझक शिष्टाचार की थी। उन्होंने नज़दीक देखने का चशमा उतारकर दूर वाला चशमा चढा लिया और दोनों हाथ जोडकर नमस्कार किया। महाराज यह क्या? दंडवत करके धीमी आवाज़ में मैंने पूछा। अपने आप को ही नमस्कार किया। कैसे हो? उन्हों ने पूछा। फिर उन्होंने 'दि दर्शन भक्तिवत्सलो, वलो लगयो म्य लोल हो आम' भजन बडे ही प्रभावशाली तथा भावपूर्ण ढंग से अपनी गम्भीर तथा

मधुर एवं आकर्शक लयात्मक वाणी में गाकर सुनाया और कहा कि ऐसे ही विनम्र तथा प्रेम भावसे भजन गाना या पढना चाहिए कि पढने वाला भाव विभोर हो जाए। उनकी वह आकर्षक तथा ह्रदय को छूने वाली लय की गूंज अभी भी मेरे मस्तिष्क में गूंज रही हैं। उस समय मैंने केवल मस्तक हिलाया क्योंकि मैं भाव विभोर हो रहा था कि मेरे पूज्य तथा काफी बुर्ज़ग किस अन्दाज़ के साथ भजन सुना रहे थे। इस भजन में 'दलो' शब्द मुझे अच्छा नहीं लगा ऐसा कहने वाला ही था कि उन्हों ने कहा 'लगयो' भी तो कहा है। कुछ देर के पश्चात उन्होंने कहा कि पहले जब भी उनके सामने भजन कीर्तन की मंडली होती थी वे भक्तों पर एक दृष्टि डाल लेते तो सारे लोग भजन गाते गाते मस्त हो जाते थे। अपने आप की सुध किसी को नहीं रहती थी। सामने वाले झूमते थे। भक्तों के थक जाने पर जब नज़र सानी करते तो अचानक सब लोग होश में आते थे। उन्होंने आगे कहा कि अब मैं ऐसा नहीं करता क्योंकि अब भक्तों के पास समय कम होता है और ज़िमेदारियां बढ गई हैं।

मेरे विचार में मुझे ऐसी बातें कह कर एक ओर से स्वामीजी मेरे विश्वास को पक्का कराना चाहते थे तो दूसरी ओर भजन गाते समय मन की एकाग्रता से गीत के आशय में भाव विभोर हो जाने के लिए इशारा करते थे। मैंने निवेदन किया कि अर्थ समझने की दृष्टि से मेरे मन में परमानंदजी द्वारा रचित दो भजन मुझे अच्छे लगते थे।

> गिन्दुना छा ज़िन्द् मरुन सहज़् व्यच़ार करुन,
> पान् रुस पान स्वरुन । सहज़् व्यच़ार करुन

अर्थात जीते जी मरना सरल नहीं है, अपने आपको भूल कर सहज विचार से ही ऐसी मृत्यु का अनुभव हो सकता है।.......तथा

> कासि यम भय चोन प्रयम त् लोलो,
> ज़्यो'न मरुन युन गछुन छु भ्रम त् लोलो।।

अर्थात हे प्रभु! आपका प्रेम मृत्यु के भय से छुटकारा दे सकता है। जन्म मृत्यु भ्रम ही तो है।

मैंने साहस जुटाकर परमानंदजी वाली बात स्वामीजी के सामने दोहराई। उन्होंने कहा कि "मेरी और देखो। मैं पिछले जन्म में परमानंद ही था और अब इस चोले में आया हूं। उनकी वाणी का गूढ अर्थ समझाने के लिए ही तो आया हूं।" मेरी कुछ झिझक दूर हुई। मुझे कुछ निर्देश दिए

तो मैंने पूछा महाराज, आपकी इस पुस्तक में सादक गनय वाला प्रसंग लीला के रूप में क्यों आया है, इस बात को मैं न समझ सका। तो स्वामीजी ने पूरी कहानी सुनाई। यही पूरी कहानी जो रामजी भान ने भी सादक गनय से सुनी थी मुझे 2004 में सुनाई थी।

मैं इस सादक गनय वाले प्रसंग को संक्षिप्त तोर से लिखना आवश्यक समझता हूं ताकि साधक लोग इससे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकें। स्वामीजी ने घटना इस प्रकार सुनाई कि "सादक गनाई एक दिन मेरे पास आया और कहा कि मेरी आंख की दवा कीजिए। आंख मे गहरा घाव था। आंख से खून बह रहा था। उपचार करते हुए मैंने पूछा, कैसे लगी? बडे ही आर्त्त स्वर में उसने कहा। अब मैं किसी को मुंह दिखाने के योग्य नही रहा। क्या करूं? इस दुनिया से भी हाथ धोया और दूसरी दुनिया के लायक हूं ही नहीं। मैं अपने करतूत बयान नहीं कर सकता हूं। मेरे उपर कृपा करें। आप ही मेरी छत्र छाया हो। मेरा बचाव केवल आपके पास है। मुझे अपनी शरण में लेलो। ऐसा कहकर वह छलक पडा। मुझे ऐसा लग रहा था कि वह सब कुछ छोड चुका है अर्थात वैराग्य की वास्तविक दशा को प्राप्त हो चुका था। ऐसे दीन वचन सुनकर मैंने सांत्वना दी तथा मेरे अनुरोध करने पर उस ने कहा। मैं एक नामी चोर हूं। किसी माता ने बडी मेहनत तथा परिश्रम से पशमीना कताई करके मज़दूरी के कुछ रुपये प्राप्त किए थे। उन रुप्यों को ल्वन्गानी 'कलात्मक ढंग से तीलियों से बनाई गयी छोटी सी टोकरी' में रखकर ऊपर से ऊन से ढक लिया और ऊन कातकर चरखे को पहली मंज़िल के ताकडे पर रख लिया जहां वह रोज़ ऊन कातती रहती थी और सो जाती। रात गए मोका पाकर मैं खिडकी पर आ गया। जूंही अंदर घुसने लगा तो चरखे का इन्द्रतुल अर्थात लोहेकी सलाई की नोक मेरे आंख में घुस गई। दिन होने तक छिपा छिपाता फिरता रहा अब आप के सामने दस्तबस्त हूं। अपने को काफी अपशब्द कहता और कोसता रहा। स्वामीजी कहते गए। मुसलमान होने के नाते उसे एक मुसलमान दर्वेश के पास जाने की सलाह दी। वह गन्तव्य स्थान पर गया। वापसी पर उसने मेरे से ही नाम लेने का अनुरोध किया। पौष का मास और सर्दी के दिन थे। मैंने उसे यूंही कहा कि मेरे मकान के बाहर जो दीवार है उस पर रात को बैठना होगा। सवेरे देखा जोगा। उसने कहा आंख तो निकल चुकी अब दीवार से गिरकर टांगें टूटने का स्वाद भी चखना पडेगा। परन्तु न आव देखा न ताव, वह चल दिया। जनवरी

में काफी ठंड में वह बेपरवाह होकर बाहरी दीवार पर चढ कर बैठ गया। बर्फ आगई थी, अन्दर कमरे में कुछ पता नहीं लग रहा था। रामजू को काफी रात गए मकान के बाहर देखने के लिए भेजा तो क्या देखा कि सादक गनय दीवार पर अकडा हुआ था, न होश न हवास। घबरा कर रामजू ने अन्दर आकर सुनाया। उसे उठा कर कमरे में लाया गया। अपने गरम बिसतरे में लिटाकर गर्म कांगडी से गर्मी की गई। मैं उसके साथ बिस्तरे में लेट गया। सादक गनाई दूसरे दिन सवेरे बहुत ही प्रसन्न था और वह रमज़े हकीकत अर्थात आनंद के रहस्य को पा गया था तथा तत्काल ऊंचाईयों को छूने लगा। यह सब कुछ वह शुद्ध तथा वासना शून्य मन के कारण प्राप्त कर पाया।

सादक गनय ने रामजू को मुसलमान फकीर से मुलाकात की दास्तान सुनाई थी : "कि वह दर्वेश एक पुरानी मस्जिद के बरामदे में पडा दुनिया से बे बहरा, काफी ठंड में भी मैले कुचेले चीथडे पहने, सूखा बदन बहती नाक, गर्दे में बैठा निशचिंत आदमी था। लोग उसमें कोई भी दिलचस्पी नहीं लेते थे। कहां स्वामीजी की नफासत व हुसन जमाल और कहां वह। मैं उसके पास पहुंचा सलाम किया–' रामजू जगह का नाम भूल गया'। दर्वेश ने पूछा, तुम्हें वनपूह के बब अर्थात बाबा ने भेजा है, तो आओ। जो उसने कुछ चीज एक अन्युट अर्थात मिट्टीके एक डकन–में रखकर मुझे कहा, 'खाओ इस मेरी कमाई को'। मैंने कहा 'मेरा दिल नहीं मानता आप के हाथ से यह गंदी चीज खाने को'। मेरे ऐसा कहने पर उसने वह चीज़ तुरंत वापस अपने मुंह में डालकर निगल डाली और अपनी पुरानी दशा पर आ गया। मैं उठकर स्वामीजी के पास वनपूह चला आया। रामजू कहते हैं कि सादक गनय बहुत ऊंचाई पर पहुंच चुका था और करामातें भी करता था। एक दिन स्वामी जी तथा अब्दुल अहद ज़रगर किसी से मिलने के लिए च़वलगावं निकल पडे तो सादक गनाई ने दोनों से कहा कि इतनी दूर जाना है किन्तु वह पुरुष वहां नहीं है कहीं दूर चला गया है। पता करने पर बात सत्य निकली।।

विवाह

स्वामीजी का विवाह कुलगांव के निवासी श्री आफताब पण्डित की बहन मुगलानी के साथ हुआ था। संस्कृत अवार्ड पाने वाले तथा शैवदर्शनाचार्य महामहिम प्रोफेसर बलजीनाथ पण्डित तथा श्री श्यामलाल पण्डित, डीन फेकलटी आफ आर्ट्स कशमीर विश्वविद्यालय तथा एजुकेशिनिस्ट, श्री

आफताब पंडित के ही सुपुत्र हैं। श्रीमती मुगलानी बलजीनाथ जी की बुआ थी जो विवाह के केवल एक साल भीतर ही परमधाम को चली गईं। स्वामीजी बचपन से ही विरक्त भावना रखते थे तथा प्रभु के गीत, भजन तथा महापुरुषों के कथन को श्रवन मनन करने में व्यस्त रहते थे। इनको विवाह की कोई रुचि नहीं थी। माता के बहुत अनुरोध करने पर वे सोच में पड गए। मुगलानी के साथ पिछले जन्मके सम्बंधों को याद करके अपनी माता वे'शमाली का मन रखना पडा और शादी करना मान गए। बाहर का हाव भाव रखते हुए भी आन्तरिक भाव से पूर्णतयः विरक्त थे। उनके एक भक्त श्री शिवजी, मलकनाग अनंतनाग निवासी, ने मुझे सुनाया था कि दुल्हा बनकर सुसराल जाते हुए इस ज्ञानवर्धक भजन की रचना की थी। अपने आप को संबोधित करता हुआ भजन–

सतचित आनन्द अखण्ड अगाधई। यादई कर पानह पनुनुई स्वरूप ।
योर्'कि करन् रुस ओरय वो'रहक मो'लोवहय चकर चुरासी लाख.... ।
वीद छिय ग्यवन गोविन्द् गीथ्य मन पनुन जीत्य गुणातीतय।..... ।

गो,अ,भ 24,1

अर्थ– अपने सतचिदानंद स्वरूप को याद करो। तुम्हें अपनी ओर से कुछ कर्म किए बिना उधर से ही अपनाया गया और चुरासी के चक्कर से छुटकारा मिल गया। मन को जीत कर देख कि तू गुणातीत है और वेद तेरा अर्थात गोविंद का जप करते है।

उन दिनों बाल विवाह का प्रचलन था इसलिए तात्कालिक रिवाज के अनुसार बहू को सुसराल पहुंचने के कुछ दिन पश्चात ही माईके भेज दिया जाता था। इसी लिए विवाह के बाद तुरंत श्रीमती मुगलानी मायके भेज दी गई। जहां कुछ समय पश्चात वह अकारण अस्वस्थ हो गई और संभल न सकी और कभी वापस सुसराल न जा सकीं। वह अन्त तक शम्भू शम्भू पुकारती रही। उनके मन में अपनी सास तथा अपने पति देव के अंतिम दर्शन करने की अभिलाषा थी। माताजी स्वामीजी को साथ लेकर कुलगावं पहुंचीं। सासू मां को प्यार से देखा फिर स्वामीजी की ओर टिकटिकी बान्ध कर देखने लगी। अभिलाषा पूर्ण हुई। आंखों की बुझती हुई ज्योति सामने वाली ज्योति में समा कर विलीन हो गई। दशर्न के अभिलाषी मुटठी में बंद प्राण छूट गए। वातवर्ण विषाद युक्त हो गया। अपनी फुफी के इस अंतिम प्रयाण में प्रोफेसर बलजीनाथ पण्डित भी उपस्थित थे। जिन्होंने मुझे यह वार्ता सुनाई थी। इसके बाद स्वामीजी

अंत तक विरक्त रहे थे। इनका दत्तक पुत्र श्री विनोद कौल है। डाक्टर विनोद स्वामीजी के कविताओं को समझ सकने की क्षमता रखते हैं।

विद्या

स्वामीजी का बचपन वनपोह में ही गुज़रा। पांचवीं कक्षा तक प्राथमिक विद्या वनपूह में ही प्राप्त हुई। आगे पढने के लिए अनंतनाग जाना था। कुछ एक दो रुपये मिले तो वे रास्ते में कहीं खो गए। दर्ज होन और कुछ पुस्तकें लेने के लिए पैसे तो चाहिए थे जो अभाव के कारण मिले नहीं जिस कारण स्कूल न जा सके। चौथी कक्षा अथवा आठ या नव वर्ष की आयु में अपनी तखती पर उन्होंने एक पंक्ति लिखी,

लोल् स्यपि मिलवारे, होशि हिसाब् तारे ।
तस केंह खसि न् बारे, विज़ि विज़ि द'र्यवु सूसू ।
अभ्यास मोहर् शीशे, द्युन ग्वर् व्वपदीशे ।
हृदयि दोजि हमीशे, दयस ना ख'रिवु सू सू। ग,अ,भ 111,1

अर्थात प्रेम रूपी दवात से होश सहित हृदय रूपी तखती पर जो गुरोक्त सूसू रूपी अभ्यास लिखेगा, उसे कर्म का भार नहीं लगेगा। ऐसा करने से प्रभु उस से प्यार करेंगें।

कृष्णजू राज़दान ने अपनी बहनसे पूछा कि यह पद किसने लिखा है? तो बहन व्यशमाली ने कहा यह तो गोविन्द ने लिखा है। राज़दान साहिब के श्रीमुख से अनायास ही वाह वाह निकली और कहा कि मेरा बांझा तो पूर्ण हो गया हैं। पांचवीं तक की विद्या प्राप्त करके स्वामीजी श्रीनगर चले गए और अपने जीजा के घर रह कर हिकमत सीखने लगे। उसके पश्चात एक सिद्ध हकीम बन गए।

स्वामिजी की गुरु महाराज, दाता दयाल महर्शि शिवभरत लाल वमर्न, से पहली भेंट

स्वामीजी पहले से ही महर्षि शिवभरत लालजी की लिखी पुस्तकों का अध्ययन करते थे। इन पुस्तकों से महत्वपूर्ण बिन्दुओं को वह अपनी कापी पर उतारते थे। एक दिन स्वामीजी श्रीनगर में सायं को अपने साथियों श्री श्यामलाल काचरू तथा श्री नन्दलाल बीरा के साथ बन्ड पर सैर कर रहे थे। सब की नज़र महर्षिजी पर पडी जो प्रवचन दे रहे थे। महर्षिजी ने सब को इशारे से अपने पास बुलाया। स्वामीजी को अपने

बगल में बिठाकर उनकी कापी को देखा और स्वामीजी के कन्धे पर अपना हाथ रखकर सामने बैठे श्रद्धालु भक्तों से कहा कि यह लडका पूर्ण है और एक लाख लोगों का उद्धार कर सकता है। वहां श्रीनगर निवासी श्री भास्कर नाथ रैणा भी बैठे थे जो महर्षिजी महाराज के शिष्य थे, इसलिए स्वामीजी जब भी वनपोह से श्रीनगर जाते तो श्री भास्कर नाथ जी के अनुरोध पर उनके घर रैणावारी में आकर रहते थे। जिनके साथ इनके गनिष्ठ संबन्ध हो गए थे। इनके घर स्वामीजी के दर्शन के लिए लोग आते थे तथा इनकी कृपा दृष्टि के भागीदार हो जाते। श्री भास्करनाथ के अस्वस्थ होने पर स्वामीजी ने उनसे कहा था कि वे अपनी आंखों से उनका अनिष्ट नहीं देखना चाहते। ऐसा ही हुआ कि स्वामीजी अगस्त 1973 में अंतरध्यान होगए तथा छः मास पश्चात श्री भासकर नाथ रैणा अंतरधान हो गयें।

स्वामीजी के परम प्रिय शिष्य श्री पंडित पृथ्वी नाथ जी पंडित दयाल थे जो मुरन पुलवामा कशमीर को छोडकर मुंबई मे रहते थे। उनके कथन के अनुसार स्वामीजी एक बार गहन चिन्तन में डूबे हुए अपने कमरे में बैठे थे कि अचानक कमरे में प्रकाश पुंज प्रगट हुआ, जो धीरे धीरे एक मूर्त रूप में बदल गया। यह स्वयं दयाल महर्षि शिवभरत लाल ही मूर्तिमान थे। अभिनन्दन तथा अभिवादन हुआ, कुछ बातें हुईं। स्वामीजी को उनके पास आने का निर्देश हुआ। स्वामीजी ने कहा मेरी माता इन दिनों बहुत ही अस्वस्थ हैं उन को ऐसी बीमार अवस्था में छोड कर कैसे आ सकता हूं। मूर्त रूप दयाल ने कहा, ठीक है! तुम अभी इनकी सेवा करते रहो तो यह ठीक हो जाएगी, फिर मेरे पास लाहौर चले आना। महर्षि दयाल की मूर्त छवि धीरे धीरे फिर प्रकाश पुंज में बदल गई और क्षीन होती हुई अदृश्य हो गई। इस घटना से स्वामि जी आनंद से ओतप्रोत हो गए। प्रातः जब माताजी नींद से जागीं तो वह बिलकुल स्वस्थ हो गईं थीं। स्वामीजी अपनी माता को आन की आन में स्वस्थ होते देखकर अति प्रसन्न हुए। वह कमज़ोर हो चुकी थीं। उन्हे तीव्र भूख लगी थी। प्रातः माता जी के लिए अपने हाथों से सूखे उपलों पर खाना पका लिया। क्योंकि उन दिनों स्टोव या गैस का चूला नहीं था। कई दिनों के बाद माताजी कुछ अन्न खानेके लायक हो गई थी। इसके बाद स्वामीजी माता की सेवा में ही जुटे रहे। उपलों पर खाना पकाते समय इस घटना की अभिव्यक्ति करते हुए इस भजन का जन्म हुआ,

गम कासिनम गमखारन्य, दमदारन्य फोलरोवनस ।
मनजूर ओरय कोरहस्य, प्रयम्ह ज्ञानय बोर्‌हस्य ।
सदाशिवहन्य वोरहस्य, अ'म्य यारन्य फोलरोवनस ।
गोविंदह सतचे वा'निये, यिय छिय वनन ज्ञन्यानिये ।
लोल्‌ह स्‌त्य हा ब्‌ चा'निये, दीदारन्य फोलरोवनस ।

ग,अ,भ 144,1

अर्थ–

गमखार ने तो मेरे गम को मिटा दिया,
दमदार ने ही मेरे मन को खिला लिया ।
ज्ञान और प्रेम रस से मेरे मन को भर दिया ।
स्वीकार मुझ को कर के सदाशिव ने वर लिया।
ज्ञान और प्रेम रस को भर के पिला लिया ।

तथा ज्ञानी यही सत्य वाणी कहते हैं कि मैं गोविंद, तेरे प्रेम के कारण खिल गया हूं।

सतगुरु के प्रति आभार प्रगट करते हुए इसी घटना का संकेत दूसरे भजन में भी देते हैं।

रोज़ि रोशन जलव्‌ पननुय ही शिव' हावुन प्यो'वुय ।
गचि रा'च्‌ मंज़ चन्द्रम ज़न गोख ओ'दय भगवन ।......
यो'त तामत न मो'कला'विथ तो'त तान्य प्रारुन प्यो'वुय ।
परम धामस त्‌ अन्नामस गोव्यन्द खारुन प्यो'वुय ।।

ग,अ,भ 18,20,1

अर्थ–हे सदाशिव! दिन के प्रकाश की तरह मुझे दर्शन देना पडा। जैसे अंधेरी रात में चंद्रमा उदय हुआ।...... जब तक हमें न छुडाया, आप को इन्तिज़ार करना पडा। गोविंद को परम धाम और अन्नाम पहुंचाना पडा। सतगुरु महाराज ने उन्हें जगाकर आनंद अमृत पिलाया जिस से खुमारी चढ गई। उनके ऊपर जो ज़िमेदारी थी वह पूर्ण कर दी। मेरा आवागवन का चक्र छूट गया है उन्होंने आनंदामृत पिलाया और मैं अपनी मस्ती और मोज में रम रहा हूं।

गुरुधारण

जब रात के समय स्वामीजी को प्रकाश रूप में महर्षि शिवभरतलाल के र्दशन हुए थे तो उसी बात को स्वामीजी ने मन में संभाल लिया था। एक दिन उन्हों ने मन में गुरु को ढूंडने का विचार किया तथा अपनी माताजी से निवेदन किया कि वह स्वामि शिवभरतलाल जी के दर्शन करना चाहते हैं। यह भारत के बटवारे से पहले की घटना है। माता ने स्वामि जी की इच्छा को स्वीकार करके सफर के लिए कुछ रुपए दिए। वे बाहर सडक पर पहुंचे, एक गाडी अपने आप रुक गई और स्वामीजी को गाडी में बैठने के लिए कहा। चालक ने बडे आदर से स्वामीजी को फ्रंट सीट पर बिठाया। स्वामीजी उसी गाडी में बैठकर जम्मू पहुंचे और आगे अनेक स्थानों का भ्रमण किया शाहपुर में संत लालप्रकाश जी तथा स्वामी रामजी और बनारस में संत तनकोडी से उन की भेंट हुई।

इसके पश्चात स्वामीजी लाहोर पधारे जहां महर्षि शिवभरत लाल ठहरे थे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि कशमीर से एक महापुरुष आ रहे हैं। उनके लिए चारपाई पर बिछौना लगवा दिया जाए। शिष्यों ने ऐसा ही किया। महर्षि स्वयं रसी वाली चारपाई पर यह कह कर पडे रहे कि 'हमारा क्या है, हम तो फकीर हैं'। स्वामीजी जब महर्षिजी के पास पहुंचे तो देखा कि महर्षिजी स्वयं बिछौने के बिना ही रस्सी वाली चारपाई पर सो रहे हैं। स्वामीजी ने देखा कि इतने ऊंचे संत बिछोने के बिना ही चारपाई पर लेटे हैं तो वे शरमिंदा हो गए तब महर्षिजी ने जाग कर कहा, 'गोविंद तुम आ गए '?
इस भ्रमण का उल्लेख देखिए।

घरे द्रायोस हे'न्दस आयोस करिथ प्रक्रमा ।
अमा यारो दिलस ओसुम साहिब् सुन्दुय तमाह ।
ज्ञान सो'दुर दया सागर संतन हुंद सरताज ।
पूर्ण कला साक्षत शिवई वुछित चो'लुम तमाह......... ।
गोविंद् ओसुय सतगुरु छारान छारन को'त को'त वोत ।
पतव टोठ्योस ओरय पानय वनि कस आलमाह । ग,अ,भ 173,1

अर्थ– मैं घर से निकलकर सारे भारत की परिक्रमा की, क्योंकि मेरे मन में प्रभु से मिलने की चाहत थी,.............। मैंने ज्ञान के भंडार, पूर्ण कला तथा साक्षात शिव को देखा और मेरी चाहत पूरी हो गई। गोविंद सतगुरु

की तलाश करते हुए अनेक स्थानों का भ्रमण किया परंतु अंत में उन्होंने ही मुझे अपनाया ऐसी मनोदशा किस से कहूं।

परम दयाल महर्षि शिवभरत लाल जी वर्मन पुरा कानून गोयान ज़िल्ला मिर्ज़ापुर राज बनारस उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे। 23 फर्वरी 1860 ई को जन्म लेकर 23 फर्वरी 1938 ई को उन्होंने महाप्रयाण किया। उन्होंने विभिन्न धर्म, समप्रदाय, पंथ, संतमत, राधास्वामी मत, सिख पंथ, इस्लाम, जैन, बुद्ध धर्म आदि तथा गीता, रामायण, महाभारत, वेद, उपनिषद तथा योग पर लगभग पांच हज़ार पुस्तकें लिखीं हैं। कुछ उपन्यास और कहानियां भी लिखीं हैं। इनकी लिखी कहानियां इतनी रोचक हैं कि पढकर ही रस का स्वाद मिल जाता है। इनकी सारी रचनाएं अधिकतर उर्दू भाषा में है। जिन में इन्होंने किसी भी पंथ या धर्म का खंडन नहीं किया है अपितु यर्थाथता के धरातल पर लाकर लोगों के सामने रखा है। महर्षि शिवभरत लाल वर्मन, जिनको दाता दयाल के नाम से पुकारा जाता है, एक उच्च्य कोटि के संत, चिंतक, विचारक, लेखक थे ; अपनी कृतियों में उन्होंने समाज, धर्म, वेद शास्त्र, नीति आदि को वास्तविक परिपेक्ष में प्रस्तुत किया है, तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण देकर उनका मूल्यांकन किया, जिन में समाज में व्याप्त आडम्बरों के नकारात्मक प्रभावों को दर्शा कर ठीक भूमिका पेश की गई है। इनके पढने से अनेक भ्रम दूर हो जाते हैं। महर्षि जी महाराज एम.ए.एलएल.डी शिकागो से डिग्री पाई थी। एक बार पत्रिका के देने के लिए उनके पास कोई पैसा नहीं था और न ही मिला, तो पत्रिका में इन्हीं के द्वारा लिखे एक पत्र में व्यक्त शब्दों में शक्तिशाली संत होते हुए भी आर्थिक विवशता का दर्शन होता हैं, "मैंने संपति को छोडकर निर्धन जीवन अंगीकार किया, सम्मान व आदर को नष्ट करके अनादर व अपमान का बाना स्वीकार किया। चमत्कार के रसास्वादन का परित्याग कर एकांत अवस्था को ग्रहण किया। हमारे जीवन का एक दर्जा था जो लगभग समाप्त हो चुका है.।" (महर्षि शिव वार्ता मासिक पत्रिका, हुश्यारपुर से उद्धरित)। महर्षि शिवभरतलाल के गरु श्री स्वामी शिवदयाल जी महाराज थे। जो एक परम संत थे। अपनी स्वानुभूति की पूर्णता को इन्होंने राधास्वामी नाम द्वारा ही प्राप्त किया, जिसे सुरत शब्द योग भी कहते हैं।

स्वामीजी ने महर्षिजी से विधिवत दीक्षा ले ली। तत्पश्चात आठों पहर अपने ध्यान में मग्न रहते थे। यद्यपि बाहर से लोग उन्हें काम करते

देखते तो थे किंतु वह अपने में ठहरे हुए ही रहते थे। स्वामी जी के बारे में वनपोह के कई जानकारों का कहना है कि वे कभी चिनार के बडे वृक्ष के नीचे समाधि में ऐसे लीन हो जाते कि हिमपात का उनको पता भी नहीं लगता था और वे हिम से आछादित हो जाते। कई बार उधर से गुज़रते हुए कई आदमियों ने बर्फ हटाकर उनको देखा, न सर्दीका पता न खाने का गम अपने में ही लीन रहा करते थे।

स्वामी जी के गुरु महाराज परम संत दयाल इनके घर वनपोह भी पधारे थे। महामहिम प्रोफेसर पंडित बलजी नाथ जी भी उस समय वहां उपस्थित थे।

व्यवसाय

स्वामीजी भक्ति रस से परिपूर्ण होकर ब्रह्म लीन थे ही, साथ ही साथ हिकमत भी करते थे। रोगियों का निशुल्क उपचार करते थे। कई घातक रोगों का उपचार सफल रूप से करते थे। इन की दी हुई दवाई राम बान का काम करती थी। खून उगलते अपने एक भक्त श्री श्यामलाल चवलगावं को आन की आन में नबात का प्रसाद खिला कर ठीक ठाक कर दिया। श्यामलाल ने मुझसे स्वयं यह घटना अगस्त 2005 में जम्मू मेरे घर में सुनाई थी क्योंकि श्री श्यामलाल अनेक वर्षों तक स्वामीजी के साथ संपर्क में रहे। उनके कुछ शिष्यों को कुछ विशेष रोगों का उपचार करने की आज्ञा थी। स्वर्गी शिवजी मलकनाग उनमें से एक थे जिन्हों ने, पाइल्ज़ रोग से ग्रस्त, मेरी धर्मपत्नि को केवल पांच खुराक दवाई से स्वस्थ कर दिया।

चवलगांव निवासी एक भक्त श्री सर्वानंद स्वामीजी के पास वनपोह में हारमोनियम पर गाना सुना रहे थे कुछ समय के बाद वह पैर में पीडा के कारण कराहे। कराहने को सुनकर स्वामीजी ने कारण पूछा तो उन्हों ने कहा कि पैर में कुछ घाव हो गया है और बडी देर से ठीक ही नहीं हो रहा है। बहुत उपचार किया परन्तु कुछ फायदा नहीं हुआ। घाव को देखकर स्वामीजी ने कहा कि प्रातः उपचार बताया जाएगा। घाव तो असाध्य रोग का रूप ले चुका था। प्रातः घर जाते समय उन्होंने दया करके कहा कि चवलगावं से कुछ दूर लामर ग्राम के निकट एक वनमें जाकर आगे चलते जाना तो एक खिले हुए फूलों का झुंड मिलेगा। उनको गोर से देख लेना। इनमें से एक फूल सर उठाकर झूमेगा और

तुम्हारी ओर घूमेगा, उसी फूल को मसलकर घाव पर लगाना, घाव तुरंत ठीक हो जाएगा, किन्तु एक चेतावनी का ध्यान रखना कि उस फूल की ओर से तुमसे कुछ कहने के लिए आवाज़ आएगी। वह बात सुनकर ही फूल का प्रयोग करना। बीमार ने ऐसा ही किया। किन्तु दर्द के कारण एक तो बडी मुश्किल से उस स्थान पर पहुंचा था, दूसरा अत्यंत पीडा के तथा घाव को ठीक करने को उतावला होने के कारण, स्वामीजी द्वारा दी गई चेतावनी को भूल गया। उनका कहना था कि फूल को मसलकर लगाते ही दर्द समाप्त हो गया। कुछ समय बाद जब वह स्वामी जी के पास आए तो शरमिंदा होकर कहा, महाराज मैं पीडा के कारण आवाज़ की प्रतीक्षा करना भूल गया। स्वामीजी ने कहा कि विधाता की मेहर के लिए बतर्न होना चाहिए। तुमको तो संजीवनी मिली थी। स्वामीजी "सर्वे भवन्ति सुखिना" के इच्छुक थे, तभी तो अपने एक भजन में कहा है।

या दितम त्युथ ताकथा मे, युथ दिमय सारिन्य स्वख्य ।
नत् म् हावतम का'न्सि हुन्द द्रख क्या करिथ दिल शाद दिम।"

ग,अ,भ 71,1

अर्थात – कर सकूं दुख दूर सब का, ऐसी शक्ति दे मुझे,
या न दुख दिखा किसी का, शाद कर दे दिल मुझे ।

स्वामीजी लोगों की निःशुल्क चिकित्सा करते थे और बीमार स्वस्थ हो जाते थे। इस कारण उनके पास रोगियां का आना जाना लगा ही रहता था। दवायियों के साथ प्रायः बकरी के दूध या घी मिलाकर बीमार का उपचार करते थे।

वे खेती, विशेष कर बाग बगीचे के रखरखाव, पेड लगाने में रुचि रखते थे। उनके घर में अवश्य ही गाय होती थी जिस कारण दूध की कोई कमी नहीं रहती थी। वे स्वयं ही गौमाता की सेवा करते थे।

स्वामीजी का व्यक्तित्व

स्वामीजी छः फुट लंबे कदावर पुरुष, सर्वकद, सढोल शरीर, आकर्षक साफ तथा सुन्दर चेहरा, तमतमाते हुए गाल, मधुर तथा आकर्षक वार्तालाप, मीठी तथा प्रभावशाली गम्भीर वाणी, साफ पहनावा, माथे पर केसर का तेजवान तिलक, मस्त सियाह नयन, सर पर सफेद पगडी,

लंबा फिरन, घनी भौंहें, जनेव पहने एक शोभायमान व्यक्ति थे। हर आगन्तुक का हाथ जोडकर अभिवादन करते थे। उन की चाल डाल से वे बुढापे में भी पुरधमक लगते थे। साधारण प्रकृति के होते हुए मानी थे। वे मांगने को अच्छा नहीं समझते थे। वे कहते थे कि गृहस्थ में रहकर साधु संत को स्वावलंबी तथा आत्म निर्भर होना चाहिए, नहीं तो मांगना पडेगा, तो वह गुरु नहीं, भिखारी होता है। गुरु देने को आता है लेने को नहीं। वे परिश्रम करके खाते और खिलाते थे। वे आश्रम बनाने के विरुद्ध थे क्योंकि कालान्तर मे आश्रम जटिलताओं तथा शढयंत्रों का केन्द्र बनते हैं, यह एक प्रकार की दुकानदारी है, कारोबार है जहां पैसा आता है, जो आश्रमों की गिरावट का कारण बन जाता है। दूसरी बात यह है कि जिज्ञासु भगत भगवत को पाने के लिए वैराग्य पाकर घर छोड देता है। फिर आश्रम का सहारा लेकर दूसरे झंजाल में फंस जाता है।

वे दंडवत करने से पहले ही हाथ जोड कर अभिवादन करते थे कितनी विनम्र भावना। समदृष्टि में अद्वतीय थे ही मित्र की भांति पेश आने में कोई उनके समान नहीं था। सत्य कहने में कभी संकोच नहीं करते थे। श्री अमरनाथ यात्रा करते समय शिशरम नागके पास शंकर भगवान के हाथ से पूडियों का प्रसाद पाने की घटना गुप्त नहीं रखी।

शुगर रोग से ग्रस्त होते हुए भी 80 वर्ष की आयु में भी प्रसन्न चित्त रहते थे। सर्दियों में मुंबई में रहते थे। जहां डाक्टर बॉस तथा भारतीजी से इनका परिचय हुआ था।

खामोश मुद्रा में सामने वाले से मूक वार्तालाप करते थे। अर्थात वे अंतरयामी संत थे। इस बात का साक्ष्य "गोविंद अमृत" भजन माला के आरम्भ में डाक्टर मेड बॉस तथा भारतीजी देते हैं ।

स्वामीजी का व्यक्तित्व तथा इसके भिन्न रूप,

1. भक्तों का मान रखने वाले –

स्वामीजी की एक भक्तिन माता गौरीशोरी खुशू का 15 दिन कोमा में रहने के बाद 4 मार्च 2001 फालगन शुक्ल नौमी को देहांत हुआ। वह स्वामि जी की अनन्य भक्तिन थीं। 8 मार्च 2001 को मैं उनके घर पर गया। उनके पुत्र श्री मदन मोहन से ज्ञात हुआ कि 1970–71 में डाक्टर खुशू ने काज़ीगुंड में नए बनाए गए मकान में गृह प्रवेश किया। उस से पहले

वे दूसरे मकान में रहते थे। 1959–60 के आसपास स्वामीजी के शिष्य डाक्टर बास काज़ीगुंड पधारे थे और डाकबंगले में ठहरे थे। वहीं पर ही स्वामीजी के दूसरे प्यारे भक्त डाक्टर खुशू से उनकी मुलाकात हुई थी। श्रीमती गौरी खुशू अर्थात भाभी अत्यंत संत सेवक थीं। गोसानीगुंड के स्वामि आत्माराम जी के पास जाया करती थीं। श्री आत्मारामजी ने भाभी जी से अनुरोध किया कि वे स्वामि गोविंद कौल के दर्शनों की अभिलाषा रखते हैं। भाभी जी घर पर आईं तथा स्वामिजी को आत्माराम जी से मिलने को राज़ी कर लिया। गोसाईगुंड कोई गाडी नहीं जाती थी। गवरीश्वरी के एक रिशतेदार जियालोजिस्ट की जीप में स्वामीजी सवार होकर आत्माराम जी के पास पहुंच गए। आत्मारामजी चिलम पीते थे तथा स्वामीजी के पहुंचते ही तम्बाकू की सारी संबंधित वस्तुएं गाईब थीं इसलिए कि वे जानते थे कि स्वामीजी बादशाह थे तथा किसी प्रकार का नशा नहीं करते थे। स्वामीजी का अभूतपूर्व अभिनंदन किया गया। लाल कालीन बिछाए गए। श्री मदनजी भी जीप में स्वामीजी के साथ थे। यह लगभग 1962–63 की घटना है।

कुछ समय पश्चात आत्माराम जी ज़बरदस्त बीमार हो गए। अस्वस्थ होने का संदेश पाते ही भाभी जी काफी बेकरार हो उठीं। हालांकि इन्हीं दिनों गवरीजी का आप्रेशन हुआ था मगर स्वामीजी के पास गोसाईगुंड जाने की ज़िद न छोडी। पालकी में वहां लिए जाने के लिए ज़िद की। फिर वहां पहुंच कर स्वामि आत्माराम जी की सेवा लगभग डेड मास तक उनके अंतरध्यान होने तक की। स्वामी आत्माराम जी का देहांत 1963–64 में हुआ। इस वार्ता के समय श्री सुरेंदर कौल भी मदनमोहन जी के पास बैठे थे।

2. अपने गुरु के लिए अगाध श्रद्धाभाव

तथा विश्वास होना अनिवार्य है। स्वामीजी यूसमर्ग से आते हुए बता रहे थे कि नुंदऋषि [33] को अपने गुरु का अपमान करने के कारण चमार के घर में जन्म लेना पडा।

3. स्वामीजी का आगमन पहले से ही नियत था।

श्री एस एन कौल, शास्त्रीनगर जम्मू में किराया पर रहते हैं। मैं 10–03–2001 को उन से जाकर मिला। उनकी धर्मपत्नि श्रीमती चूनी देवी जी श्री कृष्ण जू राज़दान के वंश से है, चूनी देवी ने घडा टूटने की वार्ता सुनाई कि अमरावती वेशिमाली का सुसराल का नाम था। घड़ा टूटने की घटना पर उत्तर में राज़दान साहिब ने रामजू को पद्य के रूप में कहा,

बेनि म्यान्य पार्वत्य रूप किन्य सोंदर्य,
डंबि किन्य ज़्यवनस संत गोबर्य।

अर्थात मेरी बहन कोई साधारण नारी नहीं है। इनके गर्भ से संत महा पुरुष उत्पन्न होंगे। राज़दान साहिब का स्वामि गोविंद कौल के जन्म लेने की ओर इशारा था ।

4. स्वामीजी मध्य मार्गी

स्वामीजी सहज साधना में मध्यमार्ग या सहज मार्ग को अपनाते हुए कभी भी संसार तथा इससे संबंधित कर्मो को त्यागने के लिए बल नहीं देते थे। मुझसे ऐसे कहा कि "मैं तुमसे मास आदि छोडने को तो नहीं कहूंगा" या किसी दैनिक गृहस्थी कर्म को छोडने का आदेश तो नहीं दिया, अपितु थोडी विधि अनुसार तथा नियमित मात्रा में प्रयोग हो। उदाहरणतया कि "शाम का खाना मात्रा में कम लेना चाहिए" आदि। किंतु अभ्यास के लिए मन की एकाग्रता तथा चित्त की शुद्धि पहली शर्त है। चित्तृ वृत्तियों को बाहर से हटाकर अंदर की ओर लाना है। विषय विकारों से हटाकर सुरत को एक स्थान या भ्रूमध्य में टिकाना होता है। यहां काफी सारे विचार घूमने लगते हैं। अंदर बाहर से या कोई विघ्न होगा, फोन की घंटी बजेगी या दरवाज़े की घंटी या अन्दर शादी बियाह जैसे विचार या किसी के रागद्वेश का विचार आएगा।

5. अहं का अत्यंत अभाव

चूनीजी ने फिर सुनाया कि एक दिन मैं स्वामीजी के चरणों पर अत्यंत श्रद्धा से गिर पडी और कहा कि आप निसंदेह बडे महात्मा हैं। मुझ पर और मेरे संतान पर अनुग्रह की दृष्टि कीजिए। इस पर स्वामीजी अत्यंत

गंभीर तथा विनम्र भाव से बोल उठे। देखो मैं कोई बडा साधु नहीं हूं क्योंकि मेरे से भी बडे साधु महात्मा, दरवेश अभी भी मौजूद हैं। एक वृतांत सुनाता हूं।

"एक दिन मैं कुछ मित्रों के साथ पैदल वनपूह से श्रीनगर जा रहा था। यातायात के साधन थे ही नहीं। चलते चलते मेरा फ्लीट कहीं से फट गया था। इसे मरमत कराने की आवश्यकता पडी। बिजबिहारा से आगे संगम के निकट किसी स्थान पर पहुंच गए। 'स्थान का नाम भूल गई हूं'। वहां पर एक मोची जूतों की मरम्मत कर रहा था ; मै उसके पास खडा हो गया। हाथ जोडकर वह मेरे चरणों पर गिर पडा। मैंने उसे ऐसा करने से रोक कर कहा कि भई कृप्या मेरे फ्लीट की मरम्मत कर दो। उस ने कहा कि मैं तो कब से आप का ही इनतिज़ार कर रहा था। सो आप आ गए तो आपकी क्या सेवा करूं। परंतु मेरे सिलाई का धागा मेरे पास नहीं है। क्योंकि फ्लीट की सिलाई के लिए चमडे का नहीं सूती धागा लगता है। यदि आप कुछ देर प्रतीक्षा करेंगे तो मैं घर जाकर वहां से धागा लाऊंगा। ऐसा कह कर वह तुरंत घर की ओर तेज़ी से चल पडा। हम वहीं पर रुक गए। उस का घर दरया के पार था। दरया पर न कोई पुल न नाव। किनारे पर पहुंचकर झुक गया। अपने दोनों हाथ तथा पांव पानी पर रखकर तेज़ी से पानी के ऊपर चल कर दरया को पार कर लिया तथा तुरंत घर से धागा लाकर उसी प्रकार दरया को पार करके हमारे सामने आ पहुंचा। कुछ देर में मेरे फ्लीट की मरम्मत हो गई और हम आगे निकल पडे। अब बताओ कौन बडा है, मैं या वह?" मैं ने कहा स्वामी जी केवल आप ही बडे हैं। क्योंकि मुझे आप पर असीम श्रद्धा है। 'स्वामीजीने यह घटना चूनी जी को तब सुनाई थी जब रवि अपने पुत्र को गोद में लेकर प्रणाम करने के लिए उनके चरणों पर गिर पडी थीं'।

6. साफ सफाई, स्वच्छता पर ज़ोर–

स्वामीजी हर बार कहते थे कि साफ रहो, साफ खाना खाओ, साफ पहनो, साफ लोगों के पास उठो बैठो। कान, आंख, वाणी साफ रखकर हाथ से इन्साफ को न जाने दो। सफाई पर तो पूरी कविता ही लिख डाली थी। कि साफ का दर्शन पाने के लिए सफाई को अपनाना

आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। रचना के कुछ पद यही भाव दर्शाते हैं।

साफ तन थाव साफ मन थव,   साफ पा'र वस्त्रहन   ।
साफ अन्न खेह, साफ जल चे',   साफन्य स़त्य व्वथ त् बेह।
साफ वा'णी,साफ अ'छ थव, ...अथ् निशे इनसाफ म् त्राव।
साफ कन थव सत श्रवण कर,   का'न्सि ह्ंज़ न्यंद्याम् बोज़...।
अदय साफ बोज़न् यियिय। साफ दियि दर्शुनुय।   ग,अ,भ 97,1

7. सुदृढ शरीर में स्वस्थ आत्मा। वे इस बात पर अधिक बल देते थे कि सफाई के साथ साथ शरीर तथा आत्मा को स्वस्थ तथा सुदृढ रखने के लिये सदा प्रसन्न चित्त रहना अनिवार्य है, हंसना और हंसाना संजीवनी है। इस से मन की बाछें खिल जाती हैं। शरीर तनाव से मुक्त हो जाता है। अपना उदाहरण देते हुए कहते थे "मेरे विरोध में कितनी बातें कहीं जाती हैं तस पर भी मेरे ऊपर ऐसी निरर्थक बातों का तनिक भी प्रभाव नहीं पडता है। मेरे मन में उनके विरुद्ध कोई दुर्भावना नहीं रहती है। इस कारण मेरी आनन्द अवस्था में कोई अंतर नहीं पडता है। किसी के विरुद्ध कोई भी दुर्भावना रखना या क्रोध करना ठीक नहीं है। इन मनोविकारों से प्रथम अपने ही शरीर पर दुष्प्रभाव पडता है, रक्त में दूशित तत्व मिल जाते है और रक्तचाप बढ जाता है, शरीर कांपने लगता है आदि"। मैं ने कितनी बार इन्हीं बातों से संबंधित कुछ प्रशनों का समाधान उन से पूछना चाहा, किंतु उनकी ओर देखते ही या उन से बात करते ही मन के अंदर शंका का समाधान हो जाता था प्रश्न पूछने की बात तो रह ही जाती थी। उनको पहले ही दूसरे के मन का भाव ज्ञात होता था।

8. गृहस्थी साधु

स्वामीजी ने न कभी संयासी का वेश धारण किया और न ही तपस्या के लिए गुफाओं या गारूं में गए। उनकी चाल ढाल से तो वे सामान्य तथा साधारण मानव ही लगते थे किंतु पहचानने वाले उन्हें उनकी आंखों की मुद्रा से पहचान ही लेते थे। जिस आयु में मैंने उन्हें पहली बार देखा वह उनकी परिपक्व अवस्था थी। वे हर आगंतुक पर प्यार की वर्षा करते थे। भक्त जनों को वे भजन गाने के लिए कहते थे और मस्त हो जाते थे। उनका व्यक्तित्व ऐसा आकर्षक तथा लुभावना था कि सारे विशेषण कम

पड जाते हैं। उनके सामने कितने ही लोग लालसा लेकर आए थे कि उनके साथ शास्त्रार्थ करेंगें किंतु प्रभावित होकर लौट जाते थे क्योंकि वे प्रभु भक्ति के संबंध में निरर्थक विवाद में न पडकर यर्थात की भूमिका प्रस्तुत करते थे। एक बार स्वामीजी के भक्त श्री श्यामलाल काचरू के रिशते की एक विधवा बहन, देवकी, गोविंदजू बान के पास ठहरी थी। वह कुछ गुथी सुलझाना चाहती थी और बान साहिब के साथ तर्क करने लगी किंतु बान साहिब उसे सीधे स्वामीजी के पास ले गए। स्वामीजी को प्रणाम करके कुछ विवाद छिड गया। ऐसा कहा जाता है कि महिला कुछ घमंडी थी। इस अहंकारी देवकी जी को समझाते हुए स्वामीजी ने यर्थात की भूमिका पर लाकर उस के अहंकार को समाप्त कर दिया और उस की सारी गुथियां सुलझ गईं और इनका आचरण देखकर नत मस्तक हो गई। कुछ पद प्रस्तुत हैं,

योॅद दयायि ह्यंज़ अलम गिलवि भगवान,
त्यलि सारिन्य स्वर्ग श्रोॅद छु न्यर्वान।
दिवता साॅरिय व्यशन ब्रह्मा, ...।
आॅब् रुस्त द्रायि नय शिव त उमा ।
क्षमा करवुन सु करि दीवी ।
ज्ञान प्राव दय चेॅह वरि दीवी।
दक् मृह मार पानस पख वति स्योॅद।
छन्ह दकन ह्यंज़ काॅम दकलव वोॅद।
थोॅद गोव्यन्द ध्यान दरि दीवी। ग,अ,भ 171,1

अर्थात हे देवी! अपने आप पर अनुग्रह तो करो। सब परमेश्वर की दया से हो रहा है। किन देवताओं तथा ब्रहमादि की बात कर रही हो जिन में कुछ न कुछ कमी है। यही हाल सब का है। इस लिए अहंकार छोड, सीधा पथ लेकर ज्ञान प्राप्त करना ही तेरे लिए श्रेयस्कर है। तभी तो ईश्वर आप पर अनुग्रह करे गा।

वे सम भाव को प्राप्त होकर सब पर समदृष्टि रखते थे। वे बाहरी आडम्बरों से परे थे। देखने पर वे बामज़हब लगते थे तो अंदर से मज़हबों की संकीर्णता से ऊपर थे। मज़हबों के आडंभरों से यकदम ऊपर थे।

....आशकन हुंद मज़हबई मिल्लते खुदा।
तिम ना कुनि मिलतन छि पाबंद, मज़हबन निश दूर हय ।
ने'बर् गोविंद बा मज़हब दिलह किन्य छु लामज़हब ।
आशकन तसला छु गोमुत मज़हबन हुंद पूरहय। ग,अ,भ 90,1

अर्थात भगवत भक्तों का मज़हब भगवान का मज़हब है। प्रभु के आशकों अर्थात भक्तों ने तो मज़हबों की आषा ही छोड दी है। गोविंद तो बाहर से मज़हबी दिखाई देता है किंतु अंदर से मज़हब से दूर है। बाहर से बामज़हब रहने को आवश्यक मानने का कारण यह है कि संत, समाज का आदर्श होते हैं। लोग तुरंत इनके क्रिया कलाप का अनुकरण करते हैं इसलिए सामान्य जनता को अपने धर्म पर चलने के लिए प्रोहत्साहित करने हेतु ऐसा कहा है और स्वयं भी पूर्ण रूपेण ऐसा ही व्यवहार करते थे।

9. व्यवहारिक दृष्टि

वे धर्म, पंथ, आस्था, रंग, वंश, स्त्री–पुरुष, छोटा–बडा, धनवान–निर्धन, हर एक के साथ समता भाव तथा साधुत्व का व्यवहार करते थे। उनके एक जन्म दिन पर मैंने ऐसा ही व्यवहार करते देखा कि जब नवैद्य बांटते तो चेहरा देखे बिना हाथ में थमा देते। इसके विपरीत मैंने कई महानुभावों को देखा है जो अपने पराये, अमीर तथा गरीबो को दो दृष्टियों से देखते थे। जिस से मेरे मन में ऐसे साधुओं के पास जाने की कोई भूख ही नहीं रही। स्वामीजी का कथन है कि जन्म से कोई ऊंचा नीचा नहीं होता वर्ण वर्तमान क़र्मों से ऊंचा नीचा होता है। वे कहते है–

ब्रह्मण वर्णन ब्रह्मण मा'रिय कति छुख सयु ब्रह्म ज्ञान,
शरण रूद्य रूद्य वुछ नीचिय त'र्य अमि खोत् नीचिय जान।.
ज़ा'च़ हुन्द अभिमान क्या छुव् करुनुय ब्रह्मण ब्यियि छुस कोल,
त्यलि छुख ब्रह्मण त्यलि छुख कोलुय हरगाह छुय दय लोल।

ग,अ,भ 37,1

अर्थात अपने आप को ब्रह्मण कहने वालों ने तो अपना नाश ही कर दिया है। देखो नीच कहे जाने वाले शरण रह कर तर गए। इसलिए अपनी ऊंची जाति का अभिमान मत करो। तुम तब ब्रहमण तथा कौल हो यदि तेरे मन में भगवान का प्रेम है। यही भजन पढ कर समझने से ही मेरे मन में सादक गनय के बारे में विद्यमान शंका का समाधान हो गया।

- **स्वामीजी आधीन तथा विनम्र स्वभाव के संत थे।** जिज्ञासु जनों को वास्तविकता का ज्ञान करा के सब पर कृपा दृष्टि रखते थे।
- **आध्यात्मिक ऊंचाई** को छूने के कारण सोफी संत अहद ज़रगर, सुलतान साहिब आदि आप से आत्मिक संबंध रखते थे।
- **स्वामीजी भक्तोंकी शंका का समाधान** तथा दुखों का निवारण करते थे
- **भक्त उनसे कितना भी दूर हो** यह कोई समस्या नहीं थी। दुखों का समाधान करना तो उनका सर्वोपरि कार्य होता था।

जून 1972 की बात है डाक्टर बॉस का पत्र स्वामीजी के पास आया। पत्र अंग्रेज़ी में था। अर्थ सुनाने के लिए पत्र मेरे हाथ में दिया। पत्र का सार कुछ ऐसे था, "स्वामीजी ! मैं नित्य आप के द्वारा सिखाया हुआ राजयोग का निरंतर अभ्यास करता हूं। आज प्रातः काल मैं सोया हुआ था तो कोई मेरे बालों को अपनी अंगुलियों से सहला रहा था आंख खुली तो एक तेजवान दम्पति को सामने खडा देखा। पुरुष जटादारी तथा मृगछाला पहने था। वह कौन थे"? स्वामीजी ने आदेश दिया, 'इसका उत्तर लिखो' सुन कर मैं प्रस्तुत हुआ, तो स्वामीजी बोले, क्या लिखोगे? जो आप लिखने को कहेंगे। वे झट से बोल उठे, अच्छा रहने दो मै स्वयं उन्हें समझा दूंगा। स्वामीजी ने नेत्र मूंद लिए। कुछ अंतराल के बाद स्वामीजी ने नेत्र खोले और सामान्य बातचीत करने लगे।

10. सब के मित्र

वे कृपालू तथा सबके मित्र थे, जो भी उनके पास आता था अपनी मानसिक, देहिक, आध्यात्मिक अथवा और कोई इच्छा लेकर आता एक मित्र की भांति उनकी पिपासा को शांत करते थे। वे सुगंधित पुष्प की भांति सुगंध भांटते थे। कुछ दृष्टांत प्रस्तुत हैं–

स्वामि लक्ष्मणजी प्रायः स्वामीजी के सम्पर्क में रहते थे। एक दिन जब श्री लक्षमणजी वनपोह आकर स्वामि जी के पास बैठे तो स्वामी जी ने उनसे पूछा कि विद्वान होने में आपका कोई सानी नहीं है। आपने तो कशमीर शैव दर्शन को सारे संसार के सामने रखकर संसार का तो उपकार किया ही, साथ में कशमीर का नाम संसार में प्रसिद्ध किया है अब अपने बारे में सावधानी बरतना, बुद्धिमानी होगी। श्री लक्षमण जी ने कुन्डलिनी योग की पद्धति का खुलासा किया। कुण्डिलिनी योग के आगे की बाते

चली। फिर स्वामीजी से लक्ष्मणजी की गुप्त वार्ता चली। स्वामीजी के साथ उस समय पंडित दयाल श्री पृथ्वीनाथ जी, श्री जानकी नाथ जी 'अ'रह निवासी' आदि उपस्थित थे। श्री लक्ष्मणजी जब वनपूह आते तो स्वामीजी के श्रीमुख से इस भजन को सुनाने का अनुरोध करते और आनंद विभोर हो उठते। वे बार बार इस भजन को स्वामीजी के श्रीमुख से सुनना पसंद करते थे। क्योंकि इस भजन में परमशिव का ही गुणगान है। स्वामीजी का उनके साथ गहरा प्रेम अनुकरणीय है।

'न तति मूजूद न तति फना अमासना पथ क्या रूद।
न दो'गुना न' कुन ज़ो'ना, शिन्या तथ शायि गव नाबूद। ....
..........पान् सान शिव ज़ोनुन पन्पना। अमा सना....। ग,अ,भ 164,1

अर्थात जहां न मौजूद है न लय, न एक है न दो, न शुन्य है न अशुन्य तो शेष क्या रह गया।......... मैंने बस शिव ही शिव का ताना बाना देखा।

ईश्वरस्वरूप लक्ष्मणजी के स्वामीजी के साथ घनिष्ट संबन्ध थे तथा प्रायः परस्पर संपर्क में रहते थे। इस बात की पुष्टि तब हुई जब रैणावारी श्रीनगर में स्वामीजी के महाप्रयाण के पश्चात भक्तों ने सत्संग का आयोजन किया था। सामने स्वामीजी का हाथ जोडे हुए आदम कद फोटो रखा हुआ था ; सत्संग के समय स्वामी लक्ष्मणजी पधारे। जग में काफी भीड थी, उनका माल्यार्पण तथा सत्कार किया गया फिर वे स्वामीजी के फोटो के सामने नेत्र मूंद कर मौन खडे रहे, मानो कुछ मूक वार्ता हो रही थी। मैंने उन दोनों के अगाध प्रेम तथा आपसी निकटता को करीब से देखा। इसी अवसर पर मैंने पहली बार उनके दर्शन किए थे। फिर आसन ग्रहण किया। कुन्डलिणी योग के बारे मे पहली बार जानकारी स्वामी लक्ष्मणजी के मुख से रेडियो कशमीर के माध्यम 'म्या'न्य ज़िंदगी म्योन कार' प्रोग्रराम से मिली थी। अहद ज़रगरजी का भी साक्षातकार इन्हीं दिनों रेडियो कशमीर से आया था।

11. हितैषी

अप्रिल 1973 की एक शनिवार के दिन मैं स्वामीजी के दर्शन के लिए वनपोह गया। मेरे प्रणाम का उत्तर उन्हों ने पूर्वत दिया। ऐसा करने से सामने वाले आगंतुक का अहं समाप्त हो जाता था। मैं उनके चरण कमलों पर गिर गया। मेरे सर को अपने करकमलों से सहलाते हुए मझे बैठने को कहा। उनके हाथ फेरने से मेरा सारा शरीर में रोमांचित सा

होता था, मानो सरसे पैर तक एक विद्युत की मीठी तरंग सी सरक जाती थी। जिस का बार बार मैं इच्छुक रहता था। उन्होंने पूछा कि अभ्यास में कहां पहुंचे हो? अर्थात मेरे कहे हुए निर्देश पर चलकर अभ्यास में कितनी उन्नति हुई। तो सदा की तरह मेरा उत्तर यही था कि अभ्यास तो कर रहा हूं, मगर मेरे करने से क्या हो सकता है? पहले की तरह वह कहते थे कि मुझको यह पता है अतः तुम्हें दिया हुआ काम मैं स्वयं ही करता हूं। परेशान होने की कोई बात नहीं है। अनजाने में मैंने प्यार से विनती की कि अपने हाथ से अपना एक फोटो दीजिए। मेरी विनती सुनकर मेरी ओर देखे बिना ही खडे हुए और पंजों के बल बाजू को उठाकर ऊपर के ताकडे से कुछ टटोलने लगे। मेरी नज़रे उठे हुए बांहों का पीछा कर रहीं थीं। इतनी देर में छपा हुआ अपना चित्र मेरी ओर नाराज़गी की मुद्रा प्रदर्शित करते हुए फेंक कर कहा, फोटो को क्या करना है? फोटो को पूजना तो हिजडों का काम है, तस्ववुर से काम लिया जाता है। मैंने स्वामीजी की आंखों में झांक कर देखा, वे नीचे बैठ गए, मैं चित्र को उठाऊं या नहीं इस दुविधा में पड गया। एक ओर सामने स्वामीजी विराजमान और दुसरी ओर इनका फर्श पर पडा चित्र। मैंने फोटो को उठा ही लिया। मेरा सर नीचे लटक रहा था कि क्या किया जाए। अंततः स्वामीजी ने मुस्करा दिया जिस से मेरे मन का बोझ हलका हो गया। बहुत समय के बाद इस घटना का आशय मेरी समझ में आया कि मूर्त रूप में सतगुरु कृपा की किरणे बिखेर देते हैं मन में इनका छाया चित्र अंकित होता है। फोटो एक बेजान वस्तु है जिस की छाया मन पर नहीं उतरती है। इसलिए इस का रखना ही व्यर्थ है। स्वामीजी के अनुसार

> है तस्वुर जिनको जम जाता नहीं,
> पूजते रहते हैं वही तस्वीर को। ग,अ,भ 32,2

कुछ समय पहले की बात है कि मैं माता ज़परी कौतवाल के साथ एक दिन स्वामीजी के पास वनपोह गया था तो यही प्रश्न स्वामी जी ने पूछा था कि कहां पहुंच गए हो? मैं उत्तर देने का प्रयास ही कर रहा था तो ज़परी कोतवाल ने मानो सुफारशी के तोर स्वामी जी की ओर देखकर कहा कि महाराज यह क्या कर सकता है? करना तो स्वयं आप ने ही है। स्वामीजी ने बडे प्यार से उन्हें कहा कि तुम्हारा कहना ठीक ही तो है, करना तो मैंने स्वयं ही है। फिर भी अभ्यास का समय बढाने क़ा

निर्देश दिया था। यही आश्वासन मुझको आज तक संभाले हुए है। ऐसा लग रहा है कि हिमालय पर्वत मेरे पीछे खड़ा है।

एक बार बातचीत में उन्होंने कहा कि कोई भी काम करते हुए अपने ध्येय का ध्यान इसी प्रकार कभी नहीं छोडना चाहिए जिस प्रकार महिला अपने सर पर पानी भरी मटकी उठाए हाथों से पकडे बिना चल भी रही है, बातें भी कर रही है, हाथ भी हिला रही है, किंतु ध्यान उसका घडे के संतुलन की ओर रहता है। इस दिन के लिए स्वामीजी ने मुझे उनके पास रात को ठहरने के लिए कहा था और मैं तैयार हो कर आया था। सायंकाल होने वाला था कि साथ में बैठी रत्नी नाम की एक युवती जो स्वामीजी की भक्त थी, खडी होकर स्वामीजी से विदा लेने लगी। उन्होंने कहा कि कैसे जाओ गी ? क्योंकि अब कोई भी गाडी मिलना दुर्लभ है। महिला ने कहा "यदि खन्नाबल तक पहुंच जाऊं तो वहां से श्रीनगर के लिए अंतिम गाडी मिल सकती है जो अनंतनाग से आती है।" स्वामीजी मेरी ओर आदेशात्मक दृष्टि से देखकर बोले : "रत्नी के साथ जाकर खनाबल में इसे श्रीनगर गाडी में बिठा आओ।" तेज़–तेज़ पग लेते हुए हम खन्नाबल पहुंच गए। अब पूरा अंधेरा छा गया था। कुछ देर प्रतीक्षा करके बस आगई और रत्नी गाडी में सवार होकर कहने लगी कि श्रीनगर में उसका भाई बस अड्डे पर उस की प्रतीक्षा कर रहा होगा, चिंता की कोई बात नहीं। मेरे लिए वनपोह जाना तो प्राथमिकता थी किंतु राह में कुत्ते तथा भूखे गीदडों की भरमार थी, वनपोह जाने का निर्णय बदल गया और मैंने अनंतनाग की दिशा पकडी और वास्तविक दिशा लेने से चूक गया। कोई बतीस वर्ष पश्चात इसी वर्ष रत्नी जम्मू में मिली तथा खूब हंसी और कहा कि स्वामीजी आपकी परीक्षा ले रहे थे। एक में तो पास हो गए और दूसरे में फेल। मुझे उस समय रत्नीजी का वहां होना ऐसा लगा था जैसे भूखे के सामने से परोसी हुई अन्न की थाली छिन जाए।

अप्राह्ण के खाने के समय वे मुझे अपने साथ रसोई के साथ बने छोटे कमरे में ले गए और खाना खाने के लिए ऊनी चादर बिछा दी। स्वामी जी के साथ मैं कस कर बैठा हुआ अपने को बहुत ही छोटा किंतु धन्य भी महसूस कर रहा था। खाना आरंभ करने से पुर्व उनके सामने रखी थाली में से अपने हाथ से मेरी थाली में पनीर का एक टुक्डा डाल कर कहा इसे तुरंत खाओ। मैं ने ऐसा ही किया। वैसा स्वाद आज तक भी

कोई पनीर खाने से नहीं आया। वास्तव में वह पनीर का स्वाद नहीं किंतु उनके अनुग्रह तथा कृपा के आनंद का ही परिचायक था क्योंकि संसारिक पदार्थों का स्वाद या आनंद तावत मात्र ही होता है और उनके अनुग्रह का आनंद तो अभी भी महसूस कर रहा हूं। उनकी सेविका माता ज़परी के हाथ का खाना बहुत ही साफ और स्वादिष्ट होता था।

खाना खाने से निवृत होकर हम फिर पहली मंज़िल में उनके कमरे में आए तो उन्होंने कहा, श्री बंसरी लाल कोतवाल से कहना कि अब गर्म टोपी और स्वेटर नहीं बनवाना। इसकी अब कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि दयाल अब आ गए हैं। मैं उनके आशय को नहीं समझ सका। मैं तो उसे एक साधारण सूचना ही समझ रहा था। उनके शरीर त्यागने और परमधाम पधारने का ज़रा भर भी विचार मेरे मन में नहीं आया। उन्होंने अपने फिरन के बाजू ऊपर सरकाते हुए मुझे अपने क्षीण होते बाहों को दिखाया। मैं दुखी होने के सिवा क्या कर सकता था। उन्हों ने जो साफ इशारा दिया उस पर मैं विशवास न कर सका। मैं उन दिनों श्रीनगर में बी.एड का कोर्स कर रहा था जो लंबा खिंच गया था। इसी कारण प्रायः श्रीनगर से ही वनपोह आता था। घर में छोटे भाई और बच्चे तथा पिता जी की भी खबरगीरी करनी पडती थी इसलिए समय का अभाव रहता था। मैंने स्वामीजी की चेतावनी को श्रीनगर में बंसरीलाल तथा ज़परी कोतवाल को सुना कर दूत का ही काम निभाया।

उस के बाद मैं जून 1973 ई के मास में स्वामीजी के दर्शन के लिए गया। स्वामी जी पहली मंज़िल में दरवाज़े के सीध में सामने बिस्तर पर लेटे हुए थे और डाक्टर खुशु की धर्मपत्नि गवरी जी चमचे से उनको दूध पिला रही थी। स्वामी जी मना कर रहे थे किन्तु श्रीमती गवरी खुशु काली गव का दूध है महाराज, ऐसा कहकर ज़िद करके पिला रही थी और स्वामी जी रुचि न होते भी पी लेते थे। स्वामीजी के मुख पर गढाई दृष्टि से गवरीश्वरी की मनो दशा साफ झलकती थी। मैंने झुक कर पैरों पर ओढी चादर के नीचे से हाथ घुसा कर दोनों पैरों का स्पर्ष किया? दाऐं पैर को वे कुछ समय पहले छूने नहीं देते थे। परन्तु आज कुछ आपत्ति न जताकर कहा कौन है? मैं हाथ जोड कर सामने खडा हो गया। कनिष्ठ शिष्य होने के नाते उन को मेरे निवास ग्राम याद करने में कुछ देर लगती थी। तो मैंने स्वयं बताया और उनकी क्षीण आवाज़ में मैं एक ही शब्द सुन सका। वह था 'हों'! गवरी जी वरिष्ठ शिष्या होने के

नाते स्वामी जी के महाप्रयाण को समझने के कारण कुछ दुखी तथा चुप थी। जिस का मुझे तनिक भी विश्वास नहीं हो रहा था। कुछ देर ठहर कर मैं वहां से चल दिया। आज भी मुझे दुख इस बात का है कि उस के बाद मै फिर कभी स्वामीजी को न देख सका और न ही कुछ सेवा कर सका क्योंकि एक ओर बी. एड. और दूसरी ओर मैं सदा गृहस्थ के काम मे किसी न किसी प्रकार से उलझा रहता और मिलने का समय बहुत ही कम मिलता था।

स्वामीजी अपने शिष्यों की निगरानी रखते आए हैं। मेरा एक अनुभव मुझे पूरी तरह से स्मरण है। मैं त्राल उच्च माद्यमिक विद्यालय में नौकरी करता था। एक रात मुझे सपना आया कि स्कूल की लायब्रेरी के कमरे की एक खिडकी को आग लगी हुई है। तत्काल ही ज़ोर की बर्षा तिर्छे कोण से आई और जलती हुई खिडकी की आग भुजा दी। खिडकी को मामूली सा दाग लगा था और कमरे के अंदर की ओर एक मानचित्र आधा जल चुका था। मैं प्रातः स्कूल पहुंचा तो ऐसा ही पाया। कमरे का ताला खोला तो उसी खिडकी और नकशे को जला हुआ पाया। प्रिंसिप्ल ने पोलीस बुलवाई। इनस्पेकटर ने प्रिन्सिपल से कहा, नुकसान कुछ भी नहीं है परचा कटवाना निरर्थक होगा। पता नहीं परचा कटवाने पर क्यों ज़ोर दिया गया। मुझको तथा कुछ चपरासियों को पुलिस पूछ ताछ करती रही। अपने महकमे तथा पुलिस के बडे अफसर आने लगे। उनकी मान्यता थी कि आग अंदर से लगाकर बाहर से ताला लगाया गया है। चाबी तो मेरे पास ही रहती थी किंतु कई और अध्यापकों का सामान भी वहां था। हमारी परेशानी बढ गई। जब खतरा पराकष्ठा को पहुंच जाता है तो निडरता जन्म ले लती है। मेरे मन में यह भी विचार आया कि मेरी जानकारी के बिना ही मेरे रक्षक द्वारा जब आग बुझा दी गई थी अब किस बात की चिंता है। इस से मेरे अंदर निडरता आगई। तत्पश्चात मुझको जान बूझकर फंसाने वाला प्रिंसिपल तथा उसके साथी स्वयं फंस गए तथा बहुत सारा घूस देकर उनको छुटकारा मिला। यह है स्वामी जी के अनुग्रह का प्रभाव।

यद्यपि स्वामीजी मूर्त रूप से हमारे बीच में नहीं है फिर भी भक्त जनों के हृदयों में पूर्ण रूप से मौजूद रह कर पथ प्रदर्शक हैं। वे कितने दयालू हैं कि अपने भक्तों का हर समय खयाल रखते हैं। अभ्यास में किसी अवरोध को सपने में आकर अनेकों को दिशा निर्देश मिल चुका हैं। कभी

किसी महापुरुष तथा ज्ञानी से मिलने का हेतु बनाकर सत्संग द्वारा समाधान मिलता है। ऐसा ही इनके दूसरे भक्तों के साथ भी हो रहा है। स्वामीजी के कुंजी वाले दूसरे शिष्य भी हमारी सहायता को आतें है।

सन 2000 के फर्वरी मास तक मैं केंसर (अंतिम स्टेज) से पीडित था पर उनकी कृपा से ही ठीक हुआ हूं। मैं इसको अपना पुनर्जन्म मानता हूं। घटना ऐसी ही है जिस की जानकारी पाठकों को इसलिए देना चाहता हूं कि उनको भी कुछ इस अनुभव का कुछ लाभ प्राप्त हो सके। 1996 ई से मैं रक्तस्राव से पीडित था जांच पर डाक्टरों ने इसे पाईल्ज़ के रोग बताया तथा पाईल्ज़ की अवषधियां लेने लगा किंतु रक्त अधिक ही आने लगा तथा दिसंबर 1999 तक भयानक स्तर तक जा पहुंचा। मैंने अपने भगवान से प्रार्थना की कि कुछ संकेत मिल जाए कि क्या किया जाए। जनवरी 27 को सपना आया कि मैं एक बहुत बडे बूचड खाने के सामने खडा हूं और बहुत से मृत पशु उल्टे लटक रहे हैं, जिस पशु की ओर मेरी दृष्टि जा रही है कोई मनुष्य उसी का पेट चीर रहा है। प्रातः उठकर जम्मू में एक विश्वस्त सर्जन डाक्टर शादी लाल काचरू द्वारा निरीक्षण कराया गया। वे कुछ शंकित दिखाई दे रहे थे। मेरे बेटे के कान में कुछ कहा। उन दिनों जम्मू अस्पताल में कुछ हडताल चल रही थी। मैं अपालो हस्पताल दिल्ली पहुंचा। मृत्यु का मेरे मन में कोई भी भय नहीं था। 4 फर्वरी 2000 के दिन सर्जरी के मध्य में मैं ने ऐसा देखा कि मैं आप्रेशन टेबल से दूसरे टेबल पर उठाते हुए नर्सों के हाथ से फिसल कर गिरने लगा हूं तो डाक्टर ने कहा 'गॉन ही इज़' किंतु तुरंत एक ज़ोरदार आवाज़ आई जिस से सारा हस्पताल गूंज उठा और एक भारी प्रकाश पुंज ने मेरे शरीर को दीप्त किया प्रकाश इतना तेज़ था कि सारा वातावर्ण चमकने लगा। मैं सब को चमकता हुआ देख रहा था। मेरा सारा शरीर मानो चुंधिया गया। फिर ध्वनि हुई 'बस, यह अधिक सहन नहीं कर सके गा। तो दूसरे टेबल पर डाल दिया गया और सारा वातावर्ण शांत हो गया। वह आवाज स्वामीजी के बिना किस की हो सकती थी? जब मुझे चेतना आई तो मैंने एक डाक्टर से पूछा 'क्या मैं आप्रेशन टेबल से उठाते हुए आपके हाथों से फिसल गया था तो डाक्टर पाशा मुस्कराया और कहा 'आपको कैसे मालूम, वेटरन'। यह सपना था क्या ? पता नहीं।

महाप्रयाण

12 अगस्त 1973 सायं के साढे सात बजे स्वामीजी के ब्रह्मलीन होने का दुखद समाचार रेडियो कश्मीर पर आया। मेरे दिमाग में एक तडाका सा हुआ। क्षण भर के लिए कान कुछ भी नहीं सुन रहे थे। मन विह्वल हो उठा। ऐसा लग रहा था जैसे अधर में लटक गया हूं क्योंकि मेरे लिए यह अनहोनी सी बात हो गई थी। जैसे अचानक किसी घनिष्ठ प्रेमी के देहावसान को मनुष्य सोच क्या विश्वास भी नहीं कर सकता है। मुझे अपना आप अनाथ सा लगने लगा। किस से अपनी विवशता तथा शंका समाधान की बात कही जा सकती थी। मेरा मन वनपोह और तन लारीयार में था। किंतु अपने घर में दुखी होने का आभास किसी को नहीं दिया। कारण यह कि मेरे किसी रिशतेदार को इस बात की ज़रा भी भनक नहीं थी कि मैं स्वामीजी द्वारा अनुग्रहीत हुआ हूं। मेरी चचेरी बहन वनपोह में ही बियाही गई थी इसलिए हमारे घर में किसी न किसी तरह मेरे वनपोह जाने की सूचना मिल ही जाती थी। तो कोई पूछे कि वनपोह क्यों गए थे तो मेरा उत्तर यही होता कि वनपोह के महात्मा जी के पास गया था। वे समझते थे कि स्वामी दमकाक जी महाराज के पास गया होगा। मैं भी जाना चाहता था किंतु यातायात के सारे साधन अति वृष्टि के कारण बंद पडे थे। मैं अत्यंत लाचार हो रहा था कि कैसे वनपोह पहुंचा जाए।

विशेष बात

उस रोज़ एक विशेष बात यह हुई थी कि स्वामीजी की इच्छा के अनुसार, कि श्रद्धालुओं की भीड उनके घर वनपोह में उमड न पडे, ऐसी वर्षा हुई कि वनपोह को जानेवाले सभी रास्ते ज़बरदस्त बाढ़ के कारण पानी के नीचे आकर बंद हो गए थे। क्यों कि उनके घर में कथित तोर बिस्तर में लेटे अस्वस्थ स्वामीजी के सामने प्रसंगवश यह बात चली थी कि स्वामी जी के महाप्रयाण पर आगंतुक सेवकों तथा मेहमानों की काफी भीड को कैसे संभाला जासकेगा। स्वामी जी उनके मनोभाव को समझकर अचानक कह उठे थे कि “परेशान मत हो! कोई भी नहीं आएगा उस दिन पर यहां आपके घर पर”। इसी लिए अंतेष्टि के अवसर पर चंद लोग ही उपस्थित हो सके थे।

कितने दिनों से ज़बर्दस्त वर्षा हो रही थी। बारिश थमने का नाम भी न ले रही थी। सडकें बंद पडीं थीं। यातायात ठप हो चुका था। वनपोह

तथा खनबल अनंतनाग के आस पास के इलाकों से लेकर अवंतीपुर आदि तक पानी ही पानी चिंता जनक स्तर पर आचुका था। ज़बरदस्त बाढ़ आने से सारा कशमीर परेशान था। कुछ दिनों के बाद वर्षा थम गई। सैलाब जल्दी उतर गया और मैं वनपोह गया। वहां शोकाकुल संबंधियों तथा दुखी मित्रों को भी देखा। हर एक की ज़बान पर स्वामीजी के गुणों की तथा करामात की ही चर्चा थी। हारे हुए सिपाही की तरह मन मसोस करता हुआ कि अब अपनी रहस्य की बात किसे कहूं मैं वहां से विदा हुआ। अपने मन को सांत्वना देने के लिए वनपोह के दूसरे मुहल्ले में महात्मा दमकाक जी के दर्शनार्थ गया। महात्मा दमकाकजी मेरी बहन बगरी अर्थात इन्द्रावती डासी जो अनंतनाग में बियाही गई थी के गुरु महाराज थे। वे बहुत ही ऊंची पदवी के त्रिकालदर्शी महासंत थे। स्वामीजी के पास जाने से पहले से ही मैं अपनी बहन के कहने पर दमकाक जी के पास जाया करता था। वह महात्माजी वनपोह में श्री अर्जन नाथ के घरके तीसरी मंज़िल में अलग कमरे में रहते थे जो सामान्यतया अंदर से बंद ही रहता था। जब मैं तीसरे तबके में पहुंचने ही वाला था कि दमकाक महाराज जी ने उसी घर के एक सेवक लडके से, जो अर्जननाथ रैणा की बहन का बेटा था, कहा कि "दरवाज़ा खोलो, अनंतनाग से इंद्रवती का भाई आरहा है।" किवाड खुला तो मैं अंदर आया। चारपाई के ऊपर बिस्तर पर शेर की खाल पर विराजे दमकाक जी को शाष्टांग दंढवत की। मुझे फर्श पर आसन पर बैठने का निर्देश दिया और कहा। "मुख क्यों मलीन है तुम्हारा? संत मरते नहीं हैं"। दमकाकजी ने मुझे एक अनोखी बात सुनाते हुए कहा, "देखो! तुम्हारे स्वामी जी 9 अगस्त को देह छोडने का मन बना चुके थे किंतु उस दिन बाढ के कारण अंतेष्टि नहीं हो सकती थी। जबरदस्त वर्षा को देखते हुए संत मण्डली ने स्वामीजी के सामने महा प्रयाण को तीन दिन तक रोकने का प्रस्ताव रखा ताकि अंतेष्टि हो सके अन्यथा संतो के लिए नेकनामी नहीं होगी। काफी अनुरोध के बाद स्वामीजी ने प्रस्ताव को मान लिया था और स्वामीजी का महाप्रयाण तीन दिन के लिए रुक गया"। संतों की इतनी महान अधिकार को मैने स्वयं देखा तो मेरा मन दृढता तथा विश्वास से भर गया।

दस दिन के बाद स्वामीजी के सेवकों ने वनपोह में उनके घर पर एक यज्ञ रचाया। स्वामी जी के बिना वह स्थान सूना सूना सा लग रहा था। रात को वनपोह में रहकर दूसरे दिन बडा भंडारा हुआ। दिन ढलने के

बाद मैं वनपोह से अनंतनाग गया तथा बहन के घर में रात को ठहरा। इस महान संत स्वामि दमकाकजी ने मेरी बहिन से भी यही बात कही थी।

संत मत तथा राधास्वामी–

स्वामीजी राधास्वामी अर्थात संतमत के अनुयायी थे। उनके भजनों में बताए गए अभ्यास की प्रक्रिया में कुछ शब्दों का स्पष्ट अर्थ जानना आवश्यक है। इनके साथ दूसरी शब्दों की विस्तृत पारिभाषिक व्याख्या आगे दी जाएगी।

शब्दावली

1. **राधास्वामी**– राधा –सुरत की धारा या आत्मा का उल्टा गमन तथा स्वामी परमात्मा से मिलना। आत्मा का परमात्मा से मिलन की क्रिया।
2. **संत**–ऐसा महापुरुष जो संसार में रहता है किंतु संसार उसमें नहीं रहता है, अपितु तटस्थ रहता है।
3. **संत मत**–सुरत शब्द अभ्यास की प्रक्रिया के अनुसार अभ्यास करने तथा गुरु को मुख्य पथ प्रदर्शक मानने वाला मत।
4. **गुरु**– पूर्णता को पहुंचा हुआ ऐसा संत जो अपने शिष्य को अभ्यास द्वारा अध्यात्मिक क्षेत्र की पूरी जानकारी करा लेता है। तथा शिष्य को द्वज बनाता है।
5. **नाम**–भगवान का वह पवित्र नाम जो गुरु अपने शिष्य को बीज मंत्र के रूप में उपदेश करता है।
6. **धुन** या शब्द–एक दिव्य अनहद शब्द जो अभ्यासी ध्यान में सुनता है।
7. **सुरत**– संत मत में हमारे शरीर में आत्मा को **सुरत** कहते हैं जिस का अर्थ है ध्यान या तवजह।
8. **सुरत शब्द अभ्यास**–प्रकाश अर्थात सुरत को शब्द के साथ मिलाने के अभ्यास को सुरत शब्द अभ्यास या सुरत शब्द योग कहते हैं।
9. **सहज विचार**– शुद्ध स्वानुभूति। देह भाव से परे का भाव।

संत मत–व्याख्या

संत मत किसी सम्प्रदाय विशेष के मूल प्रवर्तक द्वारा प्रचिलित किए गए सिद्धांतों का संग्रह मात्र नहीं है और न ही यह किसी ऐसी पद्धति विशेष का ही परिचायक समझा जा सकता है जिसे विभिन्न संतों के उपदेशों के आधार पर निर्मित किया गया हो। इसमें आस्था रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह संत मत की बातों और सिद्धांतों को स्वानुभूति अर्थात व्यक्तिगत अनुभवों के द्वारा प्रमाणित भी कर ले। कबीर ने कहा है कि राम नाम की वास्तविकता को कोई विरला ही जान पाता है। अभिनवगुप्त से किसी ने पूछा था कि सत्य क्या है? उत्तर में उन्हों ने कहा कि पहला सत्य शास्त्रों का, दूसरा बुज़र्गों अथवा ऋिषियों का कथन और तीसरा अपने अनुभव से परखना। इसी स्वानुभूति को संतों ने सहज ज्ञान का नाम दिया है और यही शुद्ध स्वानुभूति संत मत का आधार है। संतों की सहज साधना में न तो संसारिक बन्धनों का परित्याग करने के लिए और न ही संसारिक प्रपंचों में स्वयं को आसक्त करने को कहा गया है। संतों का अपना मध्यमार्ग या **सहज मार्ग** है। संत मत में सिद्धान्तों की अपेक्षा साधनाओं के परिचय पर अधिक ध्यान दिया गया है। संतों का मानना है कि परम तत्व को अपने अनुभव में लाने के लिए हमें अपनी चित्तवृत्ति को बहिर्मुखी से अन्तरमुखी करना होता है।

जैसे ऊपर कहा गया है कि संत मत या राधास्वामी मत कोई पंथ भी नहीं है, न ही इस में कोई दर्शन है। अपने मन को आसानी से अपने आत्मा में टिकने का साधन मात्र है। आज के युग में वेद पुराण आदि ग्रंथ पढने का समय ही कहां है? इसलिए किसी मत की उपेक्षा किए बिना ही यह मत छोटा पथ दर्शाता है। श्री योगानंद के अनुसार [45] एक प्राणी यदि पवित्रता से जीवन बिताते जाएगा तो वह स्वतः ही लगभग दस लाख वर्षों के बाद ही अपने स्वरूप को प्राप्त होगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को शीघ्रातिशीघ्र अपने स्वरूप का साक्षातकार करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस मत में **'सुरत शब्द योग'** के साधक को अपनी सुरत की साधना करके, सहस्रदल कमल से लेकर प्रकाश देखते हुए सुरत को अकह अवस्था तक लेजाना होता है और यह सुरत जिन जिन स्थानों पर

पहुंचती है, उन स्थानों का प्रभाव सुरत पर पडता है। यह साधक की वह स्थिति है जब सुरत की धारा शब्द के साथ एकता द्वारा अलौकिक दशा में पहुंच जाती है। लक्ष्य तो अपने स्वरूप को पहचानना है। जब प्राणी अपने निज रूप को पहचानता है उस पहचान को बनाए रखना और उस में स्थित रहना ही राधास्वामी मत का लक्ष्य है। इस को **सुरत शब्द योग** भी कहते हैं। सुरत यानी ध्यान की धारा को मोडकर वापस उलटी दशा में चलाना 'राधा' और अपनी वास्तविक जगह पर पहुंचकर 'स्वामी' इस स्थिति को ऐसा नाम दिया गया है जो प्रभु का ही नाम है। बाहरी संसार में खोजने के बदले प्रभु को अपने भीतर ही खोजने के लिए भगवत प्रेम का एक असीम जिज्ञासु साधक 'नाम' लेता है। तभी यह सफर आरम्भ होता है। सबसे पहले अपना ध्यान दोनों भौंओं के मध्य में टिकाया जाता है। इसका उल्लेख श्रीमद भगवत गीताजी में भी मिलता है।'

भ्रुवोर्मध्ये प्राणम आवेश्य सम्यक् स तं परम पुरुषम उपैति दिव्यम्

गीता 8,10

अर्थात भ्रकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी तरह स्थापित करके प्राणों का त्यागने वाला पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

'यहां स्मरण रहे कि नासिकाग्र दोनों आंखें के मध्य से ज़रा नीचे अर्थात नाक की जड है न कि नाक का आगे वाला भाग जो होंटों के पास है'।
37ख

समस्त इन्द्रियों को केन्द्रभूत करके गुरुमंत्र के साथ ध्यान किया जाता है और आगे का सफर आरम्भ होता है।

चक्र क्या हैं ?

कई साधकों को पहले नाभि देश से ध्यान की क्रिया आरंभ कराई जाती है। किन्तु पहला पडाव तो **भ्रूमध्य** है। इस को तीसरा तल भी कहते है। इस जगह पर ध्यान टिकाना होता है जैसे गुरु की आज्ञा हो। इस स्थान का रंग पीला नूर होता है और यहां का शब्द घंटा शंख आदि है। छटे चक्र या तीसरे तल के ऊपर चिदाकाश है, इसका नीलगूं आकाश है। इसमें चांद सितारे नज़र आते हैं।

वुछ आकाश गंगा अजाइब नज़ारय,
वनन संत इशारय हुश्यारन कुनुय। ग,अ,भ 116, 1

यह पहला सहज योग अभ्यास सद्‌गुरु के प्रेम, मेहर और दया से पूर्ण होता है। आंखों के पीछे आने से सुरत अपने घर की तरफ यात्रा आरंभ करती है।

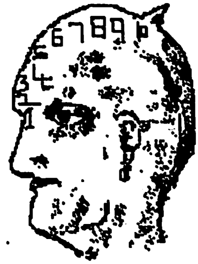
इसी प्रक्रिया को स्वामीजी के अनेक भजनों के आधार पर नीचे दिए तालिका में दिखाया गया है।

छः चक्र – दयाल देश–योग साधना

संक्ष्या नाम	स्थान	शब्द	चक्र का स्वामी	कार्य	कमल दल	रंग	गुरुका रूप
15 अनाम							
14 अलख							
13 अगम							
12 सत्यलोक		बीन	सत्पुरुष	पूर्णता	6	अखंड प्रकाश	ज्योति स्वरुप
11 भँवरगुफा		मुरली सोहम	निर्मल आत्मा	बूंद वत	5	बिजली का चमकारा	अकाल पुरुष
10 महासुन्न		ओधुन	निर्लीफ		4	गहरा काला	सूक्षम
9 सुन		रारंग	पारब्रह्म	दसवांद्वार	3	काला	सूक्षम
8 त्रकूटी		सारंग	टोमब्रह्म	स्रष्टिआरंभ	2	अर्धचांद	सूक्षम
7 सहस्रार	माथा	मृदंग	ज्योति	मायाब्रहम	1	लाल	सूक्षम
6 आज्ञा चक्र	भ्रूमध्य #	घंटा शंख	आत्मामन	जीवित रखना	2	पीला नूर	स्थूल
5 विशुद्ध	कंठ		शक्ति	निर्माण	16	गहरानीला	
4 अनाहत	ह्रदय		शिव	रक्षा नाश	12	नीला	
3 मणिपूरक,	नाभि		विष्णु	पालन	8	गहरालाल	
2 स्वाधिष्ठान	जनेंद्रिय		ब्रह्म	रचना	6	हल्का काला	
1 मूलाधार	गुदा		गणेश	मलत्याग	4	लाल	

आंखों के बीच में

नोटः–'अपने अपने मुकाम पर अपनी धुन होती है। वहां आत्मा को अपने स्थान का पता लगता है'। अब सुरत **सहस्रदल** कमल मैं आगई इस में ज्योति निरंजन का वास है और शब्द जैसे ऋग्वेद के नाद बिंदु उपनिषद श्लोक 34 में लिखा है कि पहले तो शब्द समुद्र, बरसात, झरने की होता है। फिर नगाडे के बजने, बादलों के गर्जने का शब्द तथा शंख, घंटा के शब्द सुनाई देते हैं। (संदर्भ, संत समागम, हिंदी में अनुवादित पृष्ठ 167–संत सावल सिंह) प्रगट होता है। सहस्रदल भ्रूमध्य के थोडा ऊपर है। यहां का रंग लाल सूरज का सा है और मृदंग का



शब्द होता है। इस से आगे शब्द **त्रिकूटी** में आएगा। इसे ब्रह्म पदी भी कहते है। सहस्रदल कमल को आत्मा और त्रिकूटी को ब्रह्म कहते हैं। यह स्थान ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव शंकर का है। त्रिकूटी का स्थान दूसरे स्थान से थोडा ऊपर है यहां का अर्धचन्द्र रंग है और शब्द सारंग का है। फिर सुरत पारब्रह्म में आती है। जिसको दसवां द्वार भी कहते हैं यहां 6 दल का कमल है। यहां पहुंचकर आत्मभाव जागृत होता है। यहां पारब्रह्म का निवास है अर्थात न कोई पहले था न अब है।

चौथा **सुन्न** कहलाता है, शब्द रारंग और रंग काला है।

अब सुरत ने **महासुन्न** का दरवाज़ा खोला। यह एक बड़ा भारी मैदान है जिसके 5 शब्द [37 ग] और 4 मुकाम संतों ने गुप्त रखे हैं। यहां 8 दल का कमल है। यहां का शब्द ओधुन और रंग गहरा काला है। महासुन पार करके **भंवरगुफा** आती है। यहां सोहम प्रकाश का निवास है। यह सोहम सांस अथवा प्राणायाम का सोहम नहीं है। दसवें द्वार तक काल की सीमा है। यह दो स्थान महासुन और भंवरगुफा महा काल की सीमा है। इस जगह बिजली का चमकारा होता है तथा रंग भी वही है और शब्द धुन मुरली का है। आगे सतलोक या सचखंड का स्थान है। यहां सत्पुरुष का निवास है। तालव्य के सीध में ऊपर **सतलोक** का स्थान है। शब्द बीन का और अखंड प्रकाश का स्थान है। सत खंड या सचखंड यह संतों का मुकाम है। यह आखरी मंज़िल है। सुरत यहां पहुंचकर सत प्रकाश का दर्शन और परिक्रमा करते हैं। इसके ऊपर **3 लोक** और हैं जो संतों ने प्रगट करके बयान नहीं किए हैं इनके बारे में संत खामोश हैं। अब सुरत यहां पहुंची। यहां दो दल हैं तात्रिय वृत्तियां तथा धार्नाएं। इन से ऊपर के नज़ारे स्वयं सामने आयेंगें। यह नज़ारे अंदर मौजूद हैं। इसलिए पूर्ण सद्‌गुरु से नाम लेकर उन की संगत मैं आना पड़ेगा। तब यह सब नज़ारे आपको दिखाई देंगे वरना नहीं।

जागृति, स्वप्न व सुषुप्ति अवस्था में सुरत टिकनेके स्थानः–

जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति—–इन तीन स्थानों पर किसी को पता लगे या न लगे सुरत स्वभाविक तरीके से अपना स्थान बदलती रहती है और दिन रात में ये तीन अवस्थाएं प्रत्येक को आती रहती है।

1.आज्ञा चक्र 2. सहस्रदलकमल या सहस्रार 3.त्रिकुटी 4.सुन्न 5.महासुन्न, 6. भंवरगुफा, 7. सतलोक, 8. अलखलोक, 9. अगमलोक, 10 अकहलोक, के स्थान खोपडी में आगे दिए चित्र में दिखाये गए है।

जाग्रत अवस्थाः– 1 पर अर्थात आज्ञाचक्र पर । स्वपन अवस्थाः– में 3 अर्थात त्रिकूटी पर तथा सुषप्ति अवस्थाः–में 5 पर अर्थात महासुन्न पर सुरत टिकती है। सुरत के तीन स्वभाविक गुण होते हैं।

क. सुरत एक समय पर दो स्थानों पर नहीं टिकती। **ख.** सुरत शब्द और प्रकाश की ओर खिंचती है। **ग.** सुरत संसार, शरीर व मन में ठहर कर नाना प्रकार के खेल अैर दृश्य देखती तथा शब्दों को सुनती है।



जग्रत
आज्ञा चक्र 1 पर



स्वपन
त्रिकुटी 3 पर



सुषप्ति
महासुन्न 5 पर

भिन्न पडाव में गुरु का रूप–

यहां इस संसार में गुरु का देह स्वरूप स्थूल है। जब सहर्सदल कमल में जाएंगे तो गुरु का रूप सूक्ष्म है। जब ब्रह्म में जाएंगे तो गुरु का रूप कारण स्वरूप है। ज्यों ज्यों ऊपर को जाएंगे, स्वरूप बदलते जाएंगे। जब सचखंड में सुरत जाएगी तो वहां गुरु का स्वरूप अकाल पुरुष के रूप में होगा। वहां बीन की आवाज हो रही है। वह सत पुरुष सतनाम है।

अभ्यास करने में मनके दो अंग हैं। एक तो मन विशेष उमंग अभ्यास की रखता है और शौक से ऐसा करने की तडप रखता है। दूसरा मन चाहता नहीं कि अभ्यास करूं, लेकिन उस को बल पूर्वक अभ्यास के लिए लगाया जाता है। जिस अभ्यासी के मन में अभ्यास की उमंग है स्वामीजी उनसे बात करते हैं।

छुख ना हद् शोक, दरियाव दाम् चोख,
आलव हा ओरय गोख वल्ला हू।
सथग्वर भाव्यस सोर् हाव्यस, ..।.
पानय रुमरुम तस बोलि ओम ओम...
नाभि मंज़् युस नेरि नभन्य सुय फेरि,
शेरि मंज़ शेरि प्राण कल्ला हू.......... ग,अ,भ 160,1

अर्थ– तीव्र इच्छा रखने वाले अभ्यासी को प्रभु से ही बुलावा आता है तो सद्‌गुरु मिलते हैं। वे उसको राह बताते हैं और उसका रोम रोम ओम बोलता है। नाभि से निकल कर जो ब्रह्मांड में पहुंच जाता है और जिसके लिए दर्वाज़े खोले जाते है वही आश्चर्य अवस्था को पा जाते हैं। ऐसे असीम भगवत पिपासा रखने वाले साधकों के लिए आगे निर्देश है।

छः चक्र–अनुभव

सबसे पहले अपने संत सद्‌गुरु के स्वरूप को बाहर की तरफ ध्यान में लाए और धुनात्मक शब्द का सुरत की ज़बान से आहस्ता आहस्ता स्मरण, ध्यान करें। फिर अपनी दोनों आंखें बंद करके अपनी सुरत को अंतर में छटे चक्र पर आत्मा के स्थान पर स्थिर करें और वहां पर ही अपने संत सद्‌गुरु का ध्यान कायम करें और शब्द का स्मरण करते जाएं जब तक आप गुरु के ध्यान में मगन हो । फिर नाभि चक्र और कंठ पर हल्का सा बोझ मालूम होगा। फिर तीसरे तल पर दोनों आंखों के मध्य में नाक की जड पर कीडों का रींगना जैसा मालूम होता है। इस समय सांस बहुत धीरे चलती है। फिर आनंद आने लगता है तब सुरत नीचे की तरफ फैल जाती है और यकदम सद्‌गुरु के स्वरूप के ध्यान में लग जाती हैं। अब पहले से ज्यादा सिमटाव होना शुरू हो जाता है। इसी तरह निचले चकरों पर बोझ सा मालूम होता है और पहले से ज्यादा वृत्ति तिल के मुकाम पर ठहरती है। कुछ दिनों के बाद एक दिन यकदम शब्द झंकार ज़ोर से शुरू हो जाता है जो हर तरह के शब्दों से मिश्रित होती है अर्थात दूर से घंटा का शब्द सुनाई देता है। इसके सुनने में सुरत खिंच जाती है। इसी तरह कुछ समय अभ्यास करने के बाद जब मन और आत्मा दोनो आनंद में मगन हो जाते हैं, अनायास एक लंबा सांस आता है और इसी तरह सुरत नीचे की ओर फैल जाती है।

तमि आलमुक क्या छुय निशान, मन प्राण यकदम तूर्य खिचन

ग,अ,भ 47,1

अर्थात उस अवस्था का संकेत है कि मन और प्राण उधर ही खिंच जाते हैं।

अभ्यास का प्रभाव

चूंकि मन में खास उमंग और प्रेम होता है इसलिए आनंद में व्यस्त हो जाता है, विशेष प्रेम से तवजह ऊपर को सिमटती है। अबके हाथ पावं सुकडते हुए मालूम होते है ऐसे जैसे इनसे जान निकल रही हो। फिर हृदय चक्र पर एक मामूली सा तडाका होता है। यानी किसी वस्तु के टूटने की आवाज़ आती है और पूरा शरीर मुर्दा सा हो जाता है। कंठ से वृत्ति सिमटने पर ऊपर की तरफ प्रकाश नज़र आने लगता है। फिर सद्‌गुरु का स्वरूप नज़र आता है। [38] अर्थात गर्दन से ऊपर सिर तक मानवी रूप सा नज़र आता है। अभ्यासी की सुरत या ध्यान इस रूप में अत्यंत मगन हो जाती है। इस समय सांस का चलना ज्ञात नहीं होता। ऐसी दशा में मन और आत्मा या सुरत दोनों अत्यंत सरूर और आनंद में मगन हो जाते हैं। आंखों के सामने पहले सुनहरा प्रकाश नज़र आता है, फिर इसी रोशनी या प्रकाश के आकार और रंग का संत सद्‌गुरु का मनोहर रूप नज़र आता है। अर्थात ज्यों ज्यों तवजह या सुरत ऊपर की ओर खिंच जाती है सद्‌गुरु का रूप भी वैसा ही होकर नज़र में आता है और शब्द खुलता है याने बडे ज़ोर से घंटा का शब्द सुनाई देता है जो दूर से बजता सुनाई देता है और फिर धीरे धीरे निकट आता मालूम पडता है, यहां तक कि शब्द की धुन अति पास में ही लगती है और शब्द साफ सुनाई देता है ऐसा जैसे शब्द अंदर से उठकर स्वयं ही घंटा का रूप हो तथा अपना और सद्‌गुरु का रूप एक ही दिखाई देता है। मोगरी पडते समय जो 'टन' की आवाज़ निकलती है उसी आवाज़ को सुनकर इसी पर ध्यान केन्द्रित करना होता है।

> घंट् शंख मृदंग रो'ने, अमि छो'नेमन मे'ह न्युव।
> लछ ब'द्य. करोर सिर्ये मंदछन छिय गाश छु तोर।
> गाश आव अज़ म्यानि वने। अमि छो'ने....... । ग,अ,भ 95,1

अर्थ–वहां घंटा, शंख, मृदंग तथा गुंगरू शब्दों ने मेरे मन को मोह लिया, करोडों सूर्य के जैसा प्रकाश देखने से मेरे अंदर सारा मन रूपी मैदान प्रकाशमान हो गया।

मन को पिंडदेश में भटकने की आदत होती है इसलिए इसको अप्रत्यक्ष अर्थात शरीर के अंदर खयाल मे स्थिर करना कठिन होता है। जब तक मन को ध्यान करने के केन्द्र पर कोई सूरत या शक्ल देखने को नहीं मिलती वहां ठहरना पसंद नहीं करता। इसलिए पूर्ण गुरु ही वह सुरत है

जो हमारे ध्यान के उपयुक्त है और जो मानव शरीर रूप में इस धरती पर रहता हुआ आंतरिक तोर पर ध्यान चक्रों में परमात्मा से जुडा होता है। ऐसा सशक्त पूर्ण पुरुष गुरु ही अभ्यासी के प्यार, श्रद्धा तथा भक्ति के योग्य होता है। गुरु ईश्वर का रूप कहलाता है इसलिए गुरु का रूप अभ्यासी के मन को रोकने के लायक होता है।

वास्तव में गुरु के रूप ध्यान का लक्ष्य अपने आत्मा या सुरत को अंदर विद्यमान शब्द–प्रकाश में लय करना है। इस से अभ्यासी को बहुत सी आत्मिक शक्तियां प्राप्त होती हैं। 'सामान्य लोगो, विशेषकर साधक को इस बात का ध्यान रहे कि सच्चे मन से अभ्यास आरंभ करते ही कुछ अंश वाक् सिद्धि आरंभ हो जाती है, इसलिए किसी को हंसी में भी अपशब्द न कह कर, मधुर भाषी बनना चाहिए अन्यथा चुप रहना ही अच्छा है।

संतों के इस भक्ति मार्ग में गुरु का देह रूप ही सब कुछ है। गुरु शब्द का रूप है। इस देह स्वरूप की प्रतीति से यह परमार्थी मार्ग प्राप्त होता है। यहां आत्मा का शब्द से संबंध हो जाता है अर्थात गुरु अपने शिष्य की सुरत को शरीरहीन करके आंखें के बीच भ्रूमध्य बिंदु पर केंद्रित (concentrate) करने की क्रिया को सिखाता है जिसको संत जीते जी मरना बताते हैं। ऐसा होने में बाहरी धुन या संगीत से कोई सहायता नहीं मिलती है। मन को राग रंग बहुत पसंद होता है किंतु नाम स्मरण के साथ इसका कोई संबंध नहीं है क्योंकि राग रंग तथा गाना बजाना मन की खुराक है, आत्मा की नहीं। अभ्यासी नाम स्मरण करते समय ऐसा लीन हो जाए कि बाहरी शोर में भी अभ्यास न टूटने पाए। यदि शब्द प्राणों को ऊपर न खेंचता हो तो नाम स्मरण करते रहें। यदि शब्द सुनाई देता है तो मन को ज़बरदस्ती नाम स्मरण कराना छोड दें और मन को शब्द के साथ जोडे रखना चाहिए।

अभ्यास भजन–उपरोक्त अभ्यास की प्रक्रिया को स्वामीजी के कुछ भजनों के आधार पर दिखाने तथा आशय को समझाने का प्रयास किया जाएगा, क्योंकि अपने अनुभव को प्रस्तुत करने के लिए कवि द्वारा जो शब्द चयन होता है उन का तद्‌रूप अर्थ बताना कठिन होता है। इन विसंगतियों को परमानंदजी ने नीचे दिए अपने शब्दों में व्यक्त किया है।

कथ् करनस त् मरनस छुन् हिशर,
मानि बोज़नस त् परनस छुन् हिशर,
ध्यान स्वरनस त् शरणस छुन् हिशर,
च़मि यि तस वनि छे'स न् च़म त् लोलो।

अर्थ बात करने तथा मृत्यु में समानता नहीं है। पढने और अर्थ करने में समता नहीं है। शरण हो जाने और ध्यान करने में समता नहीं हैं। यह सत्य वही समझ सकता है जो अपने शरीर भाव से ऊपर उठ चुका है।

इस लिए यथा संभव कुछ व्याख्या करके तथ्य को समझाने का प्रयास किया गया है।

यह अभ्यास का **पहला** भजन है। जिन चक्रों को भेद कर स्वामीजी ने जो अनुभव किया है उसी की अभिव्यक्ति यहां पर की गई है। परंतु गुरुमुख के लिए गुरु शब्द ही सब कुछ है।

भव् द्वख कासि दियि तार भक्ति भाव ज़ुवो	भक्ति भाव
सत्वर दयस्य च्य पान पुशराव ज़ुवो	समर्पन करना
बेह एकांत जाये स़्त्य प्रयमृह त् माये	एकांतवास
ब'डरिथ श्रद्धाये स्वर सुय नाव ज़ुवो	श्रद्धायुक्त होना
बनिज़े न्यर वासन, दर्यज़े स्यद्ध आसन	वासना शून्य होना
खा'रिज़ि हे'स् श्वासन, त्राव ल्वो'त वाव ज़ुवो	हल्का श्वासोश्वास
ह्यो'र कुनुय नज़र कर, लोल् स़्त्य मन्य बर,	यकसोई
नेरियि पानय शर, बर मुच़राव ज़ुवो	
शब्द्ध कर च़्यत आकाश, चमकन ज्योति प्रकाश	ज्योति देखना
ज़न लछ सिर्यि शाबाश, छुय मन पाव ज़ुवो	मन को रोकना
अछ़ वुछन अंदर गाश अं'दरिम सिर म् कर फाश	रहस्य पाना
पापन बनिय नाश, ग्वर् आश थाव ज़ुवो	
अछ़ बर दारि त्रो'पराव, यियि वुछख तिय व्यपराव	खामोशी पाना,
सूसू चे'ह श्र'पराव, हमसू त्राव ज़ुवो	सू को अंदर लेना, हमसू छोड देना
तथ शब्दस न छे'न्य, शब्दस थाव कन्य	निरंतर शब्द सुनना।
तूर्य कुन गंड मन्य, कर मो ग्राव ज़ुवो	एकाग्रता लाना
सथग्वर तति यियेे, आलव हा च़्यति दिये	सदगुरु दर्शन पाना

पानस स्तृय नियेॅ, युस छ़ांजाव ज़ुवो	उनका सहयोग पाना
संतन हुंद यि सीर्य, कर मो नो'न च् वीरय	रहस्य गुप्त रखना
हृदय कर गंभीर्य, क्या व्यपराव ज़ुवो	गंभीर होजाना
सरस्वती माजि भोवुय, गोव्यंद ति वननोवुय	सरस्वति माता ने मुझ
तमिय वनुन चे थोवुय, मो रावराव ज़ुवो	गोविंद को बताकर कहलवाया। अपात्र को कहकर इसे व्यर्थ मत करना
	ग,अ,भ 142,1

अब अभ्यास का दूसरा भजन देखें–

इस में आगे के पडावों के बारे में निर्देश दिए गए हैं।

जय निरंजन स्वर भाग्यवानय,	
बंदगी कर सुबह शाम सुन्दरो ।	भक्ति
स्मरण कर गो'डनिक्य थानय,	
त्रेयबंद बंदकर ताम स्वंदरो ।	शब्दका स्मरण आंख, कान, ज़बान
स्यदि स्यो'द गगनस वुछानृय,	
गाशतारुक स्यमंज़ द्राम स्वंदरो ।	भ्रूमध्य पर दृष्टि, बिंदु का देखना
घंटायि शंख ज़ोरशोर सानृय,	शब्द उत्पन होना
छिय वज़ान अमि मुकाम् स्वंदरो ।	शब्द को सुनना
सहस्र दल् वुज़मल व्यथनृय,	बिजली का चमकना
वुछ ज़रद, स्वर्ख श्याम स्वंदरो ।	ज़र्द,लाल काला रंग देखना
ओम स्वर ओम बोज़ ओम थानय,	
यियि छुय मूल् कलाम स्वंदरो ।	ओम की आवाज़ सुनना
वाह वाह कोसम रंग चमकानृय,	पीला रंग का चमकना
रंभवुन रव तति द्राम स्वंदरो ।	प्रकाश का प्रकट होना
संतव मानसर क्वो'र श्रानृय,	निजधाम में पहुंचना
अमरे'थ चोख दाम् दाम् स्वंदरो ।	आनंद अमृत पान
रारंग स्वर सारंग वज़नृय,	
रारंग्ह बोज़ राम राम स्वंदरो ।	रारंग आदि धुनें सुनना
छो'त रव खो'त गव मंद्यानृय,	श्वेत सूर्य का प्रकट होना
मुरली बडि धूम धाम स्वंदरो ।	अखंड प्रकाश मुरली की आवाज़
राधास्वामी अन्नाम स्वंदरो	अलख,अगम, शुद्ध विज्ञानृय, अलख,अगम आदि राधास्वामी अनाम का शुद्ध ज्ञान होना।
	ग,अ,भ 142,1

अब अभ्यास का **तीसरा** भजन देखें–

ग्वर् ध्यान कर त्रे'य बंद बंद 43,	आंख कान ज़बान को एक बिंदु पर लाकर गुरुमूरत का ध्यान करना।
कन थव वज़न छुय नादब्यंद।.....	आवाज़ों या अनहद नाद को सुनना
पां'छ़ नाव स्मरण्य करिथ,	ओमकार या गुरुोक्त नाम स्मरण। ह्रींग श्रींग क्लींग ओमकार सोहंग

1 आज्ञाचक्र

भ्रूमध्य कुन दृष्टि दरिथ।	भ्रूमघ्य पर दृष्टि टिकाना।1
स्वरिथ ग्वर् चरनारब्यंद।	गुरु चरणों का ध्यान करना।
कन थव वज़न छुय नाद ब्यंद।	शब्द का सुनाई देना।

2 सहस्रदल कमल या सहस्रार

ज्योती हुंदुय नज़ार् वुछ,	ज्योति का दृश्य देखना
फो'लिथ सहस्रार वुछ।	सहस्रार का खिल जाना
ओमकार वुछ ओमकार ब्यंद.....।	ओमकार का बिंदु दिखाई देगा।
सत्वर् सुंद ललनाव नाव,	सद्गुरुनाम स्मरण करना।
अमृत चे'ह ग'टिस्य गाश आव।	अंधेरा समाप्त होना।
वुछुन अ'छव किनिय सु दय	आकाशकी ओर टिकटिकी लगा
आकाशस्य कुन गंड मुदय।	कर आत्मा को आंखों से देखना

3 त्रिकुटी

उदय वते गय रव त् चंद,	सूर्य चंद्रमा का प्रकट होना
कन थव वज़न छुय नादब्यंद।।	घंटा शंख आदि का शब्द सुनना

4 सुन्न

वुछ क्या गुहन तारा मंडल	नील गगन, तारा मंडल देखना मायायि
कालस कर क्वंडल	यहां तक माया काल है, इसे छोडना

5 महासुन्न

बल ह्यथ ग्वरन च़ठ काल फंद	गुरु बल से काल का फंदा काटना
अ'क्यस्य अंदर गय शब्द कुल	घंटा आदि शब्दों का एक हो जाना,
सुरतस त् शब्दस कर स' म्युल	यहां पर साधक द्वारा सुरत और शब्द का एक करना
म्यूठ सु रस्युल ज़ा'व्युल बुलंद	यह शब्द लंबा, मीठा, आनंद दायक तथा सूक्षम है

6 भंवरगुफा

भंवर ग्वफे मंज़ आवलुन	भंवर गुफा में अति गुमाव फिराव है
सुरत कडुन सत्लूक कुन	सुरत को सतलोक की ओर लेजाना
सत धुन रटिथ तोरुक ह्यह अंद	वहां सत सत धुन पकड कर अंत की ओर जाना

7 सतलोक

नाना शब्दन कुन सपुद	नाना शब्दों का एक ही शब्द हो जाना।
सुय ज़ानि युस युस आसि वुद	केवल उद्योगी ही इसको जान सकता है।
सुदबुद न रोज़िय शब्द स्यंद।	फिर न सुधबुध ही न शब्द ही रहता है
गुरुक्त्ह शब्द्य योत बोज़	केवल गुरु शब्द ही यहां सुनो
मायायि कालस ल्वोब च् रोज़	तथा माया से अलग रहो

8 अलख, अगम अन्नाम

वातुन छु सत्वर धामये	उस सद्गुरु धाम को पहुंचना है जो
अलख, अगम अन्नामये	अलख, अगम अन्नाम है ।
प्रणामये ग्वरन्य गोव्यंद	उस गुरु को प्रणाम है जो हमें इस मुकाम तक पहुंचाते हैं अर्थात उस मुकाम पर हम अपने ही गुरु महाराज को प्रणाम करते हैं।।

इस प्रकार स्वामीजी ने सारे पडावों या चक्रों में जाकर उनके अनुभव को सफलता पूर्वक उपरोक्त भजनों में रसपूर्ण ढंग से रखकर समझाया है।

यह पूरे अभ्यास के भजन है। इनको अभ्यासी ठीक तरह से समझ सकते हैं।

सब संतों की एक ही विधि—अर्थ यह हुआ कि सब संत फकीरों की नाम स्मरण करने की विधि एक ही होती है कि रूह को आखों के पीछे केन्द्रित करें। ऐसा करने के तरीके अलग भी हो सकते हैं किंतु आंखों को ऊपर ले जाने का सिर्फ शब्द ही एक साधन है। एकाग्रता या ध्यान में लय होने की विधि फिर एक बार समझाते हैं। एकाग्रता के समय

1 कोई भी विचार न आए।

2 मन केवल नाम स्मरण तथा गुरु ध्यान में मग्न रहे।

3 खयाल आंखें के पीछे टिका रहे।

जीह्वा से ज़ोर से बोलने की कोई ज़रूरत नहीं है। गुरु का ध्यान करने से खयाल हमेशा नाम स्मरण में ही बदल जाता है। गुरु, शब्द का ही रूप है। अर्थात अपने को शब्द में ही बदल जाना है। नाम स्मरण का, बाहरी संगीत से कोई सरोकार नहीं। उदाहरणतः संगीत में मस्त होकर राम राम.....जपते जपते मानो आप सो गए तो यह ध्वनियां शेष नहीं रहती हैं? गुरु के शरीर की सुरत शब्द की होती है। ध्यान या प्रतिबिंब का अर्थ है गुरु के बारे में ही सोचना कि उनके सामने अभ्यास कर रहा हूं।

सहज ज्ञान–सहज विचार–सहज समाधिः–वासनामय विश्व से अलग रह कर अपने अन्तःकरण को परमेश्वर की और उन्मुख करना और उसी में तल्लीन रहना सहज योग की कबीर द्वारा की गई व्याख्या है। **सहज समाधि** का मतलब यही होता है कि जब सहजता से ही संयमित जीवन और उन्नत विचार से ही मुक्ति मिल सकती है तो शरीर को व्यर्थ कष्ट देने से क्या लाभ? जो रहस्य की बात गुरु अपने शिष्य को समझाते हैं उसी बात को अभ्यास द्वारा अनुभव में लाकर अभ्यासी चिरंतन सत्य को स्वयं देख लेते हैं। स्वामीजी इस स्वानुभव को सहज ज्ञान कह कर समझाते थे कि अभ्यासी को सदा इसी स्वानुभूति एवं सहज विचार में ही रहना चाहिए। इसी विचार की परिपक्कव अवस्था को उन्होंने सहज ज्ञान का नाम दिया है।

सहज़ समा'धी ल'ज्य यस, चो'पार्य तस दर्शुन छुये। ..... ग,अ,भ 19,2

सुय गव संत सुय साध हो ये'मिस सहज़ समाध हो। .....ग,अ,भ 20,2

अर्थात जिसकी सहज समाधि लग गई वह चारों और से प्रभु के दर्शन करता है और वही साधु भी है और संत भी।

यद्यपि सहज ज्ञान अर्थात सहज विचार असंभव नहीं परंतु इतना सरल भी नहीं है।

सहज़ भाव सहज़ व्यचार स्यठा दुर्लभ छुये,

दम् दम् रोज़ि हुश्यार, स्यठा .... ग,अ,भ 74,1

अर्थ– हर श्वास में जागरूक रहते हुए सहज़ विचार एवं स्वानुभव में रहना अति दुर्लभ है। तथा–

क्रेछर चंदरायन दर्य दर्य व्रथ, पंच अग्न सोंप्य ता'प्य ता'प्य न्यथ।

सूर मल्यतन पानस ति वा'ल्यतन रथ, आत्मज्ञान् रुस मिटन न अतगथ,
तोति न् तरि पानस करि फरि लोलो। सहज़ भावप्रावि युस मरि लोलो।

ग,अ,भ 72,2

अर्थ–कोई कितने व्रत धारण करे, चांद्रायण चबाकर नित्य अग्न तापे, भस्म मले, अपना रक्त बहाए परंतु सहज ज्ञान अर्थात आत्म ज्ञान बिना आवागवन नहीं मिटता है।

ललद्यद के शब्दों में –

''सलिलस यो'द लवन मीलिथ गछ़े तोति छुय दुर्लभ सहज़ व्यच़ार।

अर्थात अभ्यासी यदि स्वानुभव में उस सीमा तक भी घुल जाए जैसे नमक पानी में घुल जाता है, फिर भी सहज़ विचार दुर्लभ है।

सहज ज्ञान से संबंधित अपने अनुभव को स्वामीजी के कई भजनों में वर्णित देखा जा सकता है। स्वानुभूति का भजन देखें।

गुरु संद्य सीव पाद्य, शब्दस परखि साधय |.....
वुछ च़ोपोर सुये , बूज़ त्युहुंदुय हुये ।
च़जमो मनि दुये, ल'ज स'हज़ समाध्य । ...... ग,अ,भ 45,1

अर्थ– गुरु का चरणों की सेवा करो तथा उनके दिए हुए शब्द को परख लो – ऐसा विचार करके मैंने परखा, मस्ती आ गई तथा चारों दिशाओं में केवल उसी को देखा और उसकी वाणी सुनी अर्थात चारों ओर ईश्वर ही खेल रहा है, इसी सत्य को **संत** बनकर देखा और आज़ाद हो गया जिससे मेरा द्वैत भाव स्माप्त हो गया और सहज समाधि लग गई।

अन्दर गाश न्यबर गाश, हेरि ब्वन् सपुद गाश।

त्रा'परिथ पाश द्रामो वाश, तोरुक आलम्य गाश। ... ग,अ,भ 22,1

अर्थात बाहरी जगत से अंदर आ गया, अंदर बाहर, ऊपर तथा नीचे, वहां का संसार प्रकाश ही प्रकाश है।

सुय वुछ मे यस न् कांह शक्ल्ई छे'य।
को'रुम दर्शुन हा'रतस अक्ल्ई छे'य । ग,अ,भ 22,2

अर्थात उस को मैंने देखा जिस का कोई रूप नहीं है। मैंने उसके दर्शन किए और बुद्धि आश्चर्य चकित हो गई।

गोव्यंद्ह गोव्यंद्न्य द्र्य, च्य छुख, च्य छुख, च्य छुख, च्य।
खोव्र्य च्य द'छिन्य च्य, मंज़ अ'छन गाश च्य, ग,अ,भ 39,1

अर्थात गोविंद, तेरी सौगंध, दाईं बाईं सर्वत्र तू ही तू है, नेत्रों का प्रकाश भी तू ही है तथा देखने वाला भी तू ही है।

सुरत शब्द योग

सुरत शब्द अभ्यास की महत्ता को दर्शाते हुए स्वामीजी कहते हैः—

परम कल्यान दिववुन छुयो, सुरत शब्द अभ्यास।...
करवुन च़्यतस न्यर्मल छुयो.... सुरत शब्द अभ्यास।. ग,अ,भ 139,2

अर्थात – सुरत शब्द अभ्यास सत ज्ञान, निर्वाण दायक, अनमोल रत्न, पापों को जलाने वाला,, मंगल दायक, सत्लोक का द्वार, रूह को ताज़ा करने वाला, भवसिंधु का जहाज़, मनको मगन करने वाला, सब का सार और कुल, ज्ञान का भंडार चित्त को निर्मल करने वाला और सब से परे गोविंद का यार है। चित्त क्या है? इस बारे में क्या कहा गया है आगे देखने का प्रयास करते हैं। अभी सुरत संबंधित बात करें गें

सुरत—सुरत हमारी मूल वृत्ति है जो देह में अवस्थित अनहद नाद से सदा जुडी रहती है। सुरति को कोई स्मृति ''अनुभूतषियासंप्रमोषः स्मृति,'' पातंजल योग का अपभ्रंश मानते हैं या कोई मन का पर्याय मानें। राधास्वामी वालों ने सुरत को जीवात्मा के अर्थ में माना है। मगर सुरत से आत्मा में व्याप्त अंधकार का नाश हो जाता है और उस की विलुप्त स्मरण शक्ति पुनः लौट आती है। सुरत में मुख्य 'रति' है जिस का अर्थ आत्म प्रेम है। यह प्रेम तब तक अंतःकरण में उदीप्त नहीं होता जब तक हमें यह चेतना नहीं जाग जाती है कि बाहर कोई ब्रह्म नहीं है, हम ही ब्रह्म हैं। अपने अंदर सुनाई देने वाली अनहद वाणी के साथ जब सुरत मिल जाती है तो आगे के मंज़िलों का सफर आरंभ हो जाता है।

खारुन सुरत ब्रह्मान्डस्य दा'रिथ कन्य रोज़।
गोव्यंद सथग्वर शब्दस सृतिय रात्रद्यन्य रोज़। ग,अ,भ 109,1

अर्थात अपनी सुरत को ब्रह्मांड में चढाकर कान धर के रहो और सद्गुरु शब्द के साथ दिनरात रहो।

संत मत में हमारे शरीर में आत्मा को **सुरत** कहते हैं जिस का अर्थ है ध्यान या तवजह। हमारे शरीर में दूसरी परम चेतन सत्ता भी रहती है जो हमें जीवित रखती है। उसे शब्द कहते हैं। यह हमारे अंदर धुन के रूप में प्रकट होता है। नाम या शब्द की दो अवस्थाएं हैं।

1 धुन या शब्द– 2 प्रकाश

1 धुन या शब्द– इसके तीन प्रकार माने गए हैं।

- **क** वर्णात्मकः जो शब्द वर्णों सा अक्षरों द्वारा व्यक्त किए जाते हैं जो लिखने पढने और बोलने में प्रयोग होते हैं।
- **ख** श्रवणात्मक भेद का भी उल्लेख किया है जो बाहरी ध्वनि से जैसे टंकार गजर्न से उत्पन्न होती है।
- **ग** धुनात्मक–जो शब्द अंतरमुखी अभ्यास द्वारा अंतर मैं सुनी जाती है। सतगुरु द्वारा दिए गए नाम से ही धुनात्मक को अपने अंदर प्रगट किया जाता है।

तुलसी साहिब जी इसीलिए कहते हैं कि शब्द भेद को अच्छी प्रकार न परखने से लोग बाहरी शब्द या ध्वनि को ही सब कुछ मान कर भूले रह जाते हैं। पर जब परमात्मा स्वरूप गुरु की कृपा से आंतरिक शब्द धुन या नाम का भेद मिल जाता है तब जीव के अंदर ज्ञान का सूर्य प्रकाशित हो उठता हैः–

श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक वर्णत्मक विधि तीन ;
त्रिविधि शब्द अनुभव अगम तुलसी कहि प्रवीन।।

2 प्रकाश– अर्थात **सुरत को शब्द** के साथ मिलाने के अभ्यास को सुरत शब्द अभ्यास अथवा सुरत शब्द योग कहते हैं।

नाम, शब्द, धुन, और रूप दिव्य प्रकाश को कहते हैं। इन्हीं दोनों के सहारे हम नामी या परमात्मा तक पहुंचते हैं। दोनों ही अनादि और अक्षत हैं यानी दोनों ही अनादि काल से हमारे अंदर हैं और इन्हें किसी भाषा में लिखा या पढा या बोला नहीं जा सकता।

सफल साधना

संतो का कहना है कि हमारी साधना का पूर्णतः सिद्ध हो जाना तभी सार्थक होता है जब हमारे जीवन में पूर्ण परिवर्तन आ जाए। इसे पुनर्जन्म भी कहते हैं अर्थात हमारी सारी वृत्तियां पूर्ववत न रहकर नवीन, शांत और शुद्ध हो जाएं। स्वामीजी ने ऐसी दशा को **जीवित मृतक** कहा है। मरने और ज़िंदा मरने में अंतर केवल इतना है कि जीव प्रकृति के नियम के अनुसार शरीर छोड देने पर मजबूर होता है और रोज़ मृत्यु के डर से कितनी ही बार मरता हैं किंतु संत अपनी इच्छा से शरीर के ज्ञान से छूटकर अपने स्वरूप में स्थित रह कर जीवित मृतक हो जाता है और दिन में कई बार अपनी इच्छा से ऐसा कर सकता है। स्वामीजी कहते हैं–

शिव,जुव ज़ान पनुन कर ़्यथ ईकागरत्।
ब्ययि केंह मत् करत् **ज़िंद् मरत्** दित् समाध।
करनस न करनस वुछना योत करत्।
ब्ययि केंह मत् करत् ज़िंद् मरत् दित् समाध। ग,अ,भ92,3

सुरतस त् शब्दस मेल्य बनि यस,
ननि तसतस असरार सोन्दरो। ग,अ,भ 153,1

अर्थात सुरत और शब्द जिस को योग हो गया तथा मेल हो गया वही रहस्य को पाएगा। यही सुरत शब्द योग या नाम स्मरण है। ऐसे अभ्यासी सदा ब्राह्मी स्थिति में लीन रहते हुए भी समाज के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित नहीं करते हैं। ऐसी दशा का सदा बनाए रहना कठिन है क्योंकि दैनिक जीवन में भोग तथा वासना प्रवृत्ति, राग, द्वेष हर्ष, शोक आदि वृत्तियां चित्त को विचलित करती रहती हैं। इसी का समाधान नाम स्मरण है। गुरु की सहायता से तथा अपनी लगन से जीव का उद्धार हो जाता है अर्थात जीव भाव से ईश्वर भाव में स्थिर हो जाता है। इस लिए दोनों तत्वों पर कुछ विचार किया जाए।

परमात्म तत्व और जीव तत्व

स्वामीजी की दृष्टि में परमात्मा तत्त्व एवं जीव तत्त्व में कोई अंतर नहीं है। जीव उस परमात्मा को तभी तक पृथक मानता है जब तक उसे उस का बोध नहीं होता। वास्तविकता का परिचय पाते ही वह जल में जल की भांति मिलकर उस से अभिन्न हो जाता है, वह ऐसी स्थिति में आता है जिस में उसे पूर्ण शान्ति एवं परमानंद का अनुभव होने लगता है। ऐसी मनोदशा हो जाने पर उस का न तो कोई अपना ही न पराया ही रहता है, न भूत काल ही रहता है न भविष्यत काल। वह सदा नित्य, सर्वदा वर्तमान में स्थित रहता है। स्वामी जी का यही अनुभव देखिए–

भ्रम मिट्योव होशस प्योस, गोव्यंद गोव्यंद्य ओस...। ......
जीव ईश्वर ब्रह्म किन्य बोस......... । ग,अ,भ 149,1

अर्थात मैं तो भ्रम में पडकर अपने को जीव समझ बैठा था अपितु मैं गोविंद वास्तव में गोविंद ही था। तथा

आलम्य त्यलि नय ओस ज़ामुतुय,
सिर्यि चंद्रम त्यलि ना ओस द्रामुतुय,
वीद शास्त्र त्यलि न ओस आमुतुय
ओस गोविंद तथ अवस्थायि मंज़ वुछ। ग,अ,भ 51,1

अर्थात– मैं गोविद तब से हूं जब सूर्य, चांद, संसार, वेद, शास्त्र जन्मे ही न थे। इसी जीव ईश्वर एकता को स्वामीजी के एक भक्त, सोफी संत अब्दुल अहद ज़रगर साहिब के शब्दों में–

मे'य लो'द आदम, म्येय ह्युतुस जान।
म्येय ज़ाव मुहम्मद म्येय वो'न कुरान।
म्येय निश नो'न द्राव मलिकुलजबार।
काफर सपदिथ को'रुम यकरार ।

अर्थ– सब कुछ त्याग कर अर्थात मज़हबी बंदिशों को तोडकर और काफर बनकर मैंने पाया कि मैंने ही 'आदम' मनुष्य को बनाकर उसमें जान डालदी, महम्मद भी मेरे से ही उत्पन्न हुआ और मैंने ही कुरान कहा। मेरे से भगवान का जबार नाम उत्पन्न हुआ है।

मन की एकाग्रता

स्वामीजी स्वात्म अनुभव में पूर्णता को पहुंचे हुए थे इनके अपने अनुभव को इनके सिवा और कौन अभिव्यक्त कर सकता है। अभी देखिं कि देश काल से परे की हालत कौन सी मंज़िल है वह केवल आत्मानुभव की ही मंज़िल तो है। इसलिए इस सत्य को दृढता से हृदयंगम करके ऐसी दशा का अनुभव अभ्यासी को करना होगा तब जाकर उस पडाव का पता लग सकता है। यहां मन की एकाग्रता के बिना इस हालत या स्थिति को विचार में लाना दूर की बात और समझना तो असंभव ही है। चित्त की ऐकाग्रता के लिए ही स्वामीजी द्वारा चित्त निरोध की सरल युक्ति बताई है।

> ज़्यथ ईकागर कर गछ बा स्थ्यर, सा'खी न्यरविकार च़् ज़्यनमातर।
> यहोय दृढ न्यशचय, छि परमसमाध्य, याद्य कर पान् पननुय स्वरूप।
> दम् दम् दमन्य स़्त्यन दम स'। भ्रम च़लिथ पथ छु सूहम हमस'।
>
> ग,अ,भ 22,1

अर्थात केवल अपने आप को याद दिलाने की ही बात है, कि अपना आप सत चित आनंद के सिवा दूसरा और कुछ नहीं है। हर श्वास में इसी तथ्य का ध्यान रखना है, कि भ्रम में डालने वाले बाहरी जगत के दृश्य की ओर मन भटके नहीं अपितु अंतरमुख रहे। हर सांस में उसी परमसत्ता का चिंतन मन में रहे। एक समय प्राण अपान दोनों सूहमसू ही में व्यस्त रहेंगें और मन स्वयं ही अंतरमुखी होकर शनै शनै नियंत्रण में आएगा। स्वामी जी के अधिकतर भजनों में इसी तथ्य को स्पष्ट तोर से हमारे सामने रखा गया है कि तुम्हारा तो सतचितदानंद रूप ही है। अर्थात अपने निज स्वरूप को याद करो। किंतु संसारिक दृश्य का छलावा मनुष्य को छल लेता है। इसलिए–

> पर त़् पान कुन व्यन्द कर दूर दुय, गोव्यन्द वीदव ग्यो'वमुत छुय।
> गोव्यन्द् स्वरतो गोव्यन्द् गू, प्राण छिय करन सूहमसू। ग,अ,भ 24,1

अर्थात तेरा तो अगाध सतचिदानंद रूप है, ज़रा अपने आप को याद दिलाओ। दूसरे और अपने का भेद मिटा दे और वेदों में भी यही कहा गया है।

यहां चित्त से दुई दूर करने का अपने को परमात्मा से अलग समझने का अर्थ समझना चाहिए।

किंतु मन के इस छलावे को कैसे रोका जा सकता है, इस मन रूपी हाथी को कैसे एक लंबे तथा कमज़ोर, पतले बाल से बांध कर पकड में लाया जा सकता है। अर्जुन जैसे महाबली को भी ऐसी ही परेशानी का सामना था। तो श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को इसका समाधान दिया था। कि हे अर्जुन अभ्यास रूप योग के द्वारा मेरे को प्राप्त होने के लिए इच्छा कर।। **39**

चित्त, चिदाकाश– चित्त रूपी आकाश अंतःकर्ण की ही भाग है नितांत साफ होता है। चिदाकाश की अपनी कोई वृत्ति नहीं होती, मानो यह शरीर के अंदर एक स्वच्छ आईना (reflector) है इस पर जैसा बिंब पडे वैसा ही यह प्रतिबिंबित होता है। यह अत्यंत संवेदनशील होता है इतना कि इसमें सूक्षम विचार का भी प्रतिबिब ग्रहण करने की क्षमता है। यदि कोई पूर्व आग्रह न हो तो इस पर स्थाई प्रभाव नहीं पडता है अन्यथा कर्म या दैव बन जाता है जिस का अच्छा या बुरा दोनों का भोग करना पडता है। जैसे मंदिर जाना, पंछियों को दाना खिलाना, किसी स्वादिष्ट वस्तु सेवन का व्यसन आदि कर्म जिसके किसी दिन न करने से मन में बेचेनी बढ जाए, पूर्वाग्रह में आते हैं। आंख कान जीह्वा आदि इंद्रियों द्वारा जो भी दृश्य या कोई झलक सामने आती हैं, सीधे चिदाकाश पर अंकित हो जाती है। वही प्रति छाया मन के द्वारा प्रयोग में लाई जाती है तथा तदरूपता को प्राप्त होती है। जब अपने सदगुरु का बिंब अंदर अंकित होता है जितना उनके प्रति लगाव या प्रेम होगा उतना ही ज़्यादा देर तक उनका बिंब तथा शब्द मन पर हावी रहेगा। इसी लिए ज़िंदा गुरु ही महत्वपूर्ण है और गुरु के सामने बैठने तथा उन पर दृष्टि टिकाने से उनका अक्स मन पर पडता हैं क्यों कि सामने बैठने वाले का अक्स तुरंत चित्त पर अधिक पडता है उस मूरत के बजाय उसके जो कभी महान हो गुज़रा हो जिसको कभी देखा भी न हो या किसी आराध्य के तस्वीर का ध्यान करने से सामने वाले का ध्यान या प्रतिबिंब अधिक सफल होता है। जब इसका गहन अभ्यास होता है तो अधिक प्रेम उमडता है तथा एकी भाव से अपने आराध्य का ही चिंतन होता है। इस सीमा तक कि दोनों एक हो जाते हैं।

चित्त की वृत्तियां बाहरी दुनिया के स्थान पर अंदर अपने प्रीतम के साथ गुलमिल जाती हैं और अपने प्रीतम के बिना कोई भी वस्तु उन्हों प्रिय नहीं लगती है सदा अपने आत्मा के साथ नाचती गाती है अर्थात रास खेलती हैं। इस **रास लीला** वाली अवस्था को स्वामीजी के शब्दों में देखें:–

क– सत च़्यत आनंद मोहनय, ... राधा कृष्ण राधा कृष्ण ....।
रास गव गालन द्वयतुक भास्य, रास गव करुन संकल्प संयास्य,
रास गव पान् सान कृष्ण ज़ानुन कुल,..................रास गव मनोनाश,
रास वासनायि क्षय। .... रास गव प्रावुन मरिय सहज़ भाव, ...।
बुद्ध राधा शुद्ध गय चानि आशिय, ही निरंजन मोहन च़्यदाकाशय ।

ग,अ,भ 44,3

अर्थात सत चित आनंद रूप कृष्ण ने मोह लिया, रास द्वैत का अभाव, वासना तथा संकल्प शून्य होना, कृष्ण को सब कुछ जानना, सहज भाव पाना होता है। शुद्ध बुद्धि राधा और मोहन चिदाकाश का मिलन ही रास है।

स्वामीजी मन के विकार दूर करने का तरीका सरल शब्दों में साधकों को बताते हैं कि:–

आसन दा'रिथ वासन दूर कर निश मनय,
श्वासन शनै शनै खार सूहम सू स्वर।।
न्यथ प्रभातस व'थिज़ि टाठ्या कन थव वनय,
पाद अथ् बुथ छल कल त्रा'विथ, ज़िंदय मर।
न्यशकल बन पानस व्यन मो ज़ान अख कनय...........। ग,अ,भ 127,2

अर्थात प्रातः उठकर हाथ मुंह धोकर विचार करना तथा चिंता छोड कर, सुरत या खयाल को उलटा मोडकर समस्त वासनाओं को मन से दूर करके आसन पर बैठ जाओ। इसके पश्चात अपने श्वास को नाक के रास्ते से सू करके आहिस्ता आहिस्ता से अंदर खींचकर ज़रा ठहरा लें और आहस्ता छोड दें। अर्थ यह कि मन को बाहरी नज़ारों से हटाकर अंदर की ओर लाकर निश्चिंत होकर सूहम सू का स्मरण करते रहें। ऐसा रोज़ करने से मन की दशा बदले गी। ऐसा करते रहने से कुछ समय के बाद मन अंतर मुख होकर शांत होने लगेगा। सारांश यह कि चित्त को धीरे धीरे अभ्यास से ही रोकना संभव है।

प्राणों का अभ्यास करने तथा प्राण अपान का संगम समझने से भी चित को रोका जा सकता है।

प्राण अपान हो मेलि यत्यनस, प्राण च़ुय ज़ानुन सुय त'त्यनस।
ये'लि मेलि **मंजस्य** छु हर, च़्यथ गछ़ि पानय ईकागर। ? ग,अ,भ10,2

दो सांसों, दो विचारों, जाग्रत और स्वपन के बीच के अंतराल को अनुभव में लाना चाहिए और इस अंतराल को पकडना चाहिए। इस अवधी में प्रेम से गुरु उक्त शब्द को ध्यान में लाना चाहिए। इसी तथ्य को शैव दर्शन में संधिस्थान या जंकशन कहा है। जैसे दो सांसों, दो विचारों आदि के बीच का अंतर स्वपन तथा जाग्रत अवस्था के बीच के अंतर में ही अर्थ निहित है।

कशमीर शैव दर्शन में 'मंज़स्य' को संधिस्थान 'junction' [40] कहते हैं और इसी बिंदु पर मन को टिकाने का अभ्यास कराया जाता है। इस स्थान पर ध्यान केन्द्रित करने से ऊर्जा नीचे के मंडलों में जाकर तुरंत मुडकर वापस ऊपर ब्रहमांड में आती है।

चित्त निरोध की बात के पश्चात चित्त शुद्धि के विषय में ध्यान आजाता है कि स्वामीजी चित्त को स्वच्छ रखने के अधिक जोर देते थे। यहां शुद्धि का अर्थ चित्त रूपी दर्पण को किसी भी दृश्य से वर्जित रखना है।

शुद्ध कर च्यत आकाश चमकन जोति प्रकाश,
ज़न लछ सिर्यि शाबाश छुय मन पाव जुवो। ग,अ,भ 76,1

स्वामीजी का चित्त शुद्धि पर ज़ोर :—संतमत में सिद्धान्तों की अपेक्षा साधनाओं के परिचय तथा चित्तवृत्ति को बहिर्मुखी से अन्तरमुखी करने पर ध्यान देना होता है।

वुछ म् न्य'बरिमिस दीशस कन थव वो'पदीशस।
ग्वर् दीशस सुरत खोरुय, यि छु सोरुय गूव्यंद।। ग,अ,भ 33,1

अर्थात बाहर मत भटको और पाने अंदर झांको। गुरु उपदेश को धारण करके सुरत को गुरुधाम में व्यस्त करो फिर विदित होगा कि यह सब तेरा ही रूप है।
तथा

मल हो दज़ियो तीज़्कि श्रानय शुद्ध कर मन बरफानय गछ़। ग,अ,भ 78,1

अर्थात परमात्मा सर्व व्यापक होने के नाते हमारे भीतर भी तो है। इसे बाहर खोजने के बजाय अंतरदृष्टि का प्रयोग करना पडता है। बाहर के नज़ारों तथा इनके बारे में चिंतन करने से शरीर की ऊर्जा व्यर्थ में नष्ट होती है। अंतर दृष्टि से हमारी इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृत्तियां सिमटकर मन में केन्द्रित हो जाती हैं। मन सूक्षम विषयों में प्रविष्ट हो जाता है और आत्मनिष्ठ होकर हम आनंद का अनुभव करते हैं और चित्त शुद्ध हो जाता है। चित्त में ही बाह्य जगत का प्रतिबिंब पडता है तो मन उसी के अनुरुप प्रतिक्रिया करता है। जब चित्त साफ और स्थिर हो जाता है तो अपना निर्विकार रूप दृष्टि गोचर होता है।

प्राण पवन् नभ छ्यथ साफ सपदानय, शुद्धकर मन बरफानय गछ़। ग अं,78,1

अर्थ प्राण रूपी पवन से आकाश रूपी चित्त निर्मल होता है और मन हिमवत शुद्ध होता है।

इस साधना में मन द्वारा तत्व चिंतन करने को महत्व दिया गया है। ताकि चित्त स्वच्छ बना रहे।

ज़े'वि मो वन बोलनाव मन बन मनसूर गोव्यंदो ।
छारमो वन ज़ेनबा मन चलिय ग्यूर गोव्यंदो ।
ज़ेनख मन त्यलि धन्य धन्य छुख बहादूर गोव्यंदो। ग,अ,भ 100,1

अर्थात ज़बान से नही मनसूर की भांति मन से बोलो, मन को जीतो तभी वीर हो। गोविंद तेरा भटकना भी बंद हो जाएगा। तथा

समरस पिया है जिसने मसरूर उसी को समझो।
काम क्रूध लूभ मद मोह अहंकार सहित,
मन को जो कोई मारे बहादूर उसी को समझो । ग,अ,भ 26,2

चंचल मन के चंचल खेल– ध्यान में बैठते समय जब मन खयालों में उतर जाता है तो पता भी नहीं लगता कि आन की आन में कहां से कहां पहुंच गया। मन में किसी के साथ झगडा करने पर पहुंच गए और हाथ हिलने लगे। यदि दिन में किसी से तूतू मैंमैं हो गई तो दूसरे को नीचा दिखने के लिए नए दाव पेच सामने आते हैं। ध्यान में ही ज़रूर कोई न कोई बाधा आखडी होती है। पहले पहले साधक के साथ ऐसा ही होता है। यह खलबली वैसी ही है जैसे कि किसी महत्व पूर्ण अतिथि को हमारे घर आना हो और हम तुरंत झाड़ू लेकर कमरे को साफ करने

लगते हैं इसलिए काफी धूल उडती है आंखों को कुछ सूझता नहीं नाक में गंदगी घुस जाती है और नाक, सर, मुख आदि ढक लिया जाता है। मेहमान तो दरवाज़े पर खडा है तो कैसे कमरे के अंदर आएगा। हर रोज़ सफाई करने से कमरे में कोई धूल या कचरा नहीं होगा तो मेहमान प्रसन्नता से कमरे में घुसे गा। यही दशा ध्यान के समय अनेक विचारों की है। हां, यदि ध्यान में ज़्यादा खलबली हो जाए तो थोडे समय के लिए दूसरा कोई काम करना चाहिए तब तक मन के विचार कुछ थम जाते हैं तो फिर ध्यान में बैठना चाहिए। लेकिन अनिवार्य काम समाप्त होते ही मन को फिर एकाग्रता के लिए ज़बरदसती मोडना है। एक समय ऐसा आता है कि मन विकारों से साफ होकर थोडे विचारों पर सिमट जाता है तथा चित्त साफ होने लगता है। हर समय अपने गुरु को मन में सामने रख कर अभ्यास किया जाता है। समय आने पर उनकी कृपा बरसती है और सुरत एक स्थान पर स्थिर हो जाती है। चित्त जब निर्मल हो जाता है तो अपना स्वरूप दिखाई देने लगता है और मन सूक्ष्म अनुभव को प्राप्त होता है।

सद्‌गुरु का महत्व – आध्यात्मिक चक्रों को पार करने के लिए गुरु का होना अत्यंत आवश्यक है। हमारी सुरत को शब्द की ओर उन्मुख करने के लिए संतों ने सद्‌गुरु के माध्यम की ओर इशारा किया है। इस रास्ते के रहस्यों को सदगुरु के बिना कोई नहीं जानता है।

संतों के लिए गुरु का महत्व सर्वोपरि तथा पूज्य है। क्योंकि गुरु ज्ञान प्रदान करता है। ज्ञानी ही संसार में निर्द्वन्द और स्वच्छंद घूम सकता है। गुरु की कृपा से ही मनुष्य के पास क्रोध, रोग, शोक, भय, राग द्वेष, काम, मोह, संग्रह, त्याग, भोग, दुःख आदि कुछ भी नहीं पहुंच पाता। जब गुरु हर समय हमारे ध्यान में हो तो यह मनोविकार मन मे कैस घुस सकते है। इसी को **मन का शुद्ध होना** कहते हैं।

गुरु नाम देते हैं काम देते हैं, धाम देते हैं, शिष्य की सर्वदा ज़िमेदारी लेते हैं। अंत समय में भी वे अपने शिष्य की खबर लेते हैं। स्वपर कुलगांव के एक भक्त सर्वानंद की अन्तेष्टि के समय मकान की सीढियों पर खडाओं पहन कर ऊपर जाने की आवाज़ सुनाई दी। जब शव को विमान पर सवार किया गया तो फिर किसी के खडाओं पहन कर सीडियों से नीचे उतरने की आवाज़ सुनाई दी। उस मृतक की पुत्री ने स्वामी नंदलालजी टिकर के शिष्य श्रीकृष्णजी से इस की वास्तविकता

के बारे में पूछा जो गढी उधमपुर के आश्रम में ठहरे थे। तो कृष्णजी ने कहा कि वे सर्वानंद के गुरु महाराज स्वामीजी गोविंद कौल के सिवा कोई नहीं था जो अपने भक्त के अंतिम समय पर वहां मौजूद थे। अठासी साल के श्रीकृष्णजी महाराज ने लेखक को 8 फर्वरी 2004 को स्वरूप नाथ दिलनवी के घर आनंदनगर जम्मू में यह वार्ता सुनाई थी।

गुरु के बिना लक्ष्य को पाना असंभव है। स्वामीजी का कथन है कि–

पीरस रुस्तुय गछ़ख ईर, च्यथ गंमीऱ थाव बा वीऱ
सीऱ वथ ज़ीऱह बम्य ज़ान,ग्यवुन सूहमई ज़ान । ग,अ,भ 77,2

अर्थात गुरु के बिना जीवन नैया डोलती ही रहे गी। वही ज़ीरबम अर्थात दिव्य धुनों का ज्ञान करा सकते हैं।

याद रखें जो कोई प्रार्थना व विनती प्रभु के निज रूप के सामने की जाती है वह सब कुछ संत सद्गुरु का देह रूप ही सुनता है और कारज बनाता है। कभी किसी ने मालिक के अनिज स्वरूप की उपासना से कुछ हासिल नहीं किया। सब के सब संतों, महात्माओं अवलिया लोगों ने पूर्ण संत सतगुरु वक्त की दया व मेहर, प्रीत, व परतीत और सहायता पर ही ज़ोर दिया है। जो कुछ मिलेगा सद्गुरु की भक्ति सत संग और सेवा से ही मिलेगा।

गुरु की पहचान–संतों ने अपनी वाणियों में सद्गुरु और सच्चे नाम की पहचान के कुछ चिन्ह और निशानियां बताई हैं गुरु नानक देव जी की वाणी हमें बताती है कि सच्चा सद्गुरु वह है जो हमें पांच दिव्य धुनों की दीक्षा देकर हमारे शरीर रूपी घर के अंदर अपना सच्चा घर दिखाते हैं अर्थात जब गुरु शिष्य की आत्मा को शब्द के साथ जोड़ देता है तो आरंभ में दस प्रकार के शब्द सुनता है जैसे वायु बादल घंटा शंख आदि। उसके बिना कुछ भी संभव नहीं। गुरु ही ब्रहमा, विष्णु तथा महेश्वर हैं। गुरु ही सर्व जगत है।

गुरु ब्रहमा गुरु विष्णु गुरु देवा महेश्वरा। गुर्रुव जगत सर्वं तस्मै श्री गुरुवे नमः।

सद्गुरु का होना आवश्यक है। गुरु को समझना बहुत ही कठिन है। क्योंकि जो गुरु को समझ गया वह ईश्वर को पा गया। गुरु ही ईश्वर रूप होकर हमारे चित्त में वास करते हैं तथा हर क्षण हमको नियंत्रण में रखते हैं तथा आगे के स्थानों पर साथ देते हैं।

गुरु की कृपा आवश्यक है। क्योंकि गुरु परमीश्वर है, ऐसे लगना चाहिए।

ग्वर् छुय आसवुन नूरुक नूर, अज्ञान तिमरन करवुन दूर।

गुरु भी पूर्ण संत होना चाहिए वर्ना यह दशा हो जाएगी।
जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधे अंधा ढेलिया या दोऊ कूप पडंत । अज्ञात।

नकली गुरु

राहे रास्त से कुल्ला कर हटाकर झूठी राह दिखावे।
शैतान बच्चा वह नरकी, और चोर उसी को समझो।। ग,अ,भ 26,2

जिनके अनुग्रह से अखंड सत्य का स्वरूप प्रकाशित होता है वह वास्तव में सद्गुरु ही है। साधना के ऊंचे स्तर पर आत्मा को ही सदगुरु के रूप में स्वीकार किया जाता है। वही सद्गुरु के रूप मायान्ध जीव को माया से मुक्त करके उसके भीतर अवस्थित शक्ति को प्रबुद्ध कर अपने स्वरूप में ले आते हैं। कठोपनिषद कहता है कि आत्मा ही जीव पर कृपा करके अपना स्वयं का रूप उसके सामने उदघटित करती है।

नायम आत्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमैवष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूॅस्वाम।

कठोपनिषद

अर्थात यह आत्मस्थ परब्रह्म न तो प्रवचन से, न बुद्धि से, न बहुत सुनने से पाप्त हो सकता है, जिस को यह स्वीकार कर लेता है उसके लिए अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर लेता है।

जब साधक सत् देश या सच्च खंड में पदापर्ण करता है तो उसे अपने आत्मा की पूर्णता का ही दशर्न होता है, जो सर्वथा परम आनंद की अवस्था है। साधक तो पहले से ही वही रूप था। अब पूर्णता का अनुभव हो जाता है। तो कहता है कितना कठिन था यह रास्ता, अपना आप ही खोया था अब पा लिया। तो मैं ही मैं हूं। दूसरा कोई नहीं मेरे सिवा। इसी देश का अनुभव स्वामी जी के शब्दों में देखिए।

स्वपन् दृष्टावत च् सोरुय छुख बन्योमुत पान् तय...
गोव्यन्दो सोरुय गोव्यंद छुख च् अमिं यमि सान तय।

ग,अ,भ 150,1

अर्थात अरे गोविंद तू स्वप्न की तरह है किंतु हर वस्तु सहित तू गोवंद ही है।

स्वामीजी के भजनों में गुरु

इसलिए गुरु का रूप अभ्यासी के मन को रोकने के लायक होता है। सदगुरु कृपा करता है और रास्ता दिखाता है। सदगुरु कृपा से ही भक्त को वास्तविकता का पता लगता है। सद्गुरु पथ प्रदर्शक है। एक आदर्श है और अपने अनुभूत शब्दों में छुपी **युक्ति** को बताता है। स्वामीजी ने अपनी रचनाओं में गुरु का गान ही किया है तथा गुरु को सर्वोपरि रखा है। स्वामीजी ने गुरु की महिमा को परमीश्वर की महिमा ही माना है अर्थात गुरु परमीश्वर का सी स्थूल रूप है जो हर घडी अपने भक्त की सहायता करता हुआ रास्ता दिखाता है।

ग्वर्मो'ख् वुछमख परमीश्वरय, श्री सत्वरय लग'यो — गअभ 42,1
सथग्वर तति हा यिये, आलव हा चे'ह दिये,
पानस्य सृत्य नियेे युस छांजाव ज़ुवो।
सथग्वर चो'लमय सुलि वुज़ना'विथ, तथा
मस गोम चा'विथ खो'त खुमार।
सथग्वर पादन तल न्यम कन थव वज़न छुय नाद ब्यंद। — तथा
ग्वर छुय आसान नूरुक नूर अज्ञान तिमरन करवुन दूर। — तथा
ग्वर् व्य'ज़ ओम ओम स्वरन् सृत्य परद् व'थ्य। — तथा
रत्छे'पि लग चू ग्वरन, तिमन्य गछ़ शरण,
रछनय तल परन नत् फंद्य छु सोरुय। — तथा
यिय चे'ह ग्वरव वो'न कड पोन्य द्वध ब्यो'न। — तथा
धन्य धन्य गुरु देवा धन्य परमीश्वर दीनानाथ,
वंदयो पादन चे ज़ुवो सानि गवरो।

इस विलक्षण युक्ति या जुगति को जानने के लिए सत्संग को महत्व दिया गया है। जहां अनेक रहस्यमयी गुथियों को सुलझाने का रास्ता निकल आता है। अपने इष्ट के प्रति भक्ति तथा प्रेम की भावना रखते हुए निराकार का साकार ईश्वर की तरह महिमा का गुण गान करते हैं। कुसंग को भयावह मानकर स्वामीजी ने इस से दूर रहने की चेतावनी दी है क्योंकि कुसंग बहुत ही बलवान है।

संगस हिव नय कांह बली संगदूष् सृत्य ब'डि वीर डली,
सो'य बेकली त्राव कर म् क्राव, महिमा पनोनुय याद पाव। ग,अ,भ 79,1

इसलिए कुसंग का त्याग अति आवश्यक है जिस से शांति मिलती है। इसलिए मन को कुसंग से बचाने के लिए तथा सत शब्दों को सुनकर ग्रहण करने के लिए सत्संग ही अवषधि है। सत्संग में केवल भगवत भजन ही श्रेयस्कर रहता है, मन ठहराव पाता है। इधर उधर की बातों के लिए सत्संग में कोई स्थान नहीं है वह केवल समय को नष्ट करना है। स्वामीजी के शब्दों में:–

संतो बसंत बहार सत्संग, सार सत्संग सबज़ार सत्संग।.......
फो'लि कासि सोरुय अंधकार सत्संग।........... ग,अ,भ 18,3

अर्थ–हे संतो, सत्संग वसंत रूप है, हरियाली है तथा सत्संग सार रूप है। सारा अंधकार मिट जाता है। सत्संग मोक्ष के द्वार पालों में से एक है।

मोक्ष द्वार के चार द्वारपाल

क शमः वसनाओं का त्याग। **ख** दम : इन्द्रियों को वश में करना
ग संतोषः सम्पदा और आपदा दानों को पाकर इनसे अलग रहना। अप्राप्त वस्तु की इच्छा न करना । **घ** विचार : असत्य को छोडकर सत्य की ओर यत्न करना क़िः 1. मैं कौन हूं 2. यह जगत क्या है 3. इस की उत्पति कैसे हुई 4. लीन कैसे होता है। **च,** सतसंगः संतों का संग करना। इन चार में से एक के मिलने पर चारों प्राप्त होते हैं। यही भाव स्वामी जी के भजन में देखें–

पानो कति आख कति छुय चोन घर्
वनतम सु सर् क'रय'था ज़ाह। गअभ 137, 1

गुरु असाधारण है स्वामीजी के भजनों में इसी तथ्य को बार बार दोहराया गया है कि गुरु कोई साधारण मानव नहीं है, वह चेतन साधक है जिस ने साधनात्मक विकास के द्वारा ईश्वरत्व को उपलब्ध कर लिया है। गुरु तो बोलता चालता ब्रह्म है। किताबें कितनी भी पढी जाएं, मंत्र कितने ही कंठस्त करके जप जाऐं, हज़ारों बार माला फेरी जाए, किंतु सदगुरु कृपा के बिना आत्म ज्ञान असंभव है। सारे धर्म ग्रंथों ने गुरु की महिमा को स्वीकार किया है। संतों ने गुरु को ईश्वर से भी ऊंचा स्थान दिया है।

गुरु गोविन्द दोऊ खडे काके लागों पाय।
बलिहारी अपने गुरुन की गोविंद दियो दिखाय। संत कबीर।

स्वामीजी का कथन हैः–

भव द्वख कासि दियि तार भक्ति भाव जुवो।
सथग्वर दयस्य च़्य पान पुशराव जुवो। ग,अ,भ 76,1

अर्थात–गुरु भक्ति से भव दुःख को दूर करता है इस लिए सत्गुरु के सामने पूर्ण समर्पण करो। अभ्यास में सद्गुरु मिलकर अपने साथ अगले चक्रों को पार कराते हैं।

स्वामीजी ने अपने गुरु महाराज की भक्ति परमशिव रूप में शिवमय हो कर की है। उन्होंने अपने भक्तों को सतगरु को ही सर्वस्व अर्पण करने को कहा है। इससे सदगुरु स्वयं भक्त का सारा भार वहन करता है। अपने शिष्य के अंत पर गुरु पर भी उनके पास आते हैं। गुरु की महानता दर्शाते हुए स्वामीजी के भजनों के कुछ पद देखें–

परन प्यथ शरण गछ मुक्त करिय करिय न् बंद।
ग्वर् सन्ध्य युस सीवि च़रनाब्यंद।।

वे 'गोविंद अमृत' में गुरु महिमा पर ही अधिकतर बल देते है।

कहीं पर संकट हरण के लिए -'सथग्वरस्य नाद लाय'– सदगुरु को ही बुलाने का परामर्ष देते हैं क्योंकि सद्गुरु के अनुग्रह के सिवा कुछ भी संभव नहीं है।

बनिहे क्या सानि ज़ोरय, अनुग्रह सपुद हा तोरय।
ओरय ग्वरव चे़'ति योरुय, यि छु सोरुय गोव्यंद।।
सानि ज़ोर् बनि क्या तोरक्यन ज़ोरन। ग,अ,भ33,1

अर्थात हमारी शक्ति से कुछ भी नहीं हो सकता है। सद्गुरु की ओर से ही अनुग्रह हो तो बात बनती है। इस लिए कहीं 'पादि कमलन करय चे़ मो'न्य', चरण चूमने को प्राथमिकता देते हैं। कहीं सावधान करतें हैं कि सदगुरु 'यिना ग्वर दयाल रोशिय हरदम शरण शरण रोज़', गुरु न रूठने पाए इसलिए हर समय उनकी शरण में रहना। अभ्यास में रत होकर 'सत्वर तति हा यिये आलव हा चे़' दिये', सदगुरु साधक को बुलाते हैं अर्थात साधक और सद्गुरु जहां पर एक हो जाएं 'पान प्रज़नाव दय पनि गरे ' वहीं पर साधक का काम सिद्ध होना बताते हैं। अपने भक्तों को सद्गुरु प्रेम में लीन होने के लिए बल देते हैं। जिस किसी पर सदगुरु दया रूपी अमृत वर्षा करते है वह कभी न रोता है न पछताता ही है''। दयायि अम्रे'थ वर्षुन यस को'र परमीश्वरन सु ना रिवन दिवन

तस पननुय होशिय, हा गोविंदो।, गुरु ही आपको परा विद्या सिखा सकते हैं।

हे'छ ग्वरन निश विद्या, नाव यथ परा विद्या ।
हृदयिचि पोथि वुछाम, तथ लीखित मे' यिय द्राम।
ग्वरन्य करु प्रणाम, अभिमान हरिवु सू सू। ग,अ,भ 111,1

अर्थात– हृदय की पोथी में यही लिखा पाया कि अभिमान त्याग कर गुरु को प्रणाम करके उनसे परा विद्या सीखो। सारांश यह कि जब तक गुरु का अनुग्रह प्राप्त न हो तब तक अपने को पाना संभव नहीं है।

श्री सद्‌गुरु को मनाने के साथ साथ जब उनकी कृपा की वर्षा होने लगती है तो कभी अंतर मे प्रकाश दिखाई देता है, कभी छिप जाता है। कभी गुरु शिष्य दोनों एक हो जाते हैं। इसी तथ्य को अनुभव के आधार पर स्वामीजी फुरमाते हैंः

गाहे यिवन्य गाश्य छु बोज़, गाहे दिवन्य छे'फ छु हू ।
गाहे दरन ग्वर् सुंद ध्यान, गाहे छु शिष्य ग्वरस्य वुछान ।
गाहे छु द्वशवन्य कुन बनन, आश्चर यि छुय नय गफ छु हू।
गाहे ग्यवन लोल मे, ज़ानिय ज़ानन वोल मे।
सत्वर मा'ज्य तय मोल मे, गोव्यंद क'रिथ तस थफ छु हू ।
ग,अ,भ 156,1

अर्थात कभी प्रकाश प्रकट होता है तो कभी छिप जाता है। कभी शिष्य अपने गुरु को देखता है और कभी दोनों एक हो जाते हैं। मेरा माता पिता वही है, इसी पर मेरा पूरा विश्वास है। सद्‌गुरु प्रेम से ही यह सारे तथ्य सामने आते हैं। काव्य द्वारा प्रेंम के सूक्षम सत्य का निरूपण स्वामी जी के अमूल्य शब्दों में –

बार बार व्यचार वुछत् क्या गव, प्रेम त् पानन्यार वुछत् क्या गव ।
याद पाव श्रीराम सुय वनकुय छे'ट्य चूंठ्य शिरायि ह्दि ख्यनकुय ।
मनकुय यि मिलचार वुछत् क्या गव। प्रेम त् पानन्यार वुछत् क्या गव ।
राधायि हंदि तो'त द्वद चे'न् स्त्य, कृष्णस बसतह खच् लोल हे'न् स्त्य ।
ख्यनह स्त्य आहार वुछत् क्या गव। प्रेम त् पान्न्यार .....। ग,अ,भ 110,1

निकटतम अर्थ– प्रेम और सौहार्द क्या होता है इस पर बार बार विचार तो करो। श्रीराम के वनवास का स्मरण करो कि प्रेम में तल्लीन शिवरी द्वारा चखे झूठे बेरों को श्रीराम ने किस प्रेम के साथ खाया। प्रेम की

शिरोमणि राधा के गर्म दूध पीने से श्रीकृष्ण के चरणों में छाले पडे इस गनिष्ठ प्रेम की पराकाष्ठा पर विचार तो करो। इन सब उदाहरण के पीछे निहित सूक्षम भाव पर बार बार विचार करते रहो। यही प्रेम और सौहार्द है। यहां एक दूसरे पर पूर्ण फिदा होना ही भाव है। इस बारे में एक और रचना देखें–

तन फिदा मन फिदा प्राण फिदा, हा ज़व् करतस जान फिदा।
धन दौलत सम्पति गाट्जार, सर फिदा करतस जान फिदा।
वर्ण आश्रम कुल त् गुथरुय, गछ़ त् बा अमि यमि सान फिदा।
गोव्यंद् चोन जुव छुय शिव्य, तस छुय ज़मीन आसमान फिदा।

ग,अ,भ 120,2

अर्थात अपने गुरु पर तन, मन, धन, प्राण, जान, बुद्धि मानी, कुल, गोत्र सब कुछ न्योछावर कर दो। गोविंद तेरा रूप तो शिव का है जिस पर धरती आकाश फिदा हैं।

ध्यान सारांश यह ध्यान करते समय चित्त में बाहरी दृश्यों का जब अभाव सा हो जाए तो चित्त का कुछ स्वच्छ हो जाना कहलाता है। ऐसे साफ चित्त रूपी शीशे पर गुरु रूपी प्रतिबिंब पडता है अर्थात गुरु का चित्रांकन अंतःकरण में उत्पन्न हो जाता है। तो फिर तीनों अवस्थाओं में योगी में जागरूकता आजाती है। इस स्थिति में अपना आप ही अपने को सामने देखता है कोई आसक्ति नहीं, केवल जाग्रूकता का अनुभव करता देखता है। जागरूकता का अर्थ यहां पर होश (self-awareness) से है। लोगों में इस जाग्रूकता या होश का साधारणीकरण हुआ है कि किसी के गिरते, ठोकर लगते, टांगे वाला टांगा चलाते समय यही 'होश कर' शब्द का प्रयोग करते हैं क्योंकि पुरातन काल से अभ्यास है कि हर एक को हर समय होश में रहना चाहिए। चूंकि किसी अचानक आघात के समय मनुष्य तुरंत होश खोकर अपने आप को भूल जाता है इसी लिए घटना पर मौजूद मनुष्य उसको ज़ोर से चिल्ला कर पुकारता है– होश कर, अथार्त अपने आप को भूल मत जा।

हर दम होश कर दम म्राव राव, लोल् सान ललनाव सूहमसू।

ग,अ,भ 112,1

अर्थात–हर समय होश में रहकर प्रेम से प्रभु का स्मरण करना चाहिए।

जब जागरूक अवस्था परिपक्व हो जाती है। तो

सोज़् सृत्य रोजु बेदार स्वंदरो। रिंदन हुंद छुय तिय कार स्वंदरो।
होशस में यिथ होशिय म्वो'चि़थ, सपदिथ शब्द सवार स्वंदरो।

ग,अ,भ 153,1

अर्थात शब्द के साथ जागते रहना चाहिए और शब्द को पाकर केवल चेतन रूप में रहना चाहिए।

श्री कृष्ण सदा आत्म जागरूकता में रहते थे। माता अल्खेश्वरी ने श्री शारिका का अवतार होते हुए भी अपने वास्तविक रूप में आने के लिए बारह वर्ष तक घोर तपस्या की थी। सारांश यह कि अपने निज रूप में आने के लिए योग के सारे खेल रचे जाते हैं।

मन

स्वामीजी का कथन है—

बादशाहों को कहां वह सुख वह जो है फुकरां को नसीब।
है सरूरे दायमी जो मिलता मन की जीत से। ग,अ,भ 35,2

परमानंदजी ने राधास्वयंवर में मन का स्वभाव दिखाया है कि—

मन छु अदिष्ठान सारिकुय, मन खारिकुय वे'चा़र तारकुय ।
मन निश अद् यस लोल वुजि़य, मनसृय निश मखोल वुजि़य ।
मन छु प्रावान ने'रवान छु मन, च़'म्य च़'म्य मनृस्य छुय च़मन।
पो'रशस प्रकृति निशि ज़ाव, मनसृय प्रव्रथ त् ने'व्रथ द्राव ।
न अहंकार दार आदिकार, वो'पकार् रुस रोज़ अविकार।

अर्थात, इन्द्रिया नाम मनः चास्मि। इन्द्रियों मैं मन हूं। गीता 10

मनोनाम महा व्याघ्रो विष्यारण्य भूमिषु।
चरत्यत्र न गच्छन्ति साधवो ये मुमुक्षव।। विवेक चूडामणि

अर्थात विषय रूपी वन में मन रूपी एक भारी शेर विचरता है। मोक्ष चाहने वालों को उधर की और कभी भी नहीं जाना चाहिए।।

व्यशियन त्राव वे'शियन वशिय बन मो च् करनय खार जुवो।
परम सुखसृय अननय फशिय, का'ल्य हो नशिय संसार जुवो।

ग,अ,भ 143,1

अर्थात मन को विषयों से हटाओ, इनके आधीन मत हो यह तुझे नष्ट करेंगें तथा परम सुख का भी नाश करेंगें।

बडे बडे वीर मन के सामने भटक जाते हैं। यह तो तलवार की धार है। विषयों के वेग को कोई विरला वीर ही रोक पाता है। वही संत है वही स्वामीजी की तरह हज़ारों में से एक हो सकता है। कहते हैं

वीरन ह्ंज़ यि वथ्य त्रावबा कथकथ्य।......
गूव्यंद् ज़िंद् मरुन, करन् अपोर तरुन,
बननुय न्यश अहंकार स्यठा द्वरलब छुय। ग,अ,भ 73,1

अर्थात–बातें करना छोड जीवित मरना तो वीरों का पथ है। करने से पार हो जाना तथा अहंकार शून्य होना अत्यंत दुशवार है।....

मन ही तो इस जगत का कारण है। इस को रास करने के लिए ही कितने ही आडंबर रचे गए है। चार धाम की यात्रा करो, तीर्थों की यात्रा करो, यज्ञ रचो, किताबें पढो आदि। मगर मन तो इन स्थानों पर साथ ही है। मन के कारण संसार और संसार के कारण सुख दुख होता है। इसीलिए मन के सारे राग द्वेष अहंकार तथा सुख दुख सारी मनोवृत्तियां ही है। मन को रास करना ही हमारा ध्येय है।

छ़ारमो वन ज़ेनबा मन बन मनसूर गोव्यंदो।

मन –स्वामीजी मन को चित्त रूपी घोडा बताते हैं कि यह सदा सर्वदा भागता ही रहता है यह चित्त रूपी घोडा अत्यंत बलवान और शक्ति शाली है–

च्यत् गुरिस्य का'त्या छि ज़ो वावस ति ब्रोंठ द्राव तुज्न दोर।
पोशन ना छुस कमज़ोर र'टिथ ट्कन ट्कन दिम। ग,अ,भ 174,1

अर्थात मेरा चित्त रूपी घोडा बडा ही बलवान है। हे मेरे गुरुदेव मैं इस को नियंत्रन में नहीं ला सकता हूं कृपा करके इसे स्वयं तुरंत पकड लीजिए।

च्यत्ह फुरना बेहनावतम, न्यशकलय छुय चे'ह नाव। ग,अ,भ 68,1

अर्थ– हे प्रभु, आप निष्कल हो, इसलिए मेरी चित फुरना को रोकें।

मन की दो विशेष प्राकृतिक ताकतें हैं, 1 सोचने की तथा 2 शक्ल या तस्सवुर करने की शक्ति। ज्यों ही हम किसी वस्तु के बारे में सोचते हैं तुरंत मन उसकी तस्वीर बना लेता है। हम मन की इन्हीं विशेषताओं को आत्म चिंतन में काम में लाते हैं। वह यह कि हम सोच को नाम जपने

और धारणा बनाने की शक्ति को गुरु की मूरत के द्वारा काम में लाते हैं। तमाम संतों तथा फकीरों ने गुरु के दर्शन की बहुत प्रशंसा की है, क्योंकि गुरु की देहिक सूरत के दर्शन से धारणा (impression) में बहुत सहायता मिलती है। अभ्यासी को इनके दर्शन से अंतःकरण में आकर्षण होता है और मन को शांति मिलती है। गुरु की सूरत से प्रेम करने का अर्थ यह है कि बार बार गुरु का ही विचार आकर विरह की सी बेचेनी हो जाए। जिस शक्ति के कारण गुरु से प्यार करते हैं, वह शब्द की ही ताकत होती है। अभ्यासी और गुरुमुख कभी किसी के शरीर से प्रेम नहीं करते हैं। गुरु की सूरत शब्द की होती है और शब्द ही से परमीश्वर में विलय होता है इसी लिए सद्‌गुरु का प्रेम अभ्यासी को अपनी ओर खेंच लेता है। गुरु के प्रति प्रेम प्रभु प्रेम ही होता है जो हर अभ्यासी तथा सत्संगी के अंदर शब्द के मिलाप के लिए तडप पैदा करती है। यहां धारणा का अर्थ है गुरु के बारे में सोचना ऐसा कि वह प्रत्यक्ष हमारे सामने खडे हैं और हम उन की सानिध्य में ही काम कर रहे हैं। इसलिए अभ्यासी सब से पहले गुरु की सूरत का ध्यान करते हैं।

गुरु ध्यान कर............कन थाव वज़न छुय नाद ब्यंद।

यह नाद दाएं कान की ओर से होता है कभी ऐसा भी होता है कि नाद बाएं ओर से सुनाई देता है जो धोखा हो सकता है इसलिए उस धोखे को ठीक करने के लिए पांच नाम का स्मरण करना चाहिए। पांच नाम संतों ने गुप्त रखे हैं, वैसे तो ओमकार का नाम लेना चाहिए तो शब्द दाई और सुनाई देकर ठीक हो जाता है।

शमस तबरेज़ कहते हैं :–

खामोश पंच नौबत बिशनो अज़ आसमाने ।
कां आसमां बीरूं जां हफतो शश आमद ।

अर्थः खमोशी के साथ आसमान की पांच नोबतें या धुनें सुन; वह आसमान हमारे इन सात आसमानों और छः चकरों के परे है।

शरीर संरचना तथा मन व्यक्ति शरीर के तीन अंग हैं स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर या अंतःकरण ।

1 स्थूल शरीर बाहर से दिखाई देता है, 2 सूक्षम शरीर अंदर से पूरे शरीर को नियंत्रित करता है; 3 तीसरा है अन्तःकरण जिसको योग भाषा

में चित्त कहते हैं, ''चेतति अनेन इति चित्तम्। यह तीन होते हैं,'' चित्त को भी अंतःकरण के साथ रखा जाता है अथवा अन्तःकरण के तीन अंग हैं।

बुद्धि, अहंकार तथा मन। बुद्धि पूरे शरीर के अस्तित्व अर्थात ''हूं'' की अनुभूति कराती है। इसमें सतोगुण की प्रधानता रहती है। जब ''मैं पन'' का भाव आ जाता है कि मैं अमुक व्यक्ति हूं, तो अहंकार है। इस में तमोगुण प्रधान रहता हैं।

मन क्या है अहंकार के बाद चित्त में जो इच्छा होती है ''मनः संकल्प साधना'' अर्थात जिस में संकल्प विकल्प आते हैं वही मन कहा जा सकता है। इस में रजोगण प्रधान रहता है। मन की इच्छा पूर्ति आनंद के लिए होती है। इंद्रियां ही इसकी तृप्ति का साधन है। **सत, रज, तम तीन गुणों की साम्य अवस्था का नाम प्रकृति है।** प्रकृति को ही चित्त कहते हैं। बुद्धि अहंकार की सहायता से ही कार्य करती है। इंद्रियों के संचालन में मन प्रमुख है, मन के संचालन में अहंकार और अहंकार के संचालन में बुद्धि प्रमुख या नियामक है। चित्त भी प्रकृति का परिणाम है अतः जड है। एकाग्रता के समय विशुद्ध या साफ रहता है। अतः ध्येय वस्तु चित्त में प्रतिबिंम्बित हो कर अपना जैसा बना देती है। अर्थात उस समय ध्येय वस्तु के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की सत्ता चित्त में नहीं रहती।

किंतु **तीन ताप** भी तो हैं जो जीव को किसी न किसी प्रकार से उलझाये रखते हैं। इन्ही तापों से रक्षा करने के लिए गुरु की सहायता मांगी जाती है। जगत में जन्म लेकर जीव तापों से ग्रस्त है जो उसके जन्म के साथ ही होते हैं जिन को झेलते हुए प्रायः सारा जीवन बीत जाता है और वास्तविकता से पिछड जाता है। यह संताप या दुख तीन प्रकार के होते हैं–

1 आधिदैविकः जो भाग्य में साथ आया हो। अर्थात जो कर्म मनुष्य ने आज तक किए हुए होते हैं उनका भोग भोगना। इनमें पिछले जन्म में किए हुए कर्म भोग भी सम्मिलित होते हैं क्यिोंकि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है और फल भोगने में विवश है चाहे किए हुए कर्म अच्छे हों या बुरे।

2 आधिभौतिक या शरीर संबंधित सुख दुख बीमारी, अमर्ष या हस्द, राग द्वेष आदि।

3 आध्यात्मिक: जीव को आत्मा अर्थात अपने निज रूप प्राप्त करने में जो दूरी पडती है और समय लगता है अथवा मिल के भी नहीं मिलता। यह प्राप्त न होने या कमी होने का दुख है। यही भव रोग है जिसको ठीक करने हेतु स्वामी जी माता से प्रार्थना करते हैं कि:–

भव रूगस्य ब'लराव वो'न्य, ज्ञनान् अमरे'थ चाव वो'न्य।
मो'कलाव वो'न्य रछ तल परन, मातायि वैखो'रियै शरण। ग,अ,भ 1,5

स्वामी जी अपने गुरु दयाल से दीनता पूर्ण प्रार्थना करते हुए उनसे दया का दान मांगते है कि हे परम पिता! संसार के तीन तापों अथवा दुखों से हमारी रक्षा कीजिए। आप दीन बंधु तो हैं।

म्यानि दातो कर दया मे छुय दया स्यंदय चे'ह नाव।
त्रे'न तापन निश मे'ह रछतम, शीतलय छुय चे'ह नाव।।
आ'दीनन हंज़ शरम रछ दीनबंधय छुय चे नाव।। ग,अ,भ 68,1

यहां यह बताना आवश्यक है कि यह सारे दुख केवल मनोविकार हैं। वास्तव में आत्मा इनसे न्यारा है। आप और हम ने कई महापुरुषों को देखा है जो निर्वस्त्र, बीमार, ज़खमी, भूखे होते हुए भी इस की ओर बेपरवाह रहते हैं। स्वामीजी तो सारी आयु अंत तक मधुमेय से ग्रस्त थे न तो उन्होंने इसके लिए कोई दवाई ले ली और न ही किसी से कभी इस की शिकायत ही की। संत तुलसीदास वर्षों तक बीमार रहे थे किंतु उफ तक न की। यह सारे लोग जो सदा निज रूप में रहते हैं तीनों प्रकार के तापों से ग्रस्त होते हुए भी सामान्य व्यवहार ही करते हैं। कहने का अर्थ है कि सुख दुख आदि मनोविकार हैं। इसीलिए इन मनोविकारों पर नियंत्रण पाने के लिए संत हमें कठिन या लंबे रास्ते के स्थान पर साधना का छोटा रास्ता बताते हैं। वह है मनोनिग्रह, जिसके लिए कृपालू और समर्थ सदगुरु ही नैया के खिवैया हैं, उनके समझाए पथ पर अडिग चल कर तीनों तापों से मुक्ति पाई जा सकती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं।

कशमीर शैवमत के अनुसार भी तीन मल है [41] मनके अन्दर छिपे मल मन को नीचे ही ले जाते हैं। अर्थात संसार और इसके माया जाल की ओर ही खेंचता रहता है। यही वह साधन है जिसके द्वारा आप विचार

बनाते हैं। कोई भी विचार जैसे मैं यह कर रहा हूं, मैंने यह किया है। यह मन का काम है। बुद्धि निर्णय करती है। मनः संकल्प साधना 'The Secret Supreme' by Swami Laxman Ji 1/6 The means by which you creat thoughts, any thought, i.e. I am going there, I have done this, that, is the action of Manus.

1. **कार्ममल** या स्थूलमल, इसका संबंध कर्म से है जैसे मैं प्रसन्न, बीमार, कर्मवान, नसीब वाला, बडा, धनाड्य आदि हूं। यह कर्म का मल शुभाशुभ वासना है।

2. **मायामल** या अविद्या सूक्षम मल है। यह मनुष्य के चित्त में विद्यमान होता है। यह विचार कि यह मेरा शरीर, मकान, मित्र, शत्रु या पत्नि है, द्वैत भावना उत्पन्न करता है। इसको भिन्नाविद्याप्रथा कहते हैं। यही मायामल है जिससे शिव एक से अनेक दिखाई देता है।

3. **आणवमल** है जो अति सूक्षम या परा मल है। विशेष आंतरिक मल। यद्यपि मनुष्य शिव के समीप पहुंचता तो है किंतु उसको पकडने में असमर्थ है और यह पूर्ण होने की शक्ति तुरंत क्षीण हो जाती है। यह क्षीण होने की क्रिया आणवमल के कारण है। यह कि मेरे में यह कमी है इसी अपूर्णता का भाव उत्पन्न करता है और पूर्ण होने की अभिलाषा उत्पन्न करता है। मनुष्य में आनवमल तथा मायामल कार्यरत्त नहीं हैं यह केवल आभास मात्र हैं जो केवल अनुभव में आते हैं। केवल कार्ममल ही क्रियाशील है।

स्वामीजी अपने भजनों में मन के किसी भी ऐसे मैल को प्रकाश के दर्शन से समाप्त होना बताते हैं।

मल हो दज़ियो तीज़कि श्रानय, शव्द कर मन बरफानय गछ।....

ग,अ,भ

अर्थात स्वामीजी ने साधक को स्वयं ही साधना करके पूर्णता प्राप्त करने का आवाहन किया है। उस अवाक अवर्चनी अवस्था को स्वयं अनुभव करना है कोई कुछ नहीं बताए गा। इन्हों ने स्वयं के अनुभव को ही प्राथमिकता दी है। यही बात शैवदर्शन में भी कही गई है कि किसी सत्य को स्वयं अनुभव करके उसकी सत्यता को परखना साधक की विशेषता होनी चाहिए न कि किसी के कहे या सुने सुनाए ज्ञान के आधार पर सच्चाई को निर्धारित करना।

इसी कारण स्वामी जी ने अंतःकरणों की शुद्धि पर ज़ोर दिया है। जिसका अर्थ है मन की निर्मलता, बुद्धि की सात्विकता, चित्त की समावस्था। और कहा है–

अहंकारस कर लुरपार्‌य सार वस्तु ज़ान,
पान चोनुय श्वद्ध त् कोमल न्यरामयिय रोज़। ग,अ,भ 109,1

अर्थात अपने अहंकार को समाप्त करके सार वस्तु को जान ले, क्योंकि तेरा रूप तो शुद्ध स्वरूप तथा निरामय है।

यहां अहंकार का अर्थ भौतिक अहंकार या मैं शरीर हूं एसा सोचकर व्यवहार करने से है दूसरे शब्दों में इसे घमंड कहते हैं। इसलिए साधना मार्ग में आते ही इस दुशमन को निर्मूल 'लुरपार' करना चाहिए। कोई अच्छा कर्म करने पर ज्ञानी हो जाने पर, सिद्धियां आने पर, अवैद्य रूप से धनार्जन, शारीरिक शक्ति आदि कई अन्य कारणों से अहंकार आजाता जाता है। एक बार अहंकार ने मन में स्थान पा लिया तो समझो नाश का द्वार खुल गया। समय की ही प्रतीक्षा है।

अहंकार का उदाहरण : भक्ति की नज़ाकत या संवेदनशीलता का एक ही उदाहरण से प्रायः काम चलेगा। ऐसा मेरा अनुमान है। पहला पक्ष अलौकिक या असाधारण प्रेम का है जो श्रीकृष्णजी तथा राधा महारानी का आपसी प्रेम है। इनका प्रेम सत्य निष्ठ है, विशुद्ध है। दूसरा सकाम प्रेम है।

विशुद्ध प्रेम है जहां प्रेमिका और प्रेमी नाम मात्र दो होते हैं। उनका अस्तित्व एक दूसरे में पूर्णतः लय हुआ होता हैं। यह प्रेम की पराकाष्ठा है जिस को समझना अति दुर्लभ है, हमारे लिए यही बात अपनाने की आवश्यकता है कि ऐसी ही छटपटाहट अपने प्रभु अर्थात गुरु के प्रति होना चाहिए।

तो स्वामी जी स्थान स्थान पर इसी चिरंतन सत्य को हमारे सामने अनमोल मोतियों की सूरत में लाते है कि इस सूक्षम प्रेम की स्थिति वह है जहां केवल प्रेम ही शेष रह जाता है। राधा विशुद्ध प्रेम की प्रतीक हैं।

यही प्रेम राधा है, यही प्रेम स्वामी है : यही सब कुछ है। जहां डर को देखकर भयभीत हुआ शिशु मां के गोद में ही सिमट जाता है। वह मां में ही विलय हो जाता है। यही प्रेम का मर्म है। अब दूसरे पक्ष

का ध्यान करें कि उपर्युक्त प्रेम की ऐसी सूक्षम दशा को प्राप्त हो कर भी कितनी सावधानी बरतनी पडती है। कि कहीं ज़रा भर भी अहंकार न आने पाए। रास लीला के समय गोपियां विशुद्ध प्रेम से ज़रा सी हटकर सकाम हो गईं तो श्री कृष्ण रास मंडल से अदृश्य हो गए। यह तो उन प्रेम में डूबी गोपियों के लिए नीले आकाश से बिजली गिरने के समान था। राधा तो प्राण प्यारी है वह तो श्रीकृष्ण के संग हैं। श्री कृष्ण मेरे ही है केवल, तभी तो रास मंडल में सब गोपियों को छोड कर मुझे साथ रख लिया है। मैं नाचने से बहुत थक गई हूं क्यों न श्रीकृष्ण मुझे कंधे पर बिठा कर आगे चलें। अहंकार का अंकुर फूटा केवल विचार में, वह भी क्षणभर के लिए। तो राधाजी को भी इस ज़रा सी चूक के कारण विरह की वह सज़ा मिली जिस से राधाजी का रोम रोम दग्ध हुआ लगता है। जब राधा में अहंकार का अभाव हो गया तभी उसके गर्म दूध पीने से श्रीकृष्ण के पैरों पर छाले पड गए, तथा श्रीकृष्णजी के साथ भी ऐसा ही हुआ।

स्वामीजी ने **राधा कृष्ण प्रेम** को प्रेम का नमोना या आदर्श माना है। अपनी रचनाओं में भगवत प्रेम की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति राधाकृष्ण के रूप में की हैः– अपने आराध्य के प्रति अगाध प्रेम होना अनिवार्य है। प्रेम के समझने के लिए हृदय की आवश्यकता होती है। प्रभु जब श्रीकृष्ण के रूप में संसार में प्रगट हुए। उनकी इस बात को जानने वाले देवियां देवता, वेद की रिचायें गूप गोपियों का रूप धारण करके गोकुल वृन्दावन में आ गए। इन प्रमियों के दो प्रकार थे एक जो निष्काम भाव से श्रीकृष्ण को भगवान जान कर श्रीकृष्ण की लीला देखते हुए प्रेम करते थे। दूसरे प्रकार की गोपियां सकाम गोपियां थी। जिनका आविर्भाव वेद की रिचाओं से हुआ था। वे प्रभु की महत्ता को नहीं पहचानती थीं। श्रीकृष्णजी से वे अत्यंत प्रेम तो करती थीं किंतु भगवत भाव से नहीं। निष्काम तथा भगवत भावना की दृष्टि से प्रेम करने वाली दूसरी गोपियां श्रीकृष्ण जी के लिए ही अपने को अर्पित थीं। वे अपने प्रेमी के विरह की अग्नि में दग्ध होती छाती को ठंडा करने के लिए श्रीकृष्णजी के चरण कमल अपने सीने से लगाती थी किंतु बहुत ही आहिस्ता ताकि उनके चरण कमलों को कोई कष्ट न हो। अर्थात अपना कष्ट भूल कर ध्यान रखती थीं कि भगवान को कोई कष्ट न पहुंचे। सारांश यह कि स्वामीजी की कविताओं में चरित्रों द्वारा मानसिक दशा का चित्रण, अति मार्मिक तथा सुचारु डंग से किया गया है। राधा, भक्ति का जीवंत उदाहरण है। रास

लीला में प्रेम की पराकष्ठा को दर्शाया गया है। (स्वामीरामजी को सोते समय खटमल लड रहे थे तो स्वामी महताब काक उनको सारी रात अपनी छाती पर सुलाते रहते थे)।

तो बात साफ हो जाती है कि साधना में घमंड करने की ज़रा सी भी गुंजाइश नहीं है। इसी लिए स्वामीजी अहंकार को समूल नष्ट करने को प्राथमिकता देते हैं। गुरु चूंकि शब्द का ही रूप होता है इस लिए बदन से प्यार के बदले शब्द से ही नाता जोडना चाहिए। गुरु मूरत का दर्शन करने से अंतःकरण में आकर्षण तथा धारणा में बहुत सहायता मिलती है।

जब मन में हर समय गुरु शब्द ही व्याप्त हो तो उन्हीं की शरणता में रहकर गुरु द्वार खोलता है। स्वामीजी का इसी बात पर काफी ज़ोर है कि अपने मन को विकारों तथा वासनाओं से फेर कर अपने काबू या नियंत्रन में रखने का हर समय प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि मन ही मनुष्य को उलझाये रखने का खेल खेलता है। चाहे गेरवा वस्त्र पहनो, जंगलों में घूमो, तीर्थों में जल मग्न हो, महीनों वृत धारण करो, दान दक्षणा करो, चंद्रायन चबाव, मगर मन तो विकार लेकर इन स्थानों पर मनुष्य के साथ जाता है। जब तक मन पर नियंत्रन न हो, बाहर के आडंबरों से ज़रा भी अन्तर नहीं पडता है। अपितु शरीर को व्यर्थ में कष्ट उठाना पडता है। इसलिए मन को शुद्ध करके मन को अपना हितैषी बनाना श्रेयस्कर है।

ज़ोन यिमव पान् सान सोरुय हरे सहज़ भाव प्रोवुख मरे।
घरे दय लोंबुख तिमय गय साध्य, याद्य कर पान् पननुय स्वरूप।

ग,अ,भ 22,1

अर्थात जिन्होंने स्वयंके समेत सारा हर रूप ही मान लिया वही सहज भाव को प्राप्त हुए और वे ही वास्तविक साधु हैं जिन्हों ने अपने घर में ही परमीश्वर को पालिया। अपने निज रूप में आकर चित्त्स को एकाग्र करके तमाशा देखो कि क्या होता है। गुरु के शरण में आने से इस मन का भी समाधान निकलता है।

तो मन में एक ही विचार प्रधान हुआ। मन 42 काबू होने पर इसके विकार, राग जिस का रूप काम ,मोह, लोभ, है तथा द्वेष, जिका रूप क्रोध है, तथा जो दुःख का कारण है इनकी जगह शील, सत्य और श्रद्धा लेते हैं। विकारों को हम पर काबू पाने का मोका ही नहीं आएगा। एक

ओर से मन में घुस जाएगें तो सामने गुरु को देखकर दूसरी ओर भाग जाएगें। कोई बात जब मन के अंदर घर कर जाए तो कर्म बन जाता है। जिस का फल भोगना पडता है। जब इसे अंदर विकार को बैठने ही न दिया जाए तो कर्म कैसा? शुद्ध चित्त में जब ध्येय वस्तु ही प्रधान रहे तो फिर विकारों के लिए चित्त में स्थान ही नहीं बचेगा। ऐसी आदत, पडने पर यह दुख दायक विकार हमारी ओर भटकेंगे ही नहीं। इन सब प्रयासों में शनै शनै अपने अभ्यास तथा वैराग्य का योगदान चाहिए। जिस मंदिर में जीव ईश्वर का यह सारा नाटक चल रहा है तनिक उसकी अर्थात मनुष्य शरीर की रचना की ओर ध्यान देते हैं–

शरीर की भौतिक रचना तथा बिंदु सिंधु

हमारा शरीर परमीश्वर की रचना का एक अनोखा नमोना है। भौतक तोर यह हर प्रकार से संपूर्ण है। इस के अंदर स्वचालित प्रणाली है। जैसे श्वासोश्वास की प्रणाली, रक्त, पाचन, मलमूत्र निष्कासन, प्रजलन प्रणाली, ह्रदय संबंधित प्रणाली, तंतु प्रणाली (nervous system) तथा लिंफ प्रणाली आदि मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त अस्थियां, कोशिकाएं, बाल, तंतु आदि भी इस में सम्मिलित हैं। हर प्रणाली के साथ अपने अवयव 'organs' जुडे है जो अति सुचारु ढंग से काम करते हैं जैसे गुर्दे, फेफडे, मस्तिष्क, लमस, उदर आदि, तथा नव द्वार भी हैं जिनमें गुदा, जिनेन्द्रिय, नेत्र, कान, मुंह, नाक आदि, और कर्म की दृष्टि से पांच ज्ञान इन्द्रियां जैसे त्वचा, कान, घ्राण, जीह्वा तथा नेत्र आदि पांच कर्म इन्द्रियां जैसे हाथ, पांव, जीह्वा, गुदा तथा जिनेंद्रिय।

संसार में हर जीवित शरीर के तीन गुणकर्म होते हैं। खाना, खाकर बढना, अपना जैसा बीज बनाना। यहां तक सारे जीव एक जैसे हैं। सारे जीव प्रकृति के नियमों के अनुसार चलते हैं। मानो यह प्रकृति का ही काम कर रहे हैं। प्रजलन के लिए प्रणय क्रीडा समय पर, यदि अपच हो तो कदापि कुछ नहीं खाना आदि। किंतु मनुष्य विवेक के कारण इन से अलग हो जाता है। वह है बुद्धि में विवेक की शक्ति। पशु अपने बचाव के लिए ही आक्रमण करता है तथा आक्रमणकारी का अंत भी कर सकता है न कि उसकी समस्त जाति का समहार ही करेगा। पशु केवल भोगता है साधना नहीं कर सकता है। मनुष्य कर्मभोग भी भोगता है तथा आगे की ओर बहुत दूर तक सोच भी सकता है। वह कल्याण कारी हो सकता

है तथा पशुवृत्ति से शत्रु की समस्त जाति का विनाश भी कर सकता है। इसलिए मनुष्य सब जीवों में खतरनाक परभक्षी जीव है। किंतु कल्याण की दृष्टि से वह अपना तथा दूसरों का भी कल्याण कर सकने की पूरी शक्ति तथा क्षमता रखता है। इसलिए मनुष्य शरीर को उत्तम कहा गया है। उत्तम भाव रख सकने के कारण यह मनुष्य उत्तम है यदि नहीं तो वह मनुष्य नहीं। यहां पर मनुष्य की ही बात हो रही है अमानुष की नहीं।

मनुष्य की सामान्य विशेषता यह है कि वह नए अच्छे या बुरे कर्म करके अपने खाते में जोड़ कर संचित कर सकता है विशेषकर साधना के लिए इसका स्वछंद प्रयोग कर सकता है। स्वामीजी का कहना है– कि मनुष्य को तीन चीजें बड़ी कठिनता से मिलती है। 1. मनुष्य शरीर 2. सद्गुरू 3. अध्यात्म के लिये भूख। उनका कहना है –

दीवन ति दुर्लब छु मनुष्य शरीर,
युथ दीह प्रा'विथ स्वरिव ना सु दय। गअभ72,1

अर्थ– देवताओं को भी मनुष्य शरीर मिलना बहुत ही दुर्लभ है। यह उत्तम मनुष्य शरीर बडी कठिनता से मिलता है। इसलिए वास्तविकता को पहचानो और संसार रूपी दुख सागर से पार हो जाओ।

शरीर रचना के सूक्षम पहलू पर ज़रा ध्यान करें कि मनुष्य के एक बार के प्रजलन के समय 80 से 90 लाख की संख्या में बीज (sperms शुक्रानु) गर्भाषय में प्रवेश करते हैं। यह शुक्रानु मैंडक के अंडे से निकले हुए छोटे बच्चे के लगभग जैसे होते हैं। इतने छोटे कि सूई की नोक पर हज़ारों की संख्या में टिक सकते है। शुक्राणु बनने तक अंड कोष में इसे पांच प्रक्रियाओं से गुज़रना पडता है, इसके अंदर केन्द्रक Nucleus होता है। इनकी लंबी दुम भी होती है जिनके लहराने से इन में गतिशीलता आती है तथा बडे वेग के साथ मासिक धर्म से निवृत होकर स्त्री के गर्भाषय में बने खूनी अंडे को तलाश करते हुए उस अंडे तक पहुंच जाते हैं। जो जीवानु पहले पहुंच गया तो यही केवल एक शुक्राणु तुरंत अंडे में प्रवेश करता है और अपने मुंह में रखे रस को उगल देता है कि अंडे के साथ छूते ही इस की दीवार सख्त होकर दूसरे शुक्रानों के लिए अभेद्य हो जाती है। यह क्रिया अल्पमात्र समय में हो जाती है तथा गर्भाषय अंदर से बंद हो जाता है। इस प्रक्रिया का ज्ञान न पुरुष को होता है न स्त्री को। गर्भादान (fertilization) की इस प्रक्रिया के साथ ही इस पिंड

'अर्धनारीश्वर' का तोडफोड या बढना आरंभ होता है। दूसरे शुक्रानु sperm अपना यत्न त्यागकर उसका ही भोजन बनते हैं जब तक अंडाषय (ovary) द्वारा मां के साथ जोड स्थापित हो जाता है और इस पिंड के इर्दगिर्द प्रदिक्षण लगाकर उसके भाग्य को मानो सराहना करते स्तुति करते हैं कि हम लाखों में से केवल तुझे ही मनुष्य का महान तथा साधनात्मक देव दुर्लभ शरीर मिल गया है। आवागवन के चक्र से छूटने का मोका मिल गया है। मां में भी तुरंत कुछ तबदीलियां आती हैं। मां इसके बढने में वातावर्ण तथा पौषठता प्रधान करती है। बाहरी तथा आंतरिक वातावर्ण [44] का इस पिंड पर प्रभाव पडता है तथा इसको महसूस करता है तथा प्रतिक्रिया भी करता है। कहने का अर्थ यह है कि इस सूक्षम शुक्राणु का ज्ञान इस के केंद्रक (nucleus) में इसी प्रकार अंकित होता है जिस प्रकार गणक पत्री (computer chip) या गणक चक्री (Computer Disc) में सूक्षम चुम्बकीय तरंगों के रूप में वांछित जानकारी अंकित होती है। यह गर्भाषय में इसी कॅमांड या निर्देश के अनुसार प्रगति करता है, अर्थात यही जीवाणु पूर्ण होता है हर प्रकार से। शल्य चिकित्सा से यदि जीवानु के भीतर जाकर इस का विशलेषण किया जाए तो तरल पदार्थ के सिवा कुछ नहीं मिलेगा। फिर भी इस में इतनी काफी जानकारी समेटने की क्षमता है। अब देखिए कि इतने सूक्षमाति सूक्षम जीव में पिछला अगला सारा ज्ञान निहित रखने की क्षमता होती है जैसे कि इस को मनुष्य का आकार लेना है या वयसक होने पर शरीर की ऊंचाई, चौडाई, बनावट, रंग, बाल, स्वभाव आदि का निर्धारण करना। शरीर के अंदर के अवयवों या organs को ठीक ढंग से बनाने का लेखा जोखा रखना, प्रतिरोधक क्षमता आदि बचाव का कार्यक्रम बनाना, अपने जैसा बीज बनाना, कौशिकाओं को तोडना तथा इन को हर समय नियंत्रित करना, नहीं तो कौशिकाएं बेहिसाब बडेंगीं जैसे कैंसर की कौशिका अनियंत्रित होकर घातक बनती है। आंतरिक मरमत आदि इतनी जटिल प्रक्रिया को किसी गल्ती के बिना कार्यान्वित करना होता है। बोलने की शक्ति प्रदान करना, फिर सूक्षम भाव के लिए दिमाग या बुद्धि बनाना तथा बुद्धि का काम चलाने के लिए मन तैयार करना आदि, स्वपन जागृत तथा सुषप्ति अवस्थाओं को नियमित करना, छोटे से शरीर के एक अंश के अंदर स्वपनों का विशाल संसार का निर्माण करना आदि और सूक्षम कार्यक्रम समेटना जिनका मनुष्य को स्वयं भी ज्ञान नहीं होता। अर्थात अब निर्माण में पूर्ण मनुष्य बन गया यह प्राणी अब हाथ का

अंगूठा रखने के कारण तथा बोलने की असीम क्षमता प्राप्त होने के कारण दूसरे प्राणियों से भिन्न हो गया किंतु इस को बनाने वाला गौण हो गया और पांच विरोधी तत्वों वायु, जल आदि से विशेष अनुपात में बनकर तैयार हुआ, कितना सादा, किसी भी विकार से विहीन। इसलिए यह अनु परिपूर्ण है अर्थात बिंदु ही में सिंधु समाया हुआ है। बाहर से इसको कोई चीज़ इसमें समाहित नहीं की गई। इसलिए यह संकुचित सिंधु ही बिंदु है तथा पूर्णता को प्राप्त करने के लिए अर्थात सिंधु के साथ मिलने के लिए यह जीव ललायित रहता है। भिन्नता नाम मात्र की ही दिखाई गई है। इस शरीर की कुछ सीमाएं भी हैं जिस से इसे अपूर्णता का आभास होता है जो 'मैं' से अंहकार 'मै' में आ गया। अंन्यथा यह भी सिंधु ही है। इस बारे में स्वामी जीकी अभिव्यक्ति देखिए।

हाव भाव रूप तय नाव, वरज़िथ रूप तय नाव,
यिय ब्यंद हय तिय स्यंद हय गोव्यंद हय नो'न द्राव। .....
स्यंद् मंज़य ब्यंद्‌य द्राव यि सा'रिय माननय,

गोव्यंदो खाल कांह यि मानि ब्यंद् मंज़य स्यंध द्राव। ग,अ,भ 145,1
पानय कुलुय सोरुय फो'लुय, सपद्योव मूल् सलाह हू।
गोव्यंद छो'पह कर तस मुचरन बर सुय वुछि आश्चर लीला हू।
ग,अ,भ 160,1

अर्थात जो बिंदु है वही सिंधु है इसलिए इसी बात का अनवेषण करने पर आप को विदित होगा कि आप तो गोविंद का ही रूप हो। यही अपना रूप पहचानना मनुष्य का लक्ष्य होता है। सारे यह मान लेंगें कि सिंधु से बिंदु निकलता है किंतु कोई विरला ही यह बात मानेगा कि बिंदु से सिंधु निकलता है। जिस प्रकार वृक्ष में बीज है तथा उस बीज में वृक्ष छिपा है। उसी प्रकार जीव की हर कोशिका में पूर्णतयः नया जीवन छिपा है और बीज वृक्ष है तथा वृक्ष बीज है। इस की गहराई को जो जानता है वही इस आश्चर्य युक्त लीला को देख सकता है और समझ सकता है।

शरीर की कोशिका का गणक के साथ तुलना– गणक (computer) में जिस प्रकार गणक चकरी (CD) होती है जितनी जानकारी उसमें भरना चाहेंगे एक सीमा तक भर सकते है, यह जानकारी कभी किसी समय इशारा करके सामने आजाएगी। यही काम अन्तःकरण रूपी गणक चकरी का है। अपने अंदर रखी समस्त जानकारी

के अनुसार चित्त में बिंब बनाकर इसे काम में लाता है। अन्तर केवल इतना है कि कम्प्यूटर अर्थात गणक में जानकारी सीमित होती है और मनुष्य की कोशिका में असीम, समस्त ब्रहमाण्ड की जानकारी रहती है। गणक अपनी इच्छा से कुछ भी गटा बढा नहीं सकता केवल चालक ही ऐसा कर सकता है। मनुष्य के मस्तिष्क ब्रह्मांड जितना गणक है। जिसका केवल चार से छः प्रतिशत ही काम में लाया जाता है। इस की हर कोशिका में पूर्ण जानकारी होती है, इसमें निर्देश तथा जानकारी का इतना घ्नत्व (compactness) होता है कि यदि मनुष्य की मस्तिष्क की एक कोशिका गणक में समाहित कर दी जा सकती हो तो गणक सारे ब्रहमांड का सारा लेखा जोखा हमारे सामने प्रस्तुत करेगा। मनुष्य का कर्म इसके अंतःकरण में जानकारी के तोर पर जमा होता रहता है। शरीर से बाहर संसार की इस जानकारी को केंद्र तक ले जाने के लिए शरीर में लगे मुख्य्य सूक्षम बनावट के अवयव या organs काम करते हैं जिन में मुख्यतः आंख कान तथा जिह्वा है। यह तीनों हर समय क्रिया शील रहते हैं। शेष इंद्रियां उपयुक्त वातावर्ण पाकर क्रियाशील होती हैं। इन्हींको स्वामीजी ने एक स्थान पर केंन्द्रित करने को तीन बंद बंद करना कहा है अर्थात इनको बंदिश में लाकर अभ्यास करने का प्रावधान है। पहली बंदिश है आंखों की बंदिश। दूसरी कान तथा तीसरी जिह्वा या ज़बान की बंदिश। स्वामीजी का यही निर्देश है।

आंखों का महत्वः– आंख का मुख्य काम देखने का है। इनके बिना देखने की क्रिया असंभव है। नेत्रहीन [46] बाहर की दुनिया को देख नहीं सकते इसलिए सपना भी नहीं देखते। क्योंकि सपना आंखों के अंदर दृश्यों की ही पुनरावृत्ति है।

अधिकांश संतों ने आंखों को आध्यात्मिक साधना या अभ्यास के प्रस्थान बिन्दु या बेस प्वाइंट अथवा आधार बिंदु माना है। राधास्वामी मत में आंखके तिल, ज्योति बिंदु को आत्मा का स्थान माना गया है। आंखें संसार को बाहर से देखती हैं। साधक जब आंखों को उलट कर भ्रूमध्य या आज्ञाचक्र जिसे त्रिकूटी कहते हैं, दृष्टि को केंद्रभूत करके ध्यान लगाता है तो ब्रह्म की सूक्ष्म झलक प्राप्त करता है। अब जिस की आंखें प्रभु ने नहीं दिए हैं, क्या वह अध्यात्म का भागीदार नहीं हो सकता? वास्त्व में शब्द ही परमात्मा रूप है इसी का अनुसरण करने से नेत्र हीन को भी आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त हो जाती है।

दय नो दूर सु छु जायि जायि मंज़ वुछ।
युथ छु नज़दीक अ'छन्य बायि मुज़ वुछ। ग,अ,भ 51,1

अर्थात प्रभु दूर नहीं है इतना निकट है कि आंखों में देख सकते हो।

दयि स्ंज़ि वति अ'छिवृय सृत्य पकुन, यि छु भ'खत्यन कुनुय इशार हय।
ग,अ,भ 52,1

अर्थात प्रभु के पथ पर आंखों से चलना भक्तों के लिए संकेत है।

आंख–देखने से सामान्यत एक कैमरा जैसा दिखाई देती है जो दिन रात कार्यरत रहती है। आंख वह अत्यंत संवेदनशील अवयव है जिके द्वारा अंदर वाला मन बाहर के संसार को देखकर इसके साथ तादातम्य स्थापित करता है। यह वह माध्यम है जो बाहर से संसार के किसी वस्तु को देख कर अंदर से इसी वस्तु को परख लेती है। जैसे बच्चा अपने माता पिता को जान कर पहचान लेता है।

आंखें संसारिक दृश्यों का चित्र अपने में जमा रखतें है जो अभ्यास के समय सामने आकर ऐकाग्रता में बाधा डालते हैं। अच्छा यही है कि आंखों को उलट कर अर्थात अंदर की ओर मोड दें जिस से दृश्यों की मात्रा कम हो कर एकाग्रता में सहायता मिल सकती हो। जिस प्रकार दर्पण के सामने रखी वस्तु का प्रतिबिंब दर्पण के पीछे उतना ही दूर है जितना दूर इसके सामने रखी हुई वह वस्तु है। यही बात आंख में भी है, किंतु आंख तीन आयामी अर्थात तीन ओर से देखती है जिस से सामने की वस्तु ठीक रूप में देखी जा सकती है। इसका यह अर्थ हुआ कि दूर तथा निक्ट देखने से आंखों के अंदर वह सारा दृश्य विद्यमान है जिसको हम साधारणतयः जान भी नहीं सकते हैं कि देखा है। जैसे जब हम ध्यान में देखते हैं तो अंतरदृष्टि में तारों से आगे का हाल भी मालूम हो जाता है कि तारों का अंत जहां है उसके आगे केवल खाली काला अंधेरा है उसके आगे आश्चर्य जनक रंग का प्रकाश है, आदि। इस अनंत कोटि दूर दृश्यों के देखने के स्थान पर यदि सदगुरु का रूप ही का आभास दिखाई दे तो आंख का काम साधना की दृष्टि से सफल हुआ। सत्य तो यह है कि **परमीश्वर** या अपनी समिष्टि को इन्हीं आंखों द्वारा झांकता है।

कानः कान की बनावट शंख की सी है जो एक भूलभलैया से कम नहीं है। यह बाहरी ध्वनि को सुनता है ध्वनि के चोट से कान के अंदर कुछ

कोशिकाएं हिलती हैं जिस से कंपन पैदा होता है इस से तरंगें उत्पन्न होती हैं जो केन्द्र तक जाकर अनुवादित होती हैं और सुनने वाला ध्वनि के आशय को समझ लेता है और तद्रूप प्रतिक्रिया करता है। दूसरे प्रकार का शब्द अंदर से सुनाई देता है जिसमें घंटा शंख आदि बजते सुनाई देता है। यह अनहद शब्द पहले से ही अंदर तब मौजूद था जब यह शुक्राणु के रूप में था। कानों से गुरु मंत्र को ध्यानसे सुनने की प्रक्रिया से अंदर के शब्द या अनहद नाद सुनने में लग जाने से मन ध्यान में लग जाता है।

ज़बान या जीह्वाः इसका कर्म है बोलना। यह हर समय प्रकट से तथा अंदर से भी बोलती रहती है तथा अंदर से बाहर से तथा हर समय बोलने को उत्सुक्त रहती है। सदगुरु का नाम जाप या जो उन्होंने जपने के लिए मंत्र दिया हो निरंतर जपने से तीनों अर्थात आंख कान तथा ज़बान एक ही लक्ष्य की ओर केन्द्रित हो जाती हैं। इसी का अभ्यास करना **तीनबंद** कहलाता है। इन की अपनी वृत्तियां होती हैं जैसे–

ध्यान चकोर : आंख की वृत्ति चंचल है। दोनों आंखों के बीच मैं ब्रूमध्य स्थान की ओर टिकटिकी **लगाकर** देखने से इसकी चंचलता रुकती है। उसी प्रकार जिस तरह चकोरी रात के समय चांद को एक टक देखती है। चकोरी एक टक रहने वाली आंख की वृत्ति है। इस की विशेषता है कि वह रात को चांद को एक टक देखती रहती है इस प्रकार आंख का चंचलपना दूर होता है और चित्त का निरोध या रोकना–होने लगता है। दृष्टि का यह साधन ध्यान कहलाता है। यह पहली बंदिश या बंद कहलाता है ।

स्मरण– तोताः–यह चित्त की वृत्ति जीहवा या ज़बान के द्वारा चंचल हो जाती है। आदमी बातों के द्वारा संसार मैं फंसता रहता है। अगर वह जबान को बंद रखे तो आपदा का शिकार हो जाए, नहीं बोला तो मारा जाए। इस वृत्ति को अजपाजाप मैं लगान से वह बाहर टें टें नहीं करती अपितु अंतरमुखी होकर मस्त रहती है तथा नाम का स्मरण करती रहती है। अन्यथा इधर उधर भटके गी। दिल ही दिल नाम का जाप करने में जीह्वा व्यस्त रहती है। इस की वजह से इस की मैल दूर हो जाती है। यह स्मरण कहलाता है। यह दूसरी बंदिश है।

भजनः—कान— यह काग वृत्ति कान की वृत्ति है। मनुष्य कान से सुन कर संसार के झमेले मैं फंसता है। जो सुना उस को मन मैं उतार लिया तथा सुनने की वजह से उस के अंदर वासनाओं के संस्कार आदि जाग उठते हैं और वह चंचल चित्त हो जाता है। उस को नियंत्रित करने की विधि यह है कि उस को आंतरिकः आवाज मैं लगा लिया और वह उस को बराबर सुनता रहे तब इस वृत्ति में स्वयं ही परिवर्तन आता रहेगा। यह एकाग्रता मन को आंतरिक रंग देने के योग्य बन जाती है। इसे तीसरा बंध लगाना कहते हैं। इस को भजन कहते हैं। यह आरम्भिक तीन आवश्यक बंदिशें हैं। जो यह तीन बंद 43 लगाने का कार्य आरंभ करेगा वह धीरे धीरे योग साधना का अधिकारी हो जाएगा। जब मन नियंत्रण में आजाए तो आगे रास्ता साफ है। अब उपर्युक्त मान्यताओं या सिद्धांतों का स्वामी जी की कविताओं के परिपेक्ष में कुछ नमूने प्रस्तुत करते हैं। स्वामीजी कहते हैं:—

सम रस पिया है जिसने मसरूर उसी को समझो।। ग,अ,भ 26,2

तथा

दयि संज़ि वति अछव्य स़्त्य पकुन
यि छु संतन कुनुय इशार हय। ग,अ,भ 52,1

तथा

जय निरंजन...त्रेय बंद बंद कर ताम सुन्दरो।
बंदगी कर सुब्ह श्यामसुन्दरो। ग,अ,भ 142,1

जब आंख कान तथा ज़बान एक केंद्र में आते हैं तो यह तीनों आपस में मिल कर सुनने देखने का काम करते हैं।

कन अ'छन तृ अ'छ कनन्य तथ जायि छिय बनन्य,
करन् सृतिय ननन्य चृते कमा'विथ्य रोज़। ग,अ,भ 113 1

स्वामीजी **स्वधर्म की पालना के पक्षधर** थे। उनका कहना है कि स्वधर्म की पालना करते हुए मन को तराशने की क्रिया आरंभ करनी चाहिए। क्यिों कि जब तक बच्चा विवेकशील स्तर तक पहुंचता है तब तक उस की बुद्धि पर सूक्षम तथा स्थायी प्रभाव पड चुका होता है। जिस का प्रभाव धर्म बदलने के बाद भी रहता है, इस प्रभाव का उसको पता भी नहीं लगता तथा अनायास ही दुविधा का शिकार हो जाता है। स्वामीजी कहते है—

पननिस स्वधर्मस प्यठ द'रिज़े, परधर्म त्राव नरुक छुय,
थो'द व्वथ ज्ञान न्यथ्र मुच़रिज़े। ग,अ,भ...,3

अर्थ–अपने धर्म पर डटे रह । साहस करके ज्ञान नेत्र खोल कर देख और पर धर्म को नरक का द्वार जान कर त्याग दो।

स्वधर्मस प्यठ मर, भ्रम मिटाव, टाव तुल्यंतन ति मूर्ख मुर्खन यि स्वभाव।

अर्थ– मुर्ख कुछ भी कहें किंतु हर हाल में स्वधर्म पर मर मिटना चाहिए तथा स्वधर्म का अनुसरण करने का अनुरोध करते हुए स्वामीजी बताते हैं कि पर धर्म मत अपनाओ, यह बहुत ही हानि कारक होता है। हे प्रभु पर धर्म आवागवन में फंसाता है। मैं अपने प्रभु पर तो न्योछावर हूं।

स्वधर्मस प्यठ गछ़ि मरुन, पर धर्म दूर गछ़ि करुन।
टाठि मत छ्'नतम अतस त गतस, पान वंदस त'स्य पत् बो' मतस।
गअभ 43,2

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।

अर्थ अपने धर्म को देखकर तू भय करने को योग्य नहीं है। गीता 2,31

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोत किल्विषम। गीता 18,47

अर्थ अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। क्योंकि स्वभावसे नियत किए हुए स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता।।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। 3,35 गीता

अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से, गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

- धर्म बदलने से परमात्मा नहीं मिलता है। हर धर्म के भक्तों ने उसे पाया है। वास्तविक महत्व तो भक्ति, प्रेम और पामात्मा से मिलने की तीव्र इच्छा का है, धर्मों के बाहरी रीति रिवाज का नहीं। 'संत समागम' संत सावलसिंह जी पृष्ठ 156
- हा च़्यता कव् लो'गुय पर मस .... ललद्यद

स्वधर्म की आध्यात्मिक व्याख्या

स्वधर्म गव केंह न करुन, स्वधर्म छुय ज़िंदय मरुन।
स्वधर्मस मंज़ अभाव च्यतस। पान वंदस त'स्य पत् बो' मतस।।
स्वधर्म छु स्वप्रकाश्य। पर धर्म करवुन छु नाश्य।
टाठि थवतम पन्निस सतस।। पान वंदस त'स्य पत् बो' मतस।।

गअभ 43,2

अर्थात संक्षिप्त में कह सकते हैं कि आत्मा का धर्म है सदा आनंद में रह कर निर्बन्धन रहना न कि शरीर के कार्य में फंसना निष्पक्ष भाव से कर्म करते रहना जो कि शरीर का धर्म है। पर धर्म का यहां अर्थ है किसी और की कोई क्रिया ज़ो नियम बद्ध तरीके से हो रही हो उस को अपनाना और अपनी क्रिया छोड कर या भूलकर दूसरे की क्रिया में उलझ जाना, जैसे आत्मा का धर्म है निज रूप में ठहरना और मन का काम है चंचल रह कर भटकते रहना। जब आत्मा अपना धर्म भूल कर मन का संग करके उसी में उलझा रहे तो भयावह दशा सामने आती है जिस से छुटकारा मिलना कठिन होता है। इसी प्रकार अपने धर्म को त्याग कर दूसरे के धर्म को धारण करना हानि कारक होता है। स्वधर्म की पालना, निः अहंकार होना, अपने आप को याद करते रहना, वासना जाल टूटना आदि उपलब्धियां प्राप्त करना कोई सहज काम नहीं, अति दुर्लभ हैं। इन कठिनाईयों का सामना करते हुए लक्ष्य को प्राप्त करना तो वीरों का काम है।

इसी तथ्य को उजागर करते हुए श्री जानकी नाथ सरमली के नाम खत में व्यक्त अनुभव देखिए:–

सहज़ भाव अति दुर्लभ है। ..

जान् म्यानि अनामस वातुन निज धामस। .....
गोव्यन्द्‌ह ज़िंद्‌ह मरुन, करन् अपोर तरुन।
बननुय न्यश अहंकार, स्यठा..। ग,अ,भ 74,1

अर्थ– मेरी जान 'जानकी नाथ'! सहज भाव, निजधाम, अनाम प्राप्त करना तथा अहंकार त्याग कर कर्तृ भाव से भी परे होना बहुत कठिन है।

अपने आप को पहचानना तथा इस का स्वयं अनुभव करना ही सहज ज्ञान है। जब तक इस विचार में परिपक्वता नहीं आती, तब तक हर

सांस में, घडी घडी आत्म चिंतन करना पडता है। इस प्रक्रिया को स्थिर रखने के लिए हर समय सावधान रहना पडता है, जो बहुत ही कठिन है। इसलिए संत निर्विकार ब्रह्म तक पहुंचने के लिए सगुण नाम का सहारा लेते हैं। **पहले पडाव में ''मैं वह हूं''** दृढ करना पडता है। इस पर करार करना कठिन तो है ही, वासनाओं का जाल काटना इससे भी कठिन है। कहने की बात कुछ और है करने की और, हर घडी सतर्क रहना पडता है। बातें छोड कर तथा वीर बन कर सत स्थान पर पहुंचा जा सकता है। **दूसरे पडाव में ''यह सारा संसार ''मैं ही हूं''** दृढ करके द्वैत भाव को समाप्त करता है। **तीसरे भाव में केवल ''मैं''** रहता है, इस को प्राप्त करना अति कठिन है। इन सारी कठिनाईयों को गुरु की कृपा से ही पार किया जा सकता है। जिस गुरु धाम को पाना भी दुष्कर है।

जिस प्रकार छोटा बालक अपनी मां को ही सर्व व्याधियों से बचाने वाली मानता है। कितनी भी घटा घंघोर छा जाए किंतु बच्चा अपनी मां को ही सर्वशक्तिमान तथा त्राता मानकर उस पर पूर्ण विश्वास रखता है। किसी भीड में अपनी मां को ही तलाश करता है। इसी प्राकार अपने गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा तथा विश्वास होना अनिवार्य है। अपने गुरु के प्रति अगाध प्रेम तथा भक्ति ही इन कठिनाईयों का समाधान है। अहंकार पर नियंत्रण करके पूर्ण परिवर्तन का होना ही ज़िन्दा मरना कहलाता है जो मनुष्य को अकर्तृ भाव में लाता है। अर्थात काम में करतापन का भाव त्याग देना। सारांश यह कि अपने गुरु के प्रति यही भावना मन को स्थिर करता है और यही एकाग्रता साधक को आगे नए मंज़िलों में पहुंचाता है। स्वामीजी **गुरु** के प्रति ऐसी विलक्षण भावना को अजपा जाप कहते हैं।

स्वामीजी अजपाजप की क्रिया पर बल देते थे– अजपाजप साधना की सरल विधि है। संत मत में इसका दृष्टिकोण साफ है। मनुष्य जीने से मरने तक सांस लेता है। जिस प्रकार श्वासोश्वास की क्रिया जाने अनजाने सदा प्रवाहित रहती है, इसी श्वास–प्रश्वास के साथ संबद्ध अजपा क्रिया भी वैसे ही जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति सभी अवस्थाओं में समान रूप से चलती रहती है। अजपा जाप मनुष्य शरीर में परमसत्ता की क्रिया की प्रतिछाया ही है। वस्तुतः यह स्वभाव की साधना है। जब ब्रह्म निर्गुण है, फिर इसे कैसे जपा जाए? उसके स्मरण के लिए किस

नाम की कल्पना की जाए। पातंजलि ने ब्रह्म को निर्गुण मानते हुए भी ओमकार को उसका वाचक माना है और उसी का जाप करते हुए परमीश्वर का सूक्षम आदेश दिया है, कि ओमकार [49] ही ब्रह्म का वाचक है। यहां जप बहिर्मुख न होकर अंतरमुख हो जाता है। निर्गुण भक्तिधारा में अनाम ब्रह्म का जप बर्हिमुखी होना कठिन है। तो जप अंतर्मुख हो जाता है। अजपाजाप शब्द का अर्थ है, बिना जप के जप की क्रिया। माला पर तो संख्या की जाती है। संख्या का ब्रह्म में क्या महत्व है। यह तो बाहरी अपादान है। इसलिए अजपाजप में माला की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इस बारे में चित्त की अंतर्वृति की एकाग्रता के कारण तल्लीनता इस सीमा तक पहुंच जाती है कि साधक अपने आपको भूलकर मंत्रमय हो जाता है। अर्थ यह हुआ कि जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है तब वही ध्यान समाधि हो जाता है।

स्वामीजी के सरल शब्दों में

महा मंत्र ओमृय ज़ान, ग्यवुन सूहमृय ज़ान, ग,अ,भ 77,1

अर्थ.. ओम को महामंत्र जानो और सोहमसो का गान करना सीखो।

ओमकार त्रिशूल लोयनम छ़लयं, दिह अभिमानस चो'टनम कलय।
दुय जामृ छे'न्य तृ गय न्यथ ननी, निस्त्रेय गुणी शीवस कर पूज़।
ग,अ,भ 48,3

अर्थ– ओमकार रूपी त्रिशूल मारकर उसने मुझे निःअहंकार कर दिया जिस से मेरा द्वैत का वेष उतर गया और मैं नंगा हो गया, अर्थात अद्वैत हो गया जो हम पहले से ही थे और मैं शरीर हूं यह वेष तो उतर गया। आत्मा पर शरीर का वेष चढा हुआ था जब अपने आप को पहचान लिया तो शरीर का भाव समाप्त हुआ और आत्मा का साक्षातकार हो गया। ललद्यद के नंगा होकर नाचने का भी यही अर्थ है।

बयकदम ओम वुछुम अलख, अगम दीशस दो'पनम पख। ग,अ,भ 14,1

मुझे तुरंत ओम का साक्षातकार कराके अगम देश की ओर प्रस्थान करने को कहा।

तथा

ग्वरृ व्य'ज़ि ओम ओम स्वरनृ सृत्य परदृ व'थ्य। ग,अ,भ 44,1

अर्थ– गुरुविधि के अनुसार ओम का जाप करने से सारे पर्दे उठ गए। तथा

अ'स्य आयि शरणे पूज़ा करने ज़ा'निथ च़्येय ओमकार छिय। ग,अ,भ 1,1

अर्थ–आपको ओमकार रूप जानकर हम शरणागत हो कर आप की पूजा करने आए हैं।

काव्य शक्ति तथा स्वामीजी के भजन– स्वामीजी के भजनों को इनके शिष्य तो सत्संग में पढते हैं किंतु सामान्य लोग भी जब यह भजन सुनते या पढते हैं तो वे भी प्रभावित हो कर मनुष्यता के पथ पर चलने को तत्पर हो जाते हैं तथा वे आनंद का पूरा पूरा स्वाद लेते हैं। इनमें हर प्रकार के लोग आकर लाभ उठा सकते हैं। यह भजन हर अवस्था के लोगों की पिपासा को शांत कर सकते हैं, पूर्ण निरक्षर भी तथा उच्चतम स्तर तक पढा लिखा मनुष्य भी।

काव्य द्वारा उपदेश वेद पुराण के उपदेश से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि **वेद केवल आदेश है**। यह आदेश सातुकी को ही प्रभावित करता है राजसी और तामसी को नहीं । **पुराणों का आदेश** मित्रों के समान है, जो राजसी स्वभाव वाले को तुरन्त प्रभावित करता है किंतु तामसी को नहीं। परन्तु काव्योपदेश की यह विशेषता है कि वह तामस अधिकारी को भी प्रभावित करता है। इसी प्रभाव के कारण वह कर्तव्य पथ पर आरूढ हो जाता हैं तथा निषिद्ध मार्गसे निवृत्त हो जाता है। इसी सत्य को महा कवि श्री नीलकंठजी ने संस्कृत शब्दावली से शोभित करते हुए कहा है,

व्यामोहयन्ती विविधैर्वचोभिर्व्या वर्तयन्य कला स दृष्टिम ।
कालं महान्तम क्षणवन्नयन्ती कांतेव दक्षा कविता धिनोति।

भाग्यवान द्वारा रचित भजन की काव्य प्रभावोत्पादकता को देखिए। भजन गाने से स्वामीजी ने उनका बनाया हुआ शाल स्वीकार किया। यह है कविता का प्रभाव कि वे भक्त के सामने बेबस हो जाते थे।

स्वामीजी के भजनों की काव्यगत विशेषताऐ।

- स्वामीजी के भजन ह्दय से निकली हुए हैं तथा सारी रचनाए लगभग गेय हैं।
- हर गीत किसी न किसी राग में ढल जाता है।

- भजनों में कहीं चार चार पदों वाले कई भाग हैं और कहीं पर तीन पदों के पश्चात चौथे पद की पुनरावृत्ति होती है।
- चंद उर्दू भजनों को छोड कर शेष सारे भजन कशमीरी भाषा में रचे गए है।

स्वामीजी के भजनों की भाषा सरल तथा सारगर्भित है अपितु कहीं कहीं संस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया गया है। प्रायः इसलिए कि आध्यात्मिक भावों को प्रकट करने के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग करना अनिवार्य हो जाता है। जिस से भाषा गंभीर हो जाती है। जैसे अस्ति भांति प्रेय, अपरोक्ष, मानसअगोचर, सूहमसू, आदि। कुछ दूसरे सोफी संतों ने भी अध्यात्मिक पडावों का कहीं कहीं इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है जैसे नारायण, शिव, ओमकार, गणेष, तीज़, वर आदि। इन्हों ने सारे अध्यात्मिक धाराओं का समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। स्वामीजी ने कटर पंथ का कहीं साथ नहीं दिया है। स्वामीजी की कविता ह्रदय से निकली, ह्रदय पर चोट करती है।

1 स्वामीजी के भजनों में कहीं कहीं अलंकारों की छटा

दृष्टिगोचर होती है। उपमा द्वारा कविता की सुन्दरता प्रस्तुत है।

रोशि रोशि यिखना रोशि मते, कम पोश लागय पंपोशि मते
ह्रदयुक पंपोश पूज़ि लागय। गो'ड दिमय मानसरके नागय।
आगय च्यय वुछिथ बो तोशि मते। कम ...। ग,अ,भ 12,1

2 अर्थात घड़ी घड़ी रूठने वाले मेरे प्रियतम अर्थात ईश्वर, आओ में रंगारंग पुष्पों से तेरी पूजा करूंगा।

3 च़्यन्तायि त्राव यकबार युथ नरक्नार छा स',
च़्यन्तायि कति शे'हजार, सार संसार छा स'। गअभ170,1

अर्थ– ज़रा स्वयं विचार करो कि संसार असार है....। सारी चिंताएं त्याग दो इसकी बराबरी नरक की अग्नि भी नहीं कर सकती है।

स्वामीजी ने उपमाओं का सुंदर प्रयोग किया है।

4 पंपोशिय छिय मंदछन्य वुछिथ चा'निय पंपोशि तन्य,
म्वख फो'लवुन पंपोश ज़न्य, शिवनाथय पंपोशि ग्वंद्यो। ग,अ,भ 12,1

5 अर्थात– तेरी कमल रूपी काया के सामने तो कमल के फूल शरमा रहे हैं।

6 कुछ भजन बडे ही मार्मिक है तथा ह्रदय को छूते है।

टास ये'स्य आव त'स्य अकिस आव नत् सदा बूज़ सारिव्य।

टास् स्त्यन क्या छु सपदन शिकारस वनितवे।
कदरि सेहत क्या छु आसन बेमारस वनितवे। ग,अ,भ 61,1

अर्थ– जिस को गोली लग जाए वही जानता है कि दर्द क्या होता है। स्वास्थ्य का मूल्य बीमार से पूछो।

लखति जिगर यस रावन, दिल कतरावन बा'लिये।
होशे मतिन्य मो'त बनावन। ग,अ,भ 175,2

अर्थ जिस का बच्चा मरता है वही उस दुःख को जानता है।

दज़िय यि दीह कथ छुख ख्वशिय, यावुन त् बे'यि ल्वकचार जुवो, सोरिय त् अनिय मा गशिय, का'ल्य हो नशिय संसार जुवो।

ग,अ,भ143,1

भजन अभ्यास की प्रक्रिया के अनुरूप ढल गए हैं

7 निर्गुण भक्ति– स्वामीजी का रचा हुआ प्रत्येक भजन निर्गुण भक्ति पर समाप्त होता है। भजनों में उनका केवल अपना ही अनुभव वयक्त होता है। पुस्तकें पढने से, या संगत में बैठकर सीखने से बहुत से लोग आध्यात्मिक प्रवचन दे सकते हैं या कविता लिख सकते हैं किंतु उन आध्यात्मिक पडावों में से गुज़रकर अनुभव प्राप्त करके उसकी अभिव्यक्ति करना कुछ और बात है। स्वामीजी का यह पद देखें,

केंह कुतुब केंह गोस कें अबदा'ली, भोवनय तिय चे़ दया'ली बोज़।
केंच़व बनिथ वो'न केंच़व खयाली। आलव द्युत पन्न्य मा'ली बोज़। ....।
ग,अ,भ 141,1

अर्थात कुछ कुतुब है कुछ गौस ओर कुछ अबदाली है दयाल ने आपको यह बता दिया। कोई लोग अनुभव की बात करते है और वही बात कुछ केवल कल्पना से बताते हैं।

8 संत कथा में दोहों में पांच सारयुक्त कहानियां दर्शाई गई हैं।

9 कविता द्वारा मित्रता का आवाहन

तोहि रे'ष पुत्र्य मुच़राव ने'त्र्य मित्र् ज़ान ओमकार संदरो। गअभ153,1

10 उर्दू भाषा में कविताएं 23 के लगभग रची गई हैं। सारी कविताएं सार गर्भित हैं। इन की उर्दू रचनाएं भी सुन्दर तथा रोचक हैं।

मुनतज़िर हैं हम तेरे दीदार को, आओ बुलबुल खुश करो गुलज़ार को।
कर शफा ऐ शाफिए मुतलक है तू, दर्दे फुरकत दूर कर बीमार को।
सब यहां सोए कोई बेदार नहीं, दे खबर असरार की हुशियार को।
सीना बिरयां दिल जलाया हिजर ने, इससे बढकर कब जलन है नार को।
ग,अ,भ 37,2

मन को जीतने का आनंद कैसा होता है? ज़रा देखें–

जिसको कहते हैं हिंदू परम आत्मा वह हम ही हैं ।
कुतबो कुरान जिस को कहते हैं खुदा वह हम ही हैं।
कुल है कुल में और कुल से जुदा वह हमही हैं। ग,अ,भ 98, 2

11. कशमीरी भाषा के प्रति प्रेम स्वामीजी की उर्दू रचनाओं के अध्ययन से साफ तोर से ध्यान में आता है कि वे उर्दू में कविता करने में भी परांगत थे। फिर भी मातृ भाषा का ही प्रयोग करके उसे सम्मान दिया। श्रीनगर में रहकर भी श्रीनगर की भाषा का इन के भजनों पर कहीं कोई छाप नहीं दिखाई पडती है। यह कशमीरी भाषा के प्रति उनके अथाह प्रेम को दर्शाता है।

स्वामीजी की समस्त रचनाओं का वर्गीकरण

स्वामीजी की सारी रचनाओं को यदि ध्यान से देखा जाए तो आज तक छपी हुई पुस्तकों में अभ्यास के क्रम से छपवाई नहीं लगती हैं। अर्थात अभ्यास की अवस्थाओं के अनुसार, पहले बचपन में फिर जवानी में और फिर परिपक्कव अवस्था में रचे गए भजन हैं। ऐसा करना संभव भी नहीं था। इनको न्यूनाधिक निमन्न लिखित श्रेणियों में रखा जा सकता है।

1 याचना, 2 अभ्यास, 3 ज्ञान लीला, 4 किसी सत्य के प्रतिपादन के लिए की गई रचना, 5 कुछ संत कथाएं, 6 कुछ उक्तियां। 7 अन्य प्रकार, 8 करामातें तथा चमत्कार

1 याचना में शक्ति माता के विभिन्न रूपों की आराधना की गई है। अक्तूबर 1947 ई में कशमीर पर पाकिस्तानी आक्रमण के समय शारिका माता की 'राग्न्यब्रारी' के रूप में आराधना की गई है। कुछ पद प्रस्तुत हैं:–

1(क) शरण आमृत्य अ'स्य लोल् ह'त्य छिय लागोय पोश चा़र्य चा़'र्ये ।
लगयय पम्पोश पादन चान्यन, बोजयि मा'ज्य रान्य ब्रा'रिये ।
ये'लि ये'लि धर्म्‌च गय ग्ला'नी त्यलि आयख अवता'रीये ।
अनाथन हन्ज़ रक्षाका'री असरन हन्ज़ समहा'रीये।। ग,अ,भ 2,1

अर्थात हम प्रेम से आप के शरण में आए हैं तथा आपके चरणों को पुष्पांजली अर्पण कर रहे हैं। हे माता! जब जब धर्म की ग्लानि हुई है तब तब आपने अनाथों की रक्षा हेतु अवतार लिया और असुरों का समहार किया।

भजन को ध्यान से पढ़कर ज्ञात होता है कि आदि शक्ति माता स्वरूपा को गाय़त्रि, सावित्रि, सरस्वती, अम्बा उमा, दुर्गा ओमकार नामों से संबोधित करके उनसे परित्राण की याचना की गई है। इस में शक्ति माता का सगुण तथा निर्गुण रूप से स्मरण किया गया है। पाकिस्तानियों की मारो मारी को देखते हुए एक भक्त, रघुनाथ मन्दिर के निवासी, जानकी नाथ स्वरमली ने स्वामीजी को इस बारे में लिखा था कि मृत्यु से सहमे हुए लोग भाग रहें हैं क्या किया जाए? उस समय कशमीर का भारत के साथ विलय नहीं हुआ था। उत्तर में तुरंत स्वामीजी ने लोगों के लिए सांत्वना भरा पत्र लिख कर भेजा– किः–

1(ख)

भगवान् सुन्द इंतिज़ाम चो़'पा'र्य, यस रछि राम तस आराम चो़'पा'र्य।
जान माल्यो रोज़ मोजस प्यठ, युथ न् तोशख लशकरि फोजस प्यठ,
श्री सतसिर्याकाल बोज़ सत्नाम चो़'पा'र्य।
सारिन्य गछि़ चोन तसला द्युन ग,अ,भ 164,2 .....

अर्थात, प्यारे जानकी नाथ, फोज के आक्रमण से मत डर कि वह जीत जाएंगे। भगवान का हर ओर बचाव का प्रबंध है। सत सिर्याकाल सत्नाम की गूंज चारों ओर सुन रहा हूं। यह आवागवन रुक जाएगा। इसी बात से स्वामीजी की शक्ति का अनुमान लगता है। दूसरी ओर रानिब्रा'री माता को संबोधित भजन में विनति की,

चऱनन तुंहद्यन लगव पा'र्य पा'यी, मा'ज्य रानि ब्रा'रिय हा'रिये।
ज़गतस मंज़ तुज स्यठा खा'री, मो'कलाव वो'न्य करत् या'रिये।
अ'स्य गाट्ल्य छिय या चा'र्य फया'री, माज्य रानि ...। ग,अ,भ 3,1

इसी प्राकार कुछ भजन श्रीगणेषजी, माता राणिब्रा'री, सरस्वति, शिव आदि को संबोधित किए गए हैं। वैखुरी माता तथा भगवान शिव की

लीलाएं ऊंचाई को दर्शाती हैं, इसलिए बाद की लिखी गई लीला लगती है। फिर गुरु स्तुति के भजन हैं जिन में अधिकतर गुरु वंदना ही है। हर एक भजन प्रेम से ओत प्रोत है तथा इन में अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को ध्यान में रखा गया है। कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं:–

बालपान प्यठ् म्य क'रमृच़ न्यंदरो, हाव बाल चंदरा प्रत्यक्ष रूप।
बाल चंद्र चोवथस निरामय म्वय। नाम रूप त्रा'विथ सोरूय छु दय
ग,अ,भ 11,2

अर्थात, बाल्काल से सोया हूं, हे बालचंद्र दर्शन दीजिए तथा हे गणेष आपने मुझे निरामय रस पिलाया। नाम रूप से परे वही प्रभु हैं।

एक भक्त के अनुरोध पर उन्हें दी गई बाद की लीला है। देखें–

1(ग) सा'रिय नमो नमः करन मातायि वैख्वरिये शरण ।
दाता च् सारिच चे'य परण, मातायि वैख्वरिये शरण ।
यस चा'न्य दया अनुग्रह बनन, सतशब्द तसतस गव कनन।
तिय छुम ननन ध्यान्‌य धरन। मातायि वैख्वरिये शरण ।
त'म्यसन्दी च़ानारब्यंद, हृदयस मंज़ हे'थ छुय गोविंद ।
ओमकार ब्यंद ज़ा'निथ स्वरन, मातायि वैखोरिये शरण। ग,अ,भ 6,1

अर्थात हे वैखुरी माता, सब आपको प्रणाम करते हैं, हम आपकी शरण में हैं, हे दात्री ....ज्रिस पर आपकी दया तथा अनुग्रह हो उसी के कान सत शब्द को सुन पाते हैं। इस बात का साक्षात्कार मुझे ध्यान में हो रहा है। गोविंद आप के चरणाविंद को हृदय में ओमकार बिंदु के रूप में धारण करके स्मरण कर रहा है।

भगवान शिव को समर्पित भजन भी दास भाव के ही भजन हैं :–
शिव लगयो शिव नावस शंकर शो'क्ल् स्वंदरो। ग,अ,भ 10,1
किंतु बाद के भजन में शिव भाव देखें–

1(घ) शिव जुव ज़ान पनुन कर च्यथ ईकागरत्,
ब्ययि केंह मत् करत् ज़िंद् मरत् दित् समाध।
को'रमुत क्रोवमुत स्वो'रमुत म'शरत् ..
मुच़रिथ ज्ञान न्यथ्‌र करत् पान याद ।
करनस न करनस वुछना योत करत्। ब्ययि..। ग,अ,भ 90, 3

अर्थात अपने आत्मा को शिव जानो, चित्त को एकाग्र कर के ज़िंदा मर कर समाध में लीन हो जाओ, और कुछ करो या न करो, अकर्तृ भाव से क्रिया को होते देखो ।

महादेव, महाभैरव, ईश्वर, परमशिव आदि नामों की आराधना वाले भजन बहुत ही रसीले हैं।

आह्मो रोगे रोगे, जोगे मति मस्तानय। ग,अ,भ 11,1

अर्थ– हे मस्त जोगी आप धीरे से मेरे पास आगए।

तथा इसी प्रकार भक्त को भगवान की सेवा के सिवा क्या चाहिए, भक्ति रस से ओत प्रोत इस विनम्र भाव के भजन का निरीक्षण करें,

1(च) मोल मा'ज्य सोरुय च़् म्योन्य शुर्य भाशन दाद दिम।
नाद लायय लोल् सान्य ओर् फीरिथ वाद दिम।.....
नय मंगय ये'रिलूख परिलूख, नय वैक्वंठ म्वखती,
जन्म् ज़न्म् चा'न्य भक्ति सीव् पननिय पाद दिम।... ग,अ,भ 71,1

अर्थ– आप मेरे मातापिता हो मेरी तोतली भाषा का आशय समझो, तथा मेरी पुकार का उत्तर दो।.......मुझे किसी वस्तु की कोई भी चाहत नहीं, ना वैकुंठ, ना यह लोक, ना ही परिलोक न ही मुक्ति। केवल जन्म जन्म में आपका ही चरण सेवक बनकर भक्ति करूं ।

1(छ) भगवान से गिले शिकवे करना तो भक्त का अधिकार है, नहीं तो भक्त दुख झेलने में असमर्थ हो जाता है। भाव विह्वलता का भजन देखें,

दि दर्शुन भक्तिवत्सलो, वलो लगयो मे' लोल हो आम ।
हतो बो मरय अद्‌ह फेरिय, मे' नो ज़ांह चोन यि शर नेरिय,
करख या'रिय त् कर जलो। वलो–। आदि आदि । ग,अ,भ 69;1

अर्थात, हे भक्तवत्सल, दर्शन देदो अन्यथा मिलन की चाह लेकर मर जाऊंगा, और तुझे भी हाथ मलना पडेगा। यदि अनुग्रह करना है तो शीध्रता से करो। मेरे मरने के पश्चात आने का क्या लाभ?

1(ज) वियोग में प्रेमी के प्रेम में भाव विभोर होने की अभिव्यक्ति देखें,
गो'छुय या चे'ति गछुन म्योन हिव, ननिय त्यलि क्या करन सोन जुव।
च़् दर्शुन द्यव बुहो बलो, वलो लगयो मे'ह लोल हो आम।
मुलूक् मंज़् द्रास बो फटिथ, छ़्ना वो'न्य वन जाम् च़'टिथ।
खटिथ मो रोज़ दयो दलो। वलो लगयो मे'ह लोल हो आम। ग,अ,भ 69,1

मुझे स्वामीजी के मुखारबिंद से एक और भजन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जो उन्होंने अति मधुर वाणी में गुनगुनाया था, मानो कशमीर के शांत सघन वन में मंद मंद गति से वायु ऊंचे देवदारों तथा कायरू को छूते हुए नुकेले पत्तों के बीच चीरती हुई निकल कर सरसराहट उत्पन्न कर रही हो तथा सामने ऊंचे पहाड इस वाणी को प्रतिध्वनित कर रहे हों। स्वामीजी की मधुर लयात्मक वाणी एक और सुनना तथा वनपोह के दूर तक फैले भेदज़ारों पर चिपके हुए अनगिनत 'हरदरोछ' झींगरू का नि.3, ध.3, नि.3, ध.3 का मधुर स्वर उनके स्वर में स्वर मिलाते हुए दूसरी ओर मकान के सामने पेडों पर बैठी मधुर राग गाती हुई कोयलों की आकर्षक गोविंदगू वाणी वातावर्ण को गंभींर, आनंदमय तथा शोभायमान करते हुए मेरे कानों में अमृत रस घोल रहे थे। भजन यह था,

श्री भगवानो लायय लोलह नादा, राधास्वामी लोल हय आम। ......
ज़िरात ब्यूठ छुम त्रावुस कादा, पो'खत् बनि दान् दान् रोज़्यस न् खाम।
अनुग्रह चानि सृत्य बनि सु आबादा.. राधा.। .... ग,अ,भ 49,1

अर्थात हे भगवान तेरे प्यार में छटपटा रहा हूं, प्यार से आपको बुला रहा हूं। हे राधास्वामी (परमीश्वर का एक नाम) आपका प्रेम उमड पडा है। मेरी खेती बेकार हो गई है, इस को उपजाऊ बनाने में सहायता कीजिए ताकि इस का हर दाना पक जाए।

स्वामीजी अपने गुरुमहाराज की विभिन्न रूपों में महिमा गाकर आराधना करते हुए विनती के गीत गाते है।

पूर कर अनुग्रह दूर कर पाप, माफ कर सा'रिय ही दयालो ।
चानि वो'मेज़ प्यठ त्रा'विथ छि डाफ, छुख ना च् आ'री ही दयालो।
ग,अ,भ 67,1

अर्थात हे दयालो! पूरा अनुग्रह करके पाप हर लो। आप तो दयावान हैं इस लिए हम आप की ही आषा पर निर्भर होकर पडे हैं।

2–**दूसरी** श्रेणी के भजन उपदेश, निर्देश तथा **अभ्यास** की कृतियां हैं जिन्हें अधिकतर गोविंद तथा अपने एक भक्त श्यामसुंदर को संबोधित करके कही गई हैं।

श्यामस्वंदरह श्यामलाल् लाल् मालन लगय...। गअभ 27,1
सूहम फो'क् नारि फो'ख दिन् नार तेज़न तय,
होशिकि का'न्ट् वीद् परमानव छुम तोलन तय।

सत्संग श्रद्धायि कहवचि प्यठ छुम वुछन तय।
ज्ञान नार विवेक् अभ्यास् सृत्य छुम पयन तय।......
स्वन् छु कुनुय ब्यो'न ब्यो'न नाव् भूषन तय....वन तय..... ग,अ,भ 59,1

अर्थ– सुनार का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यह सुनार सूहम रूपी नल से फूक मारता है जिस से मेरी अग्नि तेज़ होती है। जागरूकता के कांटे से तोलता है। फिर सत्संग और श्रद्धा के सान पर परख लेता है। इसके बाद ज्ञान रूपी आग से तपा कर विवेक और अभ्यास से शुद्ध बनाता है। परंतु एक ही सोना अलग अलग भूषणों का रूप धारण कराता है।

इन में से एक लीला सूफियाना तरज़ में रेडियो कशमीर से प्रसारित हुई थी...

तंबला'विथ च़ो' लुम यार, बे आर हय वे'सिये।।
वखतस हय मदार दमस्य सृत्य नमस्कार,
दम ये'लि न् त्ये'ल् न् कांह यार, एतिबार हय वेसिये। ग,अ,भ 57,1

अर्थात, मेरा निर्दय यार मुझे छोडकर चला गया। समय बलवान है, सत्य ही है कि जब तक शक्ति साथ रहती है तो सब अपने हैं। दम समाप्त होते ही मित्र भी भाग जातें हैं।

वलो सीरस करथ महरम, वज़न ओम ज़ीरबम स्वंदरो।
यि दर आलम ति दर आदम, म्य छुम चोनुय कसम स्वंदरो।
ग,अ,भ 158,1

अर्थ– मैं आपको रहस्य की बात बताता हूं कि जो संसार में है वही मनुष्य में भी विद्यमान है।

निर्देश पूर्ण भजन देखें–

दय नो छुय वुछ्यान यालि चालि ग्राये, वुछन सु अं'दरिमि राये कुन।
आदि। ग,अ,भ 50,1

अर्थात, रूप, नाम, पहनावा, खानपान, व्रत, नेम, धन का होना तथा उसका दान आदि करना इन सभी बातों का वास्तव में जो भी अर्थ हो, भगवान इन सब के पीछे छिपे भाव को देखते हैं। जैसे कोई अशोभनीय ढंग से धन कमा कर लाए तथा उस का कुछ भाग मंदिर बनाने पर खर्च करे तो भगवान धन के स्रोत को देखते हैं। ऐसे धन का व्यय केवल दिखावा ही है। इसी प्रकार कोई लोग व्रत धारण करते हैं। किंतु मन से

किसी के प्रति दुर्भावना रख रहे हों तो प्रभु मन के भाव को ही देखते हैं, व्रत को नहीं। इसी वास्तविकता को समझाते हुए स्वामीजी ने चेतना दी है कि दिखावे के लिए ऐसे नियम व्रत निरर्थक हैं तथा समय और धन की बरबादी है। भगवान हर जगह विद्यमान है न कि विशेष स्थान पर।

सुय मस्जिद त् बुतखानय, यति न पानय सू बसिथ ।।
अकल्य करत् नादानय दान दानय सू बसिथ।
सुय बुलबुल गुलिस्तानय। यति न पानय सू बसिथ। ग,अ,भ 117,1

अर्थात वह प्रभु कहां नहीं बसता है वह हर जगह रहता है। वह तो हर दाने में अंकुर रूप में, बुलबुल तथा गुलिस्तान में मौजूद है।
माता अलखेश्री के शब्दों में भी यही भाव झलकता है,

नूरे मन बिंगर बहरजा जलवागर''

अर्थात मेरे नूर को देखो, वह हर जगह प्रकाशमान है।

अध्यात्म के क्षेत्र में प्रभु को पाने के लिए मालाएं फिरने से अंगुलियां घिस जाती हैं। मंत्र जाप का हिसाब रखा जाता है। इतने हज़ार इतने लाख मंत्र जाप कर चुके हैं। ऐसा करते जीह्वा घिस जाती है। किंतु इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रभु मंत्रों की गनना की ओर कोई ध्यान नहीं देते। अपने आराध्य से प्रेम तथा समर्पन में गुफतार रफतार की कोई जगह नहीं। जब सर्वस्व अपने स्वामी को ही समर्पित करना सार है फिर उन्हीं से संबंध स्थापित करना ही भलाई तथा बुद्धिमानी है। श्री श्यामलाल चौगाम के नाम स्वामीजी का संबोधन देखिए! कि प्रभु कोई बहस की चीज़ नहीं।

संतो बोज़ असरार अति गुफतार व्यपिनो ।
संतन कर नमस्कार अति गुफतार व्यपिनो ।
सिर्यि रुस्तुय चमतकार अति सितार व्यपिनो ।
स्योद वुछ गो'ल अंधकार .... ।
अज़पा ज़पय छु सार, अति शुमार व्यपिनो ।
हुशियारन छु इशार, अति गुफतार व्यपिनो ।
वसिथ्य प्यव दो'गन्यार, अति गाटजार व्यपिनो।
शूभि शुन्य सीवाकार, अति गुफतार व्यपिनो । ग,अ,भ 166,1

अर्थात– ऐ संत, रहस्य की बात कहता हूं कि वहां वाचन के लिए कोई स्थान नहीं, जिस को हम ढूंडते हैं वह न तो साकार है न निराकार।

सार तो केवल अजपाजाप ही है, संसार की वहां कोई जगह नहीं, वहां न बुद्धि काम आती है न वहां खलनायक के रहने के लिए स्थान ही है.।

अंध विश्वास तथा बाहरी आडंबरों को कृत्रिम बतलाते हुए कहते हैं कि ईश्वर के दरबार में इन का कोई दख़्ल नहीं है। इस लिए सच्चे मन से ईश्वर के दरबार की रसाई प्राप्त करना ही श्रेयस्कर है। वहां संसार ही नहीं हैं इसीलिए संसारी आडंबर भी नहीं। जिसे यह ज्ञान हुआ उसके लिए महूरत, शुभ अशुभ कोई महत्व नहीं रखता। उन का कहना है:–

क्या करे'स र्‌च़ ज़ंग क्या करे'स साथ।
सथ्ग्वर यस तारि तस्‌ज़्य छि बाथ। .... ग,अ,भ 66,2

अर्थात जिस पर सतगुरु की कृपा है उसे अच्छी महूर्त आदि क्या करेगें।

स्वामीजी शुद्ध आहार विहार, आचार विचार, तथा व्यवहार के धनी थे। वे मांस मदिरा तंबाकू का सेवन स्वयं नहीं करते, लेकिन ऐसा न करने के लिए किसी को बाध्य नहीं करते थे किन्तु उनके सम्पर्क में आने पर यर्थाता के बल पर मनुष्य अपने अंदर की आवाज़ को पहचान कर किसी आग्रह के बिना ही इन का सेवन त्याग देता था। हां इनके स्थान पर यदि चिन्ता, विषयों का अनियमित संग छोड कर, संसार को अस्थाई मान कर, हर सांस का सदोपयोग किया जाए तो उद्धार का रास्ता साफ हो सकता है। क्योंकि चंद सांसें हैं इन्तिज़ार मत कर। संसार की असारता तथा नश्वरता की चेतना देते हुए अनुरोधात्मक शब्दों में जगाते हुए कहते हैं–

स्वरत्‌ पान्‌ करत्‌ व्यच़ार सार संसार छा स'।
रावरावुन यि ल्वकचार युथ कांह ज़ार छास'।
दीह यावुन धन तय द्यार अथ ऐतिबार छास'।
व्यशियन म्‌ छिव करनय खार, ग,अ,भ 170,1

अर्थ– अपने आपको भजो यह संसार सार नहीं है। शरीर, बचपन, जवानी, धन आदि पर क्या भरोसा करना। विषयों का दास मत बन यह तेरा संहार करेंगे यह नरकाग्नि है।

अध्यात्मिक दृष्टि जब अपने चरम सीमा पर पहुंचती है तो कुछ कहने योग्य ही नहीं रहता। क्यों कि वहां इंद्रियों, मन तथा बुद्धि की पहुंच नहीं है।

बु त हु छुय बहानय ओर योर वुछ शिव पानय । ग,अ,भ 128,1

3–तीसरी अवस्था के ऊंचे दर्जे वाले ज्ञान के भजन हैं जिन का स्तर अध्यात्मिक चोटियों के ऊपर से उडान भर रहा है। जिन को केवल अभ्यासी ही समझ सकता है। परम शक्ति को जाने बिना ही बाहरी आडंबरों को धारण किए हुए कथित योगी दिखाई देते हैं कुछ अक्कड कर चलते हैं, कुछ संयासी का चोला डाले, प्रवचन देने वाले, आत्म अनुभव की डींग मारने वाले, मालाओं को धारण करने वाले आदि, दौडे जा रहे हैं। इन लोगों को क्या खबर कि प्रभु को पाने का रास्ता इतना आसान नहीं है अपितु बहुत कठिन है। ऐसे लोगों को देख कर स्वामी जी ने कहा है।

वासनायि ज़ाल छे'नुन, मनसृय नाश बनुन,
सतस्वरूप साक्षात्कार, स्यठा दुर्लभ छुय.. ।
वननृह सृत्य मा स' मेलिय मेलि तस युस तेलिय,
दमनृय करि शुमार, स्यठा....। ....
वीरन हंज़ यि वथ्य त्राव बा कथकथ्य।..
गोव्यंदृ ज़िन्दृ मरुन करनृ अपोर तरुन,
बननुय न्यश अहंकार, स्यठा... ग,अ,भ 83,1

अर्थात वासना रूपी जाल काटना, मनोनाश, निज स्वरूप को पाना, अति कठिन है वह भी केवल कहने मात्र से। निजधाम में पहुंचकर अपने को कुछ भी कहना सुनना करना शेष नहीं रहता है। यहां तीनों गुणों का अभाव रहता है।

पूज़ा, पूज़, पूज़क सोरुय सु पानय, पानय पानस छु पूज़ करा'नय,
सोरुय सुय छुय स'न्य तय वो'गनी, न्यसत्रैगुणी शीवस कर पूज़।।
ग,अ,भ 48,3

अर्थात वह स्वयं पूजा, पूजक तथा पूज्य है, स्वयं अपने को पूजता है। सब जगह वही है इसलिए तीन गुणों रज, सत, तम से शुन्य शिव की पूजा कर।

स्वामीजी के कुछ भजनों का यही भाव नीचे व्यक्त हुआ है।

संसारो स्ति न तत्वतस्तनुमृता बन्धस्य वार्तैव का बन्धो।
यस्य न जातु तस्य वितथा मुक्तस्य मुक्ति क्रिया।
अनुक्तर अष्टिका–अभिनवगुप्त पद 2।

चूंकि जन्म मृत्यु का संसार में अस्तित्व है ही नहीं, तो बन्धन का प्रश्न कहां से आगया? जो पहले से ही मुक्त है उसकी मुक्ति का प्रयास करना निरर्थक है।

पूजा पूजक पूज्य भेद सरिणः केयं कथानुत्तरे,
सड.क्रामः किलकस्य केन विदधें कोवा प्रवेश क्रमः।

अनुक्तर अष्टिका अभिनवगुप्त पद 3

अर्थात – अवाच्य ब्रह्म को शब्दों के माध्यम से कैसे व्यक्त किया जा सकता है, पूजा पूजक पूज्य में कैसे भेद है? जब भेद है ही नहीं तो अध्यात्मिक उन्नति किस को हुई कहा जा सकता है? तो आध्यात्मिक क्रम फिर क्या हो सकता है?

How can the ultimate be described through the medium of words? No distinction whatsoever in the Absolute exists regarding worship, worshiper.

जो हम संसार में देखते हैं वह ज्ञान उस अवस्था में नाम का भी नहीं है। फिर क्या है? इस भजन में स्वयं अनुभव कीजिए,

न जागृत स्वपुन स्वशपती न तुरी तुर्यातीत।
न य अद्‌ह पथ क्या सन,...सन।
न ब्रोंठ पथ न बो'न हयो'र, छो़'र ज्ञान रूपा, ग,अ,भ 167,1

अर्थ– न वह जाग्रत है न स्वपन न तुरी नही तुरीयातीत, न दृष्य न दृष्टा न दर्शन है तो उस के बारे में कुछ नहीं बताया जा सकता है।

प्रस्तुत दूसरा भजन कुछ ऐसा ही भाव जताता है, जो कशमीर शैवाचार्य स्वामी लक्षमणजी को बहुत ही प्रिय था और वनपोह या श्रीनगर में स्वामीजी के मुखारबिंद से बार बार सुनना चाहते थे

न तति मूजूद न तति फना, अमासना पथ क्या रूद।
कुनिरस चा'निस वुछुम न् छे'ना, यि मंदछुना पथ केंह न् रूद।
साक्षी असा'क्षी विलक्ष्यणा, अमासना पथ क्या रूद।
न' केंह आसुना न' न'आसुना, भासुन अभासुन न' तति रूद।
बु क्या वना रूद्य च् न् बु ना अमासना पथ क्या रूद।
पानसत् तस ज़ोनुम न् केंह ब्यना, पान ज़ा'निथ रिंद् ज़िंदय मूद।
गुणातीतस कति पो'न्य त् ग्वना अमासना पथ क्या रूद।
यिय ज़ाननस मंज़ यियि तति छुना, पानय प्रज़नाव बनिय बूद।
पान मो'चुन ज़ाननुक ज़ानुना अमासना पथ क्या रूद।

दुय त्राव यिय बो'ड सुमरनत् सना, हमसू त्रा'विथ छो'न सू रूद।
दमदम् सुय स्वर कर सुमरना अमासना पथ क्या रूद।
हमसू स्वरतो चृय रात द्यना, संकल्पन व्यकल्पन कर शूद।
अखंड अनूप पथ न्यरग्वना अमासना पथ क्या रूद।
न' केंह प्रावुन न' त्रावुना, सुय पान् छुना क्या रूद मूद।
ओरयोरह पानय नारायणा अमासना पथ क्या रूद।
भ्रम्य ओसुय युन त् गछुना, गा'लिथ वासनायि बे'यि काम क्रूध।
बाक्य न' हिसाब ज़्यो'न मरुना अमासना पथ क्या रूद।
वछ़ि वां'लिजि प्रणव्य मनि खना, तर सरह कर ओमकुय विनोद।
ये'म्य दय सोर ज़ोन तस केंहन् रें'णा अमासना पथ क्या रूद।
अस्ति भांति प्रेयि रूप तस केंहन् ब्यना, हनि हति मंज़ छुय सुय मूजूद।
पूर्ण सत चित आनंदगना अमासना पथ क्या रूद।
कुनिरुक गोव्यंदस गव सना, कां'सि स्त्य रूदुस न् म्यत्रुत विरूद।
पान् सान शिव ज़ोनुन पन्पना। अमासना पथ क्या रूद। ग,अ,भ 164,1

भावार्थः— संत मत या राधास्वामी मत के सिद्धांतों के अनुसार जब साधक सच्चाई पाने की खोज में लग जाता है। सतगुरु उसे सीना ब सीना रहस्य की बात बताता है और जिज्ञासु साधना तथा अभ्यास करना आरंभ करता है।

जब परमशिव में स्पंद होता है तो एक भारी विस्फोट होता है जिस से प्रकाश और शब्द उत्पन्न होता है यह शब्द और प्रकाश ही संसार बनाने का कारण बनता है, यही ओमकार है तथा यह शब्द प्रकाश हर जीव में विद्यमान होता है। इसी शब्द प्रकाश को साधना की बुनियाद बनाई गई है। तीसरे तल या भ्रूमध्य में जब साधक का ध्यान टिक जाता है। सारे शरीर से संबंध कटकर सारी ऊर्जा भ्रूमध्य में केंद्रित होती है। जब साधक ,सतगुरु तथा लक्ष्य एक हो जाते हैं। 'एक' कहना तो गनणा में आता है, केवल आनंदमयी चेतना रहती है। यहां न कोई मल है न ताप है। केवल आनंद की अवस्था है। और साधक आश्चर्य की अवस्था को पालेता है। रिंद लोग यहां ही विश्राम पा लेते हैं। यहां न एक है न शून्य है। फिर क्या है? स्वामीजी इस अवस्था को पाकर अपने से पूछते हैं कि जो शेष रहता है, वह क्या है? जहां न मौजूद है न फना है और न मन, क्योंकि सोच की उडान सीमित है। न वहां बुद्धि है, क्योंकि उस अवस्था का वर्णन कैसे हो सकता है। अर्थात मन और बुद्धि संसार बनाने के साधन हैं। इसलिए सीमित हैं। ज़बान से उस का वर्णन नहीं हो सकता

क्योंकि आत्मा की कोई भाषा नहीं है। वही हर जगह ओतप्रोत है, विलक्षण है, किसे बोले और किस के बारे में बोले। हर ओर वही है। इसी अवस्था को अकह या अवाक अवस्था कहते है। होना न होना, भासना अभासना दोनो नहीं हैं, मेरा वजूद, तथा मैं, तू भी नहीं है, वह गुणातीत है उस में कोई पुण्य या पाप नहीं ठहरता। जो कहता कि मैं जान गया हूं उस का वह जानना भी वहां नहीं है, करो, स्वयं पता लगेगा अर्थात जानने का जानना का रूप पालो। (supreme consciousness) किंतु चारों ओर से उसी चेतना स्वरूप का बोल बाला है।

शेष भजन में अद्वैत भाव को प्राप्त करने की विधि बताकर उस का निर्देश देते हैं कि ओम या प्रणव को मन में धारण करना तथा उस का पालेना ही श्रेयस्कर है।

अर्थात स्वामीजी ने अकह अवस्था को पालिया है जिसे व्यक्त कर नहीं सकते अपितु अपने आप सहित हर कण में शिवमय हो कर रमते हैं।

4 सामान्य भजन – चौथे प्रकार के भजन कुछ सामान्य लीलाएं हैं, जिन का आधार संसारिक घटनाएं, बाहरी आडंबर, तीर्थ, प्रेम (लोल) सहृदय की तरह चेतावनी के भजन– ओमकार, खगोल का विस्तार, संसार की असारता, अपने विरुद लोक निंदा, किसी की अहं भरी वार्ता को झखजोरना, मज़हब, स्वात्म महिमा, संत दर्शन, तथा अभ्यास के दौरान भिन्न मंज़िलों से संबंधित भजन, तथा आरती आदि के अनेक भजन हैं। इन से संबंधित संक्षेप में कुछ भजनों के पद यहां प्रस्तुत हैं।
संसार की असारता का भजन–

बूज़्यबूज़्यि कनस मो कश्य,	का'ल्य हो नशिय संसार जुवो।
वे'शय त्राव वे'शियन वशिय,	बन मो करनय खार जुवो,
परम् स्वखस अननय फशिय.... ।	हे'ख मा त्रावृन्य त्ये'लि वो'शिय, यावुन
त् बे'यि ल्वकचार जुवो	सोरिय त् अननय मा गशिय..।
दज़िय यि दीह कथ छुख ख्वशिय,	संसार स्वपुन व्यचार जुवो,
कर दय दय युथ नो ज़ांह मशिय..।	मरनात् विज़ि युस हो पशिय,
कथ त्युथ पशुन बकार जुवो।	छे'म्ब्य उमृर क'र त'म्य पो'शिय...।
प्रावुन क्या छु क'र्य क'र्य शे'शिय,	नख् वाल पननिय खार जुवो,
शे'ष्य फश अननय युथनो फो'शिय.।	कोरे क'डिथ अ'न्य अ'न्य न्वशिय,
बननख गा'लिथ द्यार जुवो,	फश यियनव हे'हरस त् हशिय...।

प'र्य प'र्य हे'कमत त् जोतशी,
गया यिम कर्न्य खशिय.. का'ल्य।
मे'ह अ'न्दरिय नार जुवो।
गोव्यंद स'र्य गव सृत्य अशिय,
प्यव होशस छुस शाबशिय,

परेशान बेमार जुवो,
वा'राग् खोत् छा रेह लशिय, गो'न्डनम
ब्रह्मांड् किन्य को'डनम कशिय...।
चलन छि लोल्च दार जुवो,
का'ल्य हो...। ग,अ,भ143,1

भावार्थ–यह एक मार्मिक भजन हैं, जिस में संसार की नश्वरता को, ह्रदय को छूलेने वाले भाव में प्रस्तुत किया गया है। जिस का भाव यह है कि संसार नाशवान है, तेरा भी नाश निश्चित है, खुशी किस बात की मना रहे हो? इसलिए समय रहते चेत जाओ, बुढापे में चेत जाने से क्या होगा। इस कारण पहले से ही विषय वासनाओं को नियंत्रित कर प्रभु का नाम स्मरण करो। यहां संसार में बीमार को हकीम और ज्योतिषी कई नुस्खे देकर उनकी हत्या करते हैं। वैराग्य धारण कर के अंदर ब्रह्मांड में चले जाओ, जिस प्रकार मैं ने परमपिता के वियोग में प्रेम के कारण आंसुओं की धारा बहा दी थी, तो अंततः होश में आकर अपना लक्ष्य साध लिया, जो सराहने योग्य बात है। तुम भी ऐसा ही होकर चलो तो परम पद मिलेगा।

स्वामीजी एक प्रतिभाशाली भक्त कवि के रूप में हमारे सामने आते है। स्वामीजी ने अपने भजनों में अभिव्यक्ति का सफलतम निर्वाह किया है। इन भजनों में शास्त्रों की सी गहनता, दार्शनिकता की पराकाष्टा, गीतों की मधुरता, संगीत की लयता और संतों की तनमयता, ललद्यद नुन्दऋषि तथा पण्डित परमानंद की वास्तविक साधनात्मकता और फलसफा के साक्षात दर्शन होते हैं। हर एक भजन सीधे ह्रदय से निकला हुआ अर्थ और भाव से पूर्ण है। इनकी रचनाओं में कोई पांडित्य नहीं अपितु अभ्यास के किसी पडाव की ही विशुद्ध अभिव्यक्ति है जो पढते समय ह्रदय को छू जाती है तथा क्षणिक तोर उस मंज़िल के आनंद का आभास हो जाता है। निर्मल ह्रदय का होना शर्त है। स्वामीजी के भजनों में ज्ञान दशा तथा रस दशा दोनों का समन्वय मिलता है।

स्वामीजी के भजनों की समीक्षा

कुछ भजनों को ध्यान से पढ कर ज्ञात होता है कि आदि शक्ति स्वरूपा माता को गाय़त्रिय, सावित्रिय, सरस्वती, अम्बा–उमा, दुर्गा तथा ओमकार बिंदु नामों से संबोधित किया गया है। भजन के आरंभ में सगुण के लिए संबोधन है अंत निर्गुण से हुआ है। इसी प्रकार दूसरे भजन को लें।

च्य गायत्रेय, सावित्री च्य राज्ञा ओमका'रिये ।
अंबा, उमा, दुर्गा त्रपुरा, श्री शारिका मा'ज्य हा'रिये।
च्य गायत्रेय छख राज्ञा..। ....तम्यसंदिय चरनारब्यंद,
ह्यस मंज़ हे'थ छुय गोव्यंद, ओमकार ब्यंद ज़ा'निथ स्वरन, मातायि .।

ग,अ,भ 5,1

सब शिक्तियों की आराधना करते हुए भी ओमकार बिंदु रूप में ही शक्ति का स्मरण करते हैं।

सगुण से निर्गुण की ओर भजन का प्रवाह साफ झलकता है। गुरु अस्तुति इसी श्रेणी में आती हैं। जहां शक्ति को पूर्ण रूपेण सक्षम माना गया है। वहां शिव की मुक्त कंठ से स्तुति की गई है।

काल्कि काल् काल् समहार्, दीशि काल् रुस चोन निवास।
त्रिशूल्धर् ही महीश्वर्, च्यय आश्चर् नमस्कार। ग,अ,भ 19,1

अर्थ–हे काल के काल, काल का संहार करने वाले, देशकाल से परे आपका निवास है। हे त्रिशूलधारी, हे महेश्वर, हे आश्चर्य रूप आप को मेरा नमस्कार है।

खगोल का गहन आनुभविक अध्ययन, अनुभूति तथा प्रभावात्मक अभिव्यक्ति को देखिए। गोविंद अमृत का पहला स्तुति भजन, ओमकार रूप परमीश्वर के चरणों में रचना तथा शक्ति का विस्तार देखिए–

अंतरिक्ष का ज्ञान

अस्य आयि शरने पूज़ा करने ज़ा'निथ च्यय ओमकार छिय।
सास् बद्य ब्रहमा व्यशन् महीश्वर दीवी त् दीवता मनीश्वर ।
इस्ताद् शरण तल डेढि चाने लछबद्य संत अवतार छिय।
विज्ञान सागर मंज़ चे'य छि ईरन फो'क् डून्य हिव्य क् त्य ब्रहमांड्य।
यंद्र चंद्र सिर्यय त यम्य का'त्या बेशुमार छिय।.... आदि ग,अ,भ 1,1

खगोल शात्रियों को भी ब्रहमांड का यह विस्तार काफी देर बाद भी समझ में नहीं आता है। अनेक लोगों को बिना ग्रंथ पढे या खगोल शास्त्र का अध्ययन किए बिना इतना बडा अनुभव करना बहुत ही कठिन है। सामान्य जनता की तो बात ही क्या। पृथ्वी अपने मदार या धुरी पर घूमकर आठ प्रहर या चौबीस घंटों में एक चकर काटती है। तथा पैंसठ हज़ार किलामीटर प्रति घंटा की गति से चल कर एक वर्ष में सूर्य के गिर्द एक परिक्रमा पूरी करती है। इसी प्रकार सूर्य के गिर्द नव ग्रह

घूमते हैं। यह समस्त सूर्य परिवार सौर मंडल कहलाता है। हमारा सूर्य अपनी धुरी पर घूमते हुए 350 प्रकाश वर्षो में निश्चित मदार पर चलकर फिर अपनी जगह पर आता है। ऐसे ही कितने सौर मंडल आकाश में घूमते हैं। इस भजन में कहते हैं–

कि हे प्रभू! ओमकार रूप! आप सब के सार रूप को मै प्रणाम करता हूं। ऐसे ही बेशुमार ब्रहमांड पानी के बुदबुदों की तरह तेरे ओमकार रूप में तैरते रहते हैं। जिन के अपने अपने इन्द्र आदि अनगिनत देवता, सूर्य विद्यमान हैं। अनगिनत ब्रह्मा, विष्णु तथा महेष आपकी स्तुति करते हैं...। इसी भजन को पढकर तथा संबंधित जानकारी प्राप्त करके मैं ने इस पर गहन चिन्तन मनन किया और सारा विश्व मेरे अन्दर घूमने लगा। स्वामीजी की कृपा से इस भजन को समझ कर ही मैं उनके सारे भजनों को समझ सका। तथा उनमें रुचि लेने लगा, अन्यथा मुझे गीत या भजन में न आसक्ति थी न समझने की अभिरुचि।

ख़्वशवय वीदय ही न्यत्य शुद्धय व्वपनिशदय छि च़्यय ललवन।
गोव्यद चा'नी गीथ्य छु ग्यवन ज़ा'निथ सारिकुय सार छुय। ग,अ,भ 1,1

जिस परम शक्ति का बखान चारों वेद तथा सारे उपनिषद कर रहे हैं तथा जिस के सामने सब कारण तथा देवता सर झुकाये खडे स्तुति कर रहे हैं, उस नित्य शुद्ध रूप को मैं गोविंद जान गया हूं और इसी रूप का स्मरण कर रहा हूं।

कशमीर **शैवमत** का प्रगाड केन्द्र रहा है। शिव ही स्वयं विमर्ष से संसार में ओतप्रोत है। कशमीर शैवमत के साथ समन्वय बन पाने के कारण स्वामीजी अपनी रचनाओं में पुकार रहे हैं कि शिव ही स्वयं लीला कर रहे है। अपने भजनों में पाठकों को बडी कुशलता पूर्ण ढंग से इस तथ्य को समझाया गया है।

"च़मि त'स्य, च़म यस न् वनि, वुछ हनि हनि सदाशिव"। ग,अ,भ 120,1

अर्थात मैंने कण कण में शिव का रूप जान लिया है । जिस के साथ शरीर भाव नहीं है वही इस रहस्य को जान सकता है। तथा

अज़ताम यि प्यालय क्त्यव चव संतव त् साधव,
च़ति हो शिवय़ ख़्वो'न पूर् पाठ्यि, च् मो रोशिय।
हा गोव्यंदो, परम् शिवस लाग लोल् पोशिय ।। ग,अ,भ 161,1

अर्थात आज तक बहुत सारे साधक परमार्थ के इसी प्याले को पीकर अर्थात पथ पर चल कर परम पदवी को प्राप्त हुए। तुम भी शिव का ही रूप हो इस में कोई संदेह नहीं है अर्थात परमशिव की पूजा में प्रेम रूपी फूल चढाओ। स्वामीजी का मन्तव्य इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि कई पंथ होते हुए भी लक्ष्य तो एक ही है। चाहे वैदिक धर्म हो या शैविक या सोफीमत या योगिक प्रणाली हो, लक्ष्य तो एक ही है। क्योंकि पूर्ण के बीच में दूसरा कैसे हो सकता है। हर प्राणी की शारीरिक बनावट अपनी ज़ात के दूसरे शरीरों की बनावट की ही जैसी लगती है किंतु बाहरी बनावट एक जैसी होते हुए भी आपस में गहरी भिन्नता है। अंगूठे के निशान नितांत भिन्न भिन्न होते हैं। इस भिन्नता का कारण केवल अंतःकरणों की भिन्नता है। अन्यथा मूल एक है और फल, पत्ते, फूल, डालियां, बीज भिन्न भिन्न दिखाई देते हैं। अतः द्वैत भाव रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए
तथा

गोव्यंद अथ कथि गव महरम, मन्सूर बोय ओस सोनये।
पानय साहे'ब वुछ मे'ह आदम, साहिबो छुम कसम चोनुये। ग,अ,भ 103,1

अर्थ – गोविंद को अब ज्ञात हुआ कि मन्सूर हमारा ही भाई था। हे भगवान, तेरी शपथ खाकर कहता हूं कि मैंने आदम को प्रभु के रूप में देखा।

कई भजन या गीत अभ्यास की प्रक्रिया को दर्शाते हैं। अथवा नसीहतें करके सत्य का यथार्त बोध कराते हैं। पाठक इन्हे पढकर कुछ देर के लिए अपने गुरु द्वारा दिए अभ्यास के साथ तालमेल बिठाकर आनंद अवस्था को प्राप्त होते हैं। इन में मित्रों तथा अपने भक्तों तथा सेवकों को दिशा निर्देश दिया होता है। आदि। जैसे,

चे'त्‌ह चे नावि रठ संकल्प् नम। चाविय न्यरामय पथ हेयिय यम।

अर्थ–चित रूपी नाव को दृढ संकल्प से चलाओ, तो आपको निरामय अमृत पिलाया जाएगा। ग,अ,भ,9,2

छ्रट त्राव मन झटपट रठ, प्राण अपान मिलनाव ।
सहस्र् दलस मंज़ केंच़न दो'हन करुन ठहराव ।
ओम शब्दस कन दारुन तारुन यि पान्‌य छु हो। ग,अ,भ 126,2

दमकुय हमस बोलन सूहम सूहम सू
श्रुति बोज़ छय अहं ब्रह्म अस्मि छुय प्रमाण प्रोनये। ग,अ,भ 103,1

''ऐकोहम बहोस्यामि'' जब सदाशिव एक से अनेक हो जाता हैं तथा अनेक में अपने को भूल जाता है। संसार में मन तथा विषय वासनाओं के संग पाकर अपने को खो देता है। अपने को शरीर मानकर वासनाओं की तृप्ति द्वारा आनंद प्राप्त करने की कौशिश करता है। इन की तृप्ति कम होने के बजाय कामना और बढ जाती है। अपितु शान्ति नहीं मिलती है। बढती हुई वासनाएं तृप्त न होते देख कर अन्य साधन जुटाए जाते हैं। कारण मनुष्य कुकर्म करने को बाध्य हो जाता है और दुख सुख का भागी बन जाता है। किसी कारण कोई एक मनुष्य विवेक को प्राप्त होकर दुनिया के इस प्रक्रिया से ऊबकर सच्चे सुख शान्ति को पाना चाहता है। जब इसकी संसारिक सुख दुख के भोग की कामना कम हो जाती है तो मन में कुछ वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और ईश्वर को पाने की लालसा उत्पन्न होती है। सदाशिव के अनुग्रह से आदमी के मन में अपने असली रूप को पाने के लिए उत्सुक्ता उभर आती है। समय आने पर उस के उधार के लिए परमीश्वर उसे गुरु से मिलाते हैं। यह जिज्ञासु द्वज होकर गुरुमुख हो जाता है। इसी से संबन्धित गुरु भक्ति का भजन देखिए।

ही सदाशिव सानि बापथ अवतार धारुन प्यो'वुय।
दास उदास आ'स्य गा'मित्य द्वख ने'वारुन प्यो'वुय ।।
शरण चे़ आगरस्य ग्वरस्य ईश्रस्य,
कठिनिस भवसरस्य तारस तारुन प्यो'वुय।।....
प'ज़्य पाठिय सुबह शामस, ललवुन सतनामस।
परमधामस त् अन्नामस गोव्यंद खारुन प्यो'वुय।। ग,अ,भ 18,1

अर्थ– हे सदाशिव, आपको हमारे लिए अवतार धारण करना पडा क्योंकि हम दास उदास तथा दुखी थे। आप तो स्रोत हो, आप की शरणता में आकर भवसागर से तार दिया। सच है कि प्रातः सायं आपका सतनाम स्मरण करने से मुझे परम धाम देना पडा।

कविता से साफ झलकता है कि सदाशिव अपने भक्तों के हितकार हेतु गुरु रूप में अवतार धारण करते हैं तभी तो गुरु को सदा परमीश्वर ही माना गया है। उनकी ही कृपा दया तथा अनुग्रह से जीव का उद्धार होता है। हमारे पास भक्ति के सिवा क्या हो सकता है।

आडंबर के विरुद्ध — वे बाह्याडंबर में विश्वास न करते हुए किसी को रोकते भी न थे। आडंभर विरोधी यह भजन व्यवहारिक लगता है,

गन्यान् गंगायि मंज़ येम्य श्रान को'र, तीर्थ सु क'र्यतन या मत् क'र्यतन ।
मानसर ये'म्य छोब मन त् प्राणय नोव, ...न्यरलीफ ख्यथ च्यथ युस रूद
वथ हे'थ व्रथ सु द'रितन या मत् द'रितन। ग,अ,भ 154,1

अर्थ—जिसने भी ज्ञान रूपी गंगा में स्नान किया वह तीर्थ यात्रा करे या न करे तथा जो निर्लिप्त है वह व्रथ रखे या न रखे कोई अंतर नहीं पडता है।

दिखावा तथा जातीय अभिमान—प्रभु दिखावे से प्रसन्न नहीं होते हैं। प्रभु के दरबार में चालाकी नहीं चलती। उसके पास कुल गोत्र का कोई मूल्य नही, छोटे बडे का भी कोई महत्व है। भगवान के पास पहुंचने के लिए 'अभिमान शून्य' भाव होना चाहिए। अज्ञानी किन्तु अपने को श्रेष्ठ मानने वाले ब्राहमणों पर व्यंग्य करते हुए खरी खरी सुनाते है।

ज़ा'च़ हुन्द अभिमान कांह मो क'रिव तति गछि़ आसुन भाव,
यस आसि भाव्य प्रछ़नस न नाव्य दय सुंद दर्बार च़ाव। ग,अ,भ 37,1

स्वामीजी ढंके की चोट ऐलान करते हैं कि कोई व्यक्ति ऊंची जात में पैदा होकर ऊंचाई को प्राप्त नहीं होता अपितु सत्कर्म करने से किसी की पवित्रता की परख होती है। जिन मनुष्यों को वे लोग नीच दृष्टि से देखते थे वे सच्चे भगवत प्रेम के कारण परम पद को पहुंच गए और तुम दिखावा करने वाले देखते ही रह कर भवसागर में डुबकियां ही मारते गए। इस कारण, हे भगवान को पाने की चाह रखने वालो! यदि भगवान के दर्बार में जाना चाहिते हो तो समता, सदभाव तथा प्रेमभाव पूर्ण भगवत भक्ति करो, वही ईश्वरपरायणता है वही बढाई है।

जीव हिंसा के विरुद्ध स्वामीजी जीव घात के विरुद्ध थे। स्वामीजी जीव हिंसा के पूर्ण रूपेण विरुद थे और इसे पाप मानते थे।

ज़ीव घातस ह्युव न कांह पाफ्य, ग्वर् क्रूधस हिव न कांह शफ्य।
मामस मो कर आहार युथ कांह मुरदार छा स'। ग,अ,भ 92,1

अर्थ—जीव हिंसा जैसा कोई पाप नहीं, गुरु कोप जैसा कोई शाप नहीं है। मांस का सेवन मत कर इस जैसा कोई मुरदार अर्थात अशुद्ध वस्तु नहीं है।

जब चराचर जगत उसी परमशिव का रंगमंच है तो हिंसा किस लिए? यदि मारना ही है तो अपने वासनाओं को मारने की कौशिश करो। क्यों कि यही वासनाएं मनुष्य को अधोगति की ओर ले जाते है उनका कहना था कि हिंसा से मनुष्य में पशुवृत्ति पनपती है और मन में डर की भावता पैदा होती है। इसके सेवन से कई प्रकार के रोग लग जाते हैं।

श्री जयमेश शाह के शब्दों में 'मांसाहारी प्रजा एवयरनेस (Awareness) से बीवेरनेस (Bewareness) की ओर प्रगति कर रही है जब कि शाकाहारी प्रजा एवेरनेस, बीवेरनेस और अलर्टनेस (Alertness) से भी आगे एक्ज़ेक्नेस (Exactness) की ओर आगे बढ रही है।

निंदा – स्वामीजी किसी की निंदा करना या सुनना सबसे बडा पाप मानते थे। ध्यान से देखने पर ज्ञान होता है कि हमारे अंदर तो बहुत से अवगुण होते हैं इसी कारण से दूसरे के अवगुणों की निंदा करने के सथान पर अपने ही अवगुणों को दूर करना चाहिए।

आ'बदार आ'सिथ गेलुन–युस पनन्यन आ'बन तेले
निंद्यायि युस कर दारे, पाप् बा'र्य तस ख'त्य बारे। ग,अ,भ 92,1
नरकी स्वर्गी की'सि मो वन ग,अ,भ 176, 2

अर्थ, किसी को भी नरकी अथवा स्वर्गी कह कर मत पुकारो।

यहां स्थायी आनंद को प्राप्त करने के लिए भक्ति तथा प्रेम को ही महत्व दिया गया है। जन्म जन्मांतर आपकी भक्ति क़रने की इच्छा सर्वोपरि है। ऐसे ही दूसरे भजनों में भक्ति पर ही अत्यंत बल दिया गया है।

गोव्यंदो तस दयस मंग कीवल भक्तिदान,
भक्ति मंगन ब्रहमा व्यशिन भक्ति मंग न शिव।
भ'क्ति साधव संतव तिहिंदिय पाद्य सीव। ग,अ,भ 37,1

अर्थ– गोविंद, प्रभु से केवल भक्ति का दान मांग ले क्यिोंकि भक्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेष, साधुओं तथा संतों ने मांगी है।

सारांश यह कि इनके भजनों में सनातन धर्म, कशमीर शैव दर्शन तथा संत परमपरा अथवा निर्गुण भक्ति धारा के सफल समन्वय का निर्वाह किया गया है।

बन्ध मुक्ति कल्पित छय। न्यत्य म्वखत्य च् सदा। ग,अ,भ150,1
चैतन्यमात्मोज्ञानमबंधः शिवसूत्र–1

अर्थात आत्मा चैतन्य है, इसमें कोई बंधन नहीं है। संकुचित ज्ञान बंधन का कारण है।

वेद अनुसार चलना।

समसार भ्रम ज़ान आखर छु मरनुय
यति गछि स्वरुनुय पनुनय पान ...।
वीदव यिय वोन तीय गछ़ि करुनुय
यति गछि स्वरुनुय पननुय पान। ग,अ,भ 125,1

अर्थ संसार भ्रम है, अंततः मृत्यु अवश्य आएगी, इसलिए स्वयं को पहचानो। जो वेदों का आदेश है उसकी पालना करो।

सब्र रज़ा त् तसलीम –स्वामीजी समझाते हैं कि सारा जगत परमीश्वर का स्वरूप है। जब तक स्वरूप ज्ञान न हो जाए तब तक उस परम शिव का दामन पकडे रखना है तथा उन्हीं की इच्छा पर निर्भर रहकर **धैर्य** पूर्ण प्रतीक्षा करनी है। सारांष यह कि समर्पण करके भगवान की **इच्छा** को **स्वीकार** करना अर्थात, सहन शक्ति रखना तथा उनकी इच्छा का मान रखना और प्रतीक्षा करना। कब वह मिले, कैसे मिले कहां मिलेंगें कोई पता नहीं। फिर भी भक्ति निरंतर करते रहना है। अहंकार का लेशमात्र भी न आने पाये।

जब मनुष्य संत पदवी पर पहुंच जाता है। तो वह अपने स्वरूप को नहीं भूलता। सदा ही उसी में ओतप्रोत रहता हैं। साधक और संत में इतना भेद है कि साधक हर समय स्वरूप में नहीं रहता और संत स्वरूप को भूलता नहीं। यही जागरूकता कहलाती है। शरीर की तीनों अवस्थाओं में संत होश में रहते है। संसार की भूलभुलयां में हर समय चूकने का भय रहता है। इस लिए ईश्वर प्राप्ति के लिए सदा हंसते खेलते बैठते सोते जागते गुरु का मंत्र स्मरण करे और क्षण भर भी भूलने न पाए।

'असन गिन्दन व्यथन बे'हन शों'गिथ हुशयार्‌य ,
युथनो मशिय अकिस ख्यनस कर स्मरण्‌य रोज़'।। ग,अ,भ 109,1

अर्थ–स्वामीजी कहते हैं कि सतगुरु शब्द का स्मरण हंसते खेलते, उठते बैठते, सोते जागते हर समय करना चाहिए।

इसलिए पूर्णता आने तक अर्थात मैं और वह का झगडा समाप्त होने तक प्रसन्न होने की कोई बात नहीं है, क्योंकि मनुष्य शरीर कुछ सीमाओं से

बंधा है जिस के कारण कुछ परेशानी हो सकती है। संसार मे आकर शरीर धारियों की ऐसी सीमा को समझाने के लिए शुक्देवजी परीक्षत की शंका का समाधान करते सुनाते हैं कि एक बार राजा शालू ने मथुरा पर आक्रमण किया। श्रीकृष्ण के साथ युद्ध में पराजित होते देखकर राजा शालू ने अपनी माया का प्रयोग किया और माया रूपी वसुदेवजी बनाकर उसका शीष काट डाला। अपने पिता का सर कटते देख कर, श्रीकृष्णजी क्षणभर की विस्मृति से विचलित हो गए थे। वे तुरंत अपनी चेतना में आकर माया को समझ गए और शत्रु का वध कर डाला। स्वामीजी कहते हैं

जब मनुष्य "स्व" को पहचान कर उसमें स्थित हो जाता है तो उसकी वाणी स्वतः ही छलकती है । इस दर्जे तक पहुंचने के लिए जो दर्जे या मनाज़िल तय करने पडते हैं उनको मूर्त तथा सरल रूप भजनों में देना कोई आसान कार्य नहीं।

दूसरे प्रकार के ओर भजनों की प्रभावात्मका का ढंग या नमोना–
लोल अर्थात प्रेम के साथ मानो बातचीत हो रही हो–

लोलो चे' नो मज़हब त् मिलत, मिलतन सारे'न्य दिच्ुथ लथ।..
लोलो च् बे इनसाफ साफ, वलियन ति फुटरा'विथ चे'ह लाफ।....
लोलो फो'रुख गोव्यंदस्य, लूठा को'रथस वो'न्दस्य। ग,अ,भ 87,1

अर्थ– अरे प्रेम! तेरा न कोई पंथ न मज़हब है, तू ने इन को ठुकरा दिया है। तू निर्दय भी है क्योंकि बडे वलियों की घोषनाओं को झुठला दिया। गोविंद के हृदय में चुपके से घुस कर तूने उसे लूट लिया। तथा

वाव न् अच़न पन् बर्गस वावकुय ताकत छु क्या,
पनबर्ग छुन् अलन चानि हुकमय रुस।
प्राण खसन प्राण वसन, प्राण बसन मंज़ दिहस।
आश्च़र छु छुन् च़लन चानि हुकमय रुस। ग,अ,भ 133,1

अर्थ–प्रभु की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता है। आप ही सब कुछ हो–यह वायु शरीर में किस के साथ टिकी हुई है ? प्रभु इच्छा के बिना शरीर से छूटती नहीं। अर्थात सब कुछ प्रभु इच्छा से ही हो रहा है। मनुष्य का किसी चीज़ पर बस नहीं है। यहां तक कि मन भी प्रभु की इच्छा के बिना संकल्प नहीं करता है।

हे प्रभु तेरी इच्छा में कितनी शक्ति है, गूंगा तेरी इच्छा से बोल सकता है, अंधा देख सकता है और लंगडा ऊंचे पहाड को लांघ सकता है,

आसि ते'य ज़ो'र बोज़ि सोरुय, ओ'न ति त्यलि सोरुय वुछे,
अंग् ह'यून्य खसि बालस, को'ल परि शठ दर्शन्य, ग,अ,भ 86,1 .... आदि

अर्थात 'मूकं करोति वाचालम पंगुम लंगयते गिरिम'।

एक भजन में क्या मार्मिकता का भाव है। कहते हैं कि मैंने यूंही सारा यौवन तथा बचपन बिता दिया, उस को कोई महत्व नहीं दिया, तथा वे देखते देखते चले गए, इस बात का मुझे बहुत दुख है। काश फिर वापस आते। उन को अब पूरे तोर से प्रभु भक्ति तथा प्रेम में व्यतीत कर लेता। कोई भी मूल्य चुका कर खरीद लेता यदि बाज़ार में प्रेम का सौदा मिल जाता कोई बाज़ार में जाकर पता करे।

मो'त यावुन को'तये गोम ब्रोंठ ज़ा'निमस नय कदर।
ब्ययि यिय् ना दोह तारय, लो'कचारस वनितवे।.....
तन दिमहा मन दिमहा धन दिमहा सोरुय,
मेलि ना म'ल्य लोल् सोदा, बाज़ारय वनितवे। आदि ग,अ,भ 61,1

अर्थ–मेरा मस्त यौवन भीत गया पता भी नहीं लगा। पहले इसकी कदर नहीं की। कुछ देर के लिए पुनः मिल जाता, मेरे बचपन से तो कह दो। उस परमपिता का प्रेम किस रूप में कैसे मिले मुझे मालूम नहीं किंतु मुझे उनका विशुद्ध प्रेम ही चाहिए। उसको पाने के लिए सब कुछ देने को प्रस्तुत हूं।

4(क) पांच अवस्थाए काव्य की स्वामीजी के भजनों में ।

सारे भजनों को समष्टि में निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रारंभ, यत्न, प्राप्ति की आशा, आशा की चरम सीमा, वियोग पीडा, और सुखांत में फल की प्राप्ति में, शास्त्री पद्वति का पूरा निर्वाह हुआ है। आनंद फल पाने के लिए प्रस्तुत हैं ऐसे पांचों अवस्थाओं में स्वामीजी के भजनों के कुछ अंश–

प्रारंभ

चानि बापथ छुस वदन प्राण छिम ़च्यय कुन दयो।
हे भगवान! सोनुय बोज़, क्या दयायि प्यठ असि च़् रोज,
सोज़ सत शब्दुक व्यमान। प्राण ——। ग,अ,भ 50,2
तथा

अर्थ– मेरे प्राण आप में हैं, मैं तो आप के लिए रोता रहा हूं। सत शब्द रूपी विमान भेजने का कष्ट करो।

यत्न

प्रथ प्रभातन न्यथ व्यच़ोरुम सथ व्यच़ोरुम सू त सू। ग,अ,भ 72,1

अर्थात हर प्रभात को उस सत्नाम का स्मरण किया।

गछ़न छिम गित्य वदन वदन, वसन छुम ओ'श अ'छन दारे।
वुछन छुख ना बु मा गलो। वलो लगयो मे' लोल हो आम।
म्वख हाव मच़राव ह्रदयिच गिलाफ.....।.
वव् कर सूरुम ववनुक वाफ, चृय कर या'री ही दयालो।
त्रप्त कर पननि खल् ,कर इनसाफ, माफ.। ग,अ,भ69,1

अर्थ–आपके लिए रोते रोते मेरी हिचकी लग गई है तथा आंखों से आंसुओं की झडी बह रही है। आप अपने ह्वदय को खोल तो दो, तथा अपने कोष से मुझे तृप्त कर दो।

आशा

ग्वड़ ग्वड़ मन मे'ह ओर गोम योर गोम।
तोन गोम यलय वज़न छु सू। ग,अ,भ 108,1

अर्थात पहले पहले मेरा मन इधर उधर भटका, अब दर्वाज़े की कुंडी खुल गई है और मैं प्रीतम की ध्वनि सुन सकता हूं।

विरह

मरय सीनस करय वो'न्य चाख,
च् हरगाह योर जल नय आख, मलय खाक रट् बो' जंगलो।
.. ..हतो बो मरय अद् फरिय, मे' नो ज़ांह यि शर नेरिय,
करख या'री त् कर जलो, वलो लगयो मे'ह लोल हो आम।

ग,अ,भ 69,1

अर्थात मेरी विरह की पीडा पराकाष्ठा तक पहुंच गई है, यदि आपने दर्शन नहीं दिए तो खाक मलकर वनवास लूंगा अथवा अपनी छाती चीर कर प्राण त्याग दूंगा। बदले में आप को भी मेरे विरह की पीडा सहनी पडेगी। इस लिए आजाओ, मैं आपकी बलैयिां लेता हूं।

मिलन की तैयारी–

लोल आम लोल् वननावस, नावस लगसय बो।
तनि तन्य मिलनावस, खो'नि क्यथ करस हो हो।
पान पनुन लरि सावस। नावस लगसय बो। ग,अ,भ 60,3

अर्थ–मिलने के लिए उतावला हो रहा हूं, अब अथाह प्रेम उमड आया है। उनसे मिलते ही उनसे गले मिलूंगा और गोद में लेकर झुलाऊंगा और उन्हीं के पास लेट जाऊंगा।

सपुद जीवात्मा हुशियार, अनाहत शब्द् गोव्यंदो.......। ग,अ,भ 84,1

अर्थात अनाहत शब्द सुनकर मेरा जीवात्मा जाग गया है।

फल–अर्थात आनंद की प्राप्ति

कस वन् हाल क्या सना वन् सन गोम चोम अमरे'थ....।
गोव्यंद् चे'ति गोव्यंद्य ज़ोनुथ अंदवंद्य।
निशि मो'कल्योख ज़े'न मरन्। सन.....। ग,अ,भ 167,1

अर्थात जो अमृत मैंने पिया उसका व्योरा किस को बताऊं और क्या बताऊं......। ऐ गोविंद–तू अब जान गया है कि तू पहले से ही गोविंद का स्वरूप है, अब जीवन मृत्यु से परे हो।

प्रत्यक्ष पा'ठिय होवहम सोरुय र्त्ये प्रालब्ध् गोव्यंदो। ग,अ,भ84,1

अर्थात मेरा अच्छा प्रालब्ध होने के कारण प्रत्यक्ष में मुझको सब कुछ दिखाया गया।

लक्ष्य प्राप्ति के बाद की लीला में गुरुदेव को धन्यवाद देते हुए स्वामीजी बलाऐं लेते हुए कहते हैं–

धन्य धन्य गुरुदेवा धन्य परमीश्वर दीनानाथ ,
वन्दयो पादन च़्यय जुवो सानि ग्वरो।
शब्द् जहाज़य प्यठ खा'रिथ ता'रिथ चे़ भवसरय,
चे़'य रुस स्यठा ब्रोंठ मे' रिवो........। ग,अ,भ 58,1

अर्थ– "हे परमीश्वर दीनानाथ! मुनीश्वर आपका ही ध्यान करते हैं। आप ही केवल हो, आप दीनहीन का चित्त प्रसन्न करने वाले हो, हे दीन बंधु हमारे गुरुदेव! सदा हम पर दया करते रहना। मैं आप से केवल अटल भक्तिदान मांगता हूं और कोई अष्ट सिद्धि आदि नहीं। पहले मैं बेखबर था और बहुत विलाप करता रहा किंतु आपने मुझे शब्द रूपी जहाज़ पर बिठा कर भव सागर को पार करा दिया। मेरी यही प्राथना है, हे मेरे गुरु रूपी परम शिव! कि आप कह दो कि अरे गोविंद! तुझे (गोविंद) को मेरी (शिव की) पहचान हो जाए और हर जन्म में तुझे (गोविंद) मेरे (शिव की) चरणों की सेवा प्राप्त हो।"

5 संत कथा – दोहे – पांचवीं प्रकार की रचनाओं में 440 दोहे हैं। 5 कथाएं दोहों में कही गई है जिन के कथानक संतों की महिमा तथा भक्ति पर आधारित है। इन में शिवजी तथा पार्वती माता को माध्यम बनाया गया है। यह सुंदर तथा रोचक संत कथा पांच घटनाओं पर आधारित हैं जो केवल आध्यात्मिकता से संबंधित हैं। हर कथा एक सत्य को धारण किए हुए है। अंत में इसी सत्य का प्रतिपादन होता है। जैसे –पहली कथा 1 से 49 दोहे तक,

5(क) पहली कथा:–

संत महिमा–भगवान शिव तथा पार्वती बृषभ पर कहीं जा रहे होते हैं कि अचानक शिवजी महाराज बैल से उतर कर पृथ्वी को प्रणाम करते हैं। माता पार्वती जी ने देखा कि आस पास तो कोई नहीं है। उन्होंने शीध्रता से नमस्कार करने का कारण पूछा तो शिवजी महाराज ने पार्वती को समझाते हुए कहा कि अभी दस हज़ार वर्ष बाद इस स्थान पर किसी संत के चरण कमल पडेंगें, इसलिए पहले से ही प्रणाम करके रखता हूं। वे संत तो मेरे प्राण हैं। राजा बलि से दान मांगने के लिए भगवान ने संत का ही रूप धारण किया था। उसी संत के चरणों को ब्रहमाजी ने

जब देखा तो उन्हें धोकर चरणामृत को अपने कमंडल में रखा। इन्हीं संत रूपी भगवान के चरणोदक से गंगाजी का जन्म हुआ।

वनय क्या भ'ख्त्य म्या'निय म्या'न्य प्राण्य,
करन तिम प्रयम् गंग् ज़लय छि श्रान्य ।
तिमन कांह मल न् हृदयस तिम छि न्यरमल,
सरल चे'थ बे'यि छि वो'पका'री त् न्यशकल।
वो'थन बेहन तिमन छुय म्योन ध्यान्य...। ग,अ,दोहा,19,20

5(ख) दूसरी मौलिक संत कथा दोहा 50 से 182 तक है, जिसमें राजा भरत (जिन के नाम पर भारत देश का नाम भारत पडा है) एक संत के पास सेवा कर रहे थे। संत अकेले ही कुटिया के अंदर बैठे थे तथा भरत बाहर बैठे विचार मगन थे क्योंकि त्रिवेणी का तीर्थ लगा था। सारे लोग तीर्थ यात्रा को चले गए थे। केवल भरत तथा संतजी वहां रह गए थे। अचानक तीन कुरूप महिलाएं घोडों पर सवार होकर उधर आगईं तथा घोडों से उतर कर बडी तेजी के साथ सीधे संत की कुटिया में घुस गईं। तपस्वी भरत संशय में पड गया, उस की शंका बढ गई। कुछ क्षणों के बाद वे तीनों अति सुंदर तथा रूपवती महिलाएं बन कर बाहर आईं और भरत को अपना परिचय देते हुए कहा कि वे गंगा यमुना तथा सरस्वती तीर्थों का रूप हैं। पापी लोगों के स्नान करने से और उनके पाप लगने के कारण उनका रूप परिवर्तन होता है किंतु पुनः अपने रूप में लौट आने के लिए वे इन महान संत के दर्शन तथा चरणस्पर्श के लिए आती हैं। जिस से पाप के कारण लगा मैल नष्ट हो जाता है, क्योंकि इन संतों को कोई पाप या पुण्य नहीं लगता। भरत का मन ग्लाणि से भर गया और वह आत्मदाह करने लगा। यहां से कहानी के आध्यात्मिक पराकाष्ठा का मोड आरंभ होता है कि भरत पहले अपने गुरु से आत्मदाह की आज्ञा लेने संत के पास कुटिया के अंदर जाते हैं। संतजी समझाते हुए कहते हें "भरत! क्या यह शरीर तुम्हारा है?"

मनन को'र पाप दिहस कथ चे'ह पुशरुथ,
च् नय दिह मन चे'ह क्याज़े पान म'शरुथ।...... ग,अ,दोहा,144

अर्थात मन ने पाप किया शरीर ने नहीं। न तू देह है न मन, तुम अपने को क्यों भूल गए हो।
तथा

अहंकार त्राव, त्रावुन गव हतो यिय।
न' ज़ानोनुय ज़गथ गछ़ि नय च् तय बुय।   ग,अ,भ 146,2

अपने सहित हर कण को शिव ही शिव देखो। ऐसा विचार कर भरत निर्विकल्प समाधि में लीन होगए। कुछ समय बाद भरत के प्राण लेने के लिए काल के दूत आ गए तो उन्होंने देखा कि भरत का जीव भाव समाप्त हो गया है। इसके कर्म फल संत चरण लगने से ही समाप्त हो गए हैं। तो हम क्या ले कर जाएं। किस के प्राण लेकर जाएं? भगवान शिव माता गौवरी से कहते हैं कि वे भरत को देखने गए तो वह शिवमय ही हो गया था और फिर उन्होंने भरत से कहा—

मे'ह वो'नमस ही भरथो धन्य चे़'ह धन्य धन्य,
स्वरूपस पननिस्य छुख म्यूलमुत वो'न्य।
भरथन ओर् असुना छुनिथ वो'ननम,
गछ़िथ केंह काल वनने लो'ग छु आश्च़र।
छु पानय प्रछ़न पानस कथ्य कर।   ग,अ,दोहा 169से71

भरत ने शिवजी से कहा कि अब चले जाओ। मेरी ज़बान से अवाच्य पद नहीं निकल सकता। क्योंकि मेरे से कोई भिन्न नहीं है जिस को मैं दिखा सकूं। फिर खामोश होकर विदेह मुक्त अवस्था में चले गए। यह अवस्था उसी बीज के समान है जिस का अंकुर नष्ट हुआ हो या यूं समझें कि बुने हुए चने के दाने के मानंद बन गया हो।

पद 183 से 194 तक संत साधु के लक्षण गिनाये हैं।

यिमय सन्थ्य छि छुख सरल स्वभावय, छु भक्ति वत्सल अद् युहुंद नावय।
महा गंभीर च़्यथ न्यरमल छु साधन, तवय वो'नमय लगय बो सन्त च़रनन।
ग,अ,दोहा 193,194—2आदि...।

5(ग) तीसरी कथा (पद 195 -272 तक) में बिच्छू तथा संत के माध्यम से संत स्वभाव दर्शाया गया है। यहां संतो के स्वभाव का वर्णन किया गया है। माता गौवरी भगवान शिव के भक्तों का गुणगान सुन कर ऐसे उत्तम संतों का दर्शन कराने के लिए शिवजी महाराज से अनुरोध करती हैं तथा संतों के परोपकार तथा भक्ति भाव को परखने के लिए गंगा किनारे जाते हैं वहां गंगा के किनारे बहुत से संत होते हैं तो माता पार्वती ने एक लीला रची कि वह स्वयं बिच्छू बन कर गंगा में बहने लगी। संत ने बिच्छू को डूबते हुए देख कर हाथ से उठाकर किनारे पर लाया तो

बिच्छू ने हाथ में डंक मारा और फिर पानी में कूद गया। किंतु संत ने पीडा की परवाह किए बिना ही उसे फिर से हाथ से किनारे पर लाया किंतु बिच्छू ने फिर डंक मारा। शिवजी ने रूप बदलकर संत से कहा हे महाराज क्यों पीडा ले रहे हो? छोडो इस को डूबने दो। संत ने उत्तर में कहा कि जब यह बिच्छू अपने काटने के स्वभाव को नहीं त्याग देता है तो हम भी अपने परोपकारी स्वभाव को क्यों त्याग दें, यद्यपि ऐसा करने में मेरी जान भी चली जाए। माता गौवरी प्रसन्न हुईं तथा शिवजी महाराज का कथन परखा तथा सत्य मान लिया। संत से दोनों ने कुछ वरदान मांगने को कहा किंतु संतने केवल अटल भक्ति का वरदान मांगा। माता ने पूछा महाराज, इसने केवल आपकी भक्ति ही क्यों मांगी है, और कुछ क्यों नहीं? तो शिव भगवान ने प्रेम की खूब चर्चा कर के प्रेम का महत्व मां पार्वती को समझाया। राधा कृष्ण के माध्यम से प्रेम की कथा को आगे बढाया गया है।

5(घ) चौथी कथा पद 273 से 298 तक राधा के विशुद्ध प्रेम की है जो रोचक तथा प्रभावात्मक डंग से वर्णन की गई है। अगली कथा में भगवान शिव राधा कृष्ण प्रेम का साक्ष्य देते हुए माता पार्वती से कहते हैं कि राधा के गर्म दूध पीजाने से श्रीकृष्ण जी के पांव में छाले पड गए तथा श्रीकृष्णजी के गर्म दूध पीने से राधाजी के पैरों मे छाले पड गए। राधा का प्रेम पूर्ण तथा विशुद्ध है। इस प्रेम की पराकाष्ठा को समझना चंद लोगों के ही बस की बात है।

> द्युतुथ तो'त द्वध तमिस यामथ तमिय चव,
> सु म्यान्यन पादन्य प्यठ तमि विज़िय प्यो'व।
> म्य ख'च़म् बस्त्ह तवय च़रनन। 291,92–2

अर्थ –श्रीकृष्णजी रुकमणि से कहते हैं कि तूने राधा को गर्म दूध पिलाया, वह सीधे मेरे चरणों पर गिरा जिस से मेरे चरणों में छाले पड गए क्योंकि मेरे चरण राधा के ह्रदय में हैं।

शिवजी तथा पार्वती माता के संवाद द्वारा इस धारावाहिक कथा को आगे ले जाते हुए भक्ति तथा प्रेम का ही गुण गान करते हैं।

> प्रेयम परमात्मा छुय सोन जुव्य। प्रयम यस तस भगवान अथि आवुय।
> प्रयम यस तस तमना वार् द्रावुय। प्रयम भंडार नाव्य तथ छु शिव्य।.....
> प्रयम छुय खिचन भगवानस्य मन, तवय भक्ति मंगान छिय संत सत्ज़न।
> ग,अ,दोहा 267, 272–2

अर्थ–भगवान शिवजी पार्वतीजी से:–प्रेम परमात्मा रूप से मेरे प्राण हैं, जो प्रेम को पाता है वही भगवान को पाता है। प्रेमी की सर्व कामना सिद्धि होती है तथा प्रेम के भंडार का नाम ही शिव है। प्रेम भगवान का मन खींचता है, इसी कारण संत सज्जन प्रेम ही मांगते है।

5(च) पांचवीं कथा 299 से 440 तक एक संत तथा चोर की है जो बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की गई है। स्वामीजी के कथ़न से साफ विदित है कि यदि जाने या अनजाने में एक संत के चरणों की धूल किसी के माथे पर किसी कारण वश लग जाए तो निश्चित है कि उसके भाग्य की टेडी रेखाएं सीधी हो जाती हैं। इस बात के साक्ष्य को संत कथा के पांचवें भाग में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है, कि किस प्रकार एक पापी चोर अनजाने में संत के दर्शन पाकर मृत्यु के बाद नरक की यातनाओं से बच कर परम पदवी पा गया। यह कथा विस्तार में अत्यंत रोचकता से भरपूर है। फिर भी यह बात दोहरानी अवश्य हो जाती है कि संत की परिभाषा स्वामीजी के संत कथा दोहों में वर्णित कसोटी पर खरी उतरनी चाहिए।

इन 440 दोहों के अतिरिक्त संतों की स्तुति में दो सुन्दर भजन कहे गए हैं। इसी लिए स्वामीजी के भजनों में सत्संग, सेवा, संतों का शिष्टाचार तथा उनका निवास स्थान, कुल, ज़ात इत्यादि न देखकर उन्हों प्रणाम करने का ज़ोरदार अनुरोध किया है क्योंकि उन की चरण धूली के छूने से भिगडी बन जाती है। संत आप के साथ माता पिता के समान ही व्यवहार करते हैं। स्वामीजी कहते हैं,

ता'र नो दिज़ितान्य संत समखनय याम संतन करु प्रणाम गोविन्दो।
संतन पत् पख बन संत सीवख, प्रत्येक संत छु राम गोव्यन्दो।
संतन हुन्द मल हे'थ च़रनकमल वुछज़्यख न क्वल त क्राम गोव्यन्दो।

ग,अ,भ 148,1

अर्थ– संतों को प्रणाम कर तथा उनका सेवक बन क्यिोंकि प्रत्येक संत राम है। कुल जाति आदि की ओर नहीं देखना।

6 अनमोल उपदेश तथा उक्तियां –छटे प्रकार की रचनाएं कुछ उक्तियां हैं जो जनसाधारण के लिए पथ प्रदर्शक हो सकती हैं। यह वाक्य अनमोल हैं और अनजानों को भी समझ में आ सकती हैं तथा जीवन में कुछ परिवर्तन भी ला सकते हैं। स्वामीजी यह अनमोल उपदेश दिया करते थे ।

स्वन छुय फो'लन नार् ताव स़्त्य, अन छाव स़्त्य, पोश वाव् स़्त्य
सथज़न फो'लन दय नाव् स़्त्य, अ'म्य यारन्य फो'लरोवनस

ग,अ,भ 144,1

चाह चूडी चमयारिनी चाह अति नीच ते नीच।
यह तो पूर्ण ब्रह्म था चाह न होती बीच

वाहवाह यारो वुछुम ब्यन्दस मंज़्य स्यन्द बसिथ।
प्रथ तनि मनि सनि वो'गनि हनि हनि गोव्यन्द ब'सिथ।। ग,अ,भ 1,1

जलस मंज़ पम्पोश बसिथ जगतस मंज़ संत,
न्यरलीफ छुय गोवेन्द ज़ानि मा सा' असंत।। ग,अ,भ 3,1

बच्चा जब बाप का पल्ला पकडता है। तब बाप वहीं खडा हो जाता है। इसलिए नहीं कि वह इतना दुर्बल है बल्कि इस कारण से कि वह स्नेह में फंसकर वही गढ जाता है। ग,अ,भ 9,1

मिसलि मदहम छुय यि आलम, ये'मि मुकामय ख्वश यस।
तमि मुकामय वायन्य छुय मिसलि साज़न्दर छुदय।। ग,अ,भ11,1

संसार कच्चा कुआं है इसके किनारे पर खूब सावधानी से खडा होना चाहिए। तनिक असावधानी होते ही कुएं में गिर पडने की संभावना, तब निकलना कठिन हो जोगा। ग,अ,भ 16,1

सूई के छेद में से तागा पहनाना चाहते हो तो उसे पतला करो।
मन को ईश्वर में परोना चाहते हो तो दीनहीन अकिन्चन बनो।।

ग,अ,भ27,1

जल मे नाव रहे तो कोई हानि नहीं पर नाव में पानी नहीं रहना चाहिए। साधक संसार में रहे तो कोई हानि नहीं। परन्तु साधक के भीतर संसार नहीं होना चाहिए। ग,अ,भ 28,1

जैसे जल के बिना नाव करोड यत्न करने पर भी नहीं चल सकती,
इसी प्रकार सहज संतोष बिना शान्ति नहीं मिलती। ग,अ,भ 33,1

काजल की कोठरी में कितना ही बचकर रहो, कुछ न कुछ कसौस लगे गी ही। इसी प्रकार युवक युवती यदि परसपर बहुत सावधानी के साथ भी रहें तो कुछ न कुछ काम वासना जाग ही जाएगी। ग,अ,भ34,1

मांगो तो मिलेगा, खटखटाओ और दरवाज़ा खुलेगा। जब तुम मांगते ही नहीं, तो देने वाला क्या दे? क्यों दे? और किसे दे? और जब तुम

खटखटाते नहीं खोलने वाला क्या खोले? क्यों खोले? और किसके लिए खोले? ग,अ,भ 37,1

गुरु ही माता, गुरु ही पिता और गुरु ही हमारे कुलदेव है। महान संकट पडने पर आगे और पीछे वही हमारी रक्षा करने वाले है। यह काया, वाक और मन उन्हींके चरणों में अर्पण हैं। ग,अ,भ 38,1

जिनको साधना करने की तीव्र उत्कंठा होती है भगवान उसके पास सत्गारु भेज देते हैं। ग,अ,भ 40,1

गंगा सागर से मिलने जाती है, परन्तु जाती हुई जगत का पाप ताप निवारण करती है। उसी प्रकार आत्म स्वरूप को प्राप्त जो संत हैं वे अपने सहज कर्मों से संसार में बन्धे बंधियों को छुडाते हैं। ग,अ,भ 44,1

दर्पण स्वच्छ होने पर मुंह दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार हृदय के स्वच्छ होने पर उस में भगवान का रूप दिखाई देने लगता है।

ग,अ,भ 46,1

मन सफेद कपडा है इसे जिस रंगमें डुबाओगे वही रंग चढ जाए गा।

गुरु प्रसाद के बिना कोई साधक कभी कृतकार्य नहीं हुआ। श्री गुरु की चरण धूली में लेटे बिना कोई भी कृत्कृत्य नहीं हुआ। श्री गुरु बोलते चालते ब्रह्म हैं। ग,अ,भ 50,1

अभिमानी और लोभी को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। हृदय की सच्ची शांति वासनाओं के दमन से मिलती है, न कि उनके अनुसार चलने से। ग,अ,भ 54,1

यदि तुम में कोई अच्छाई हो तो यह समझो कि दुसरों में तुम से कहीं अधिक है। ग,अ,भ 58,1

कौडी कौडी जोडकर करोड रुपये इकट्ठे करो, पर साथ तो एक लंगोटी भी न जाएगी। ग,अ,भ 63,1

ध्यान करना चाहते हो तो तीन जगह पर कर सकते हो, मन में, घर के कोने में और वन में। ग,अ,भ 68,1

शत्रु से शत्रुता करना वैर को दूना बढाना है। वैर करने का उपाय तो प्रेम है। ग,अ,भ 72,1

पुस्तकें हज़ार पढो, मुख से हज़ार श्लोक कहो, पर व्याकुल होकर उसमे डुबकी लगाए बिना उसे पा न सकोगे। ग,अ,भ78,1

पत्थर की ही सीढी और पत्थर की ही देव प्रतिमा, परन्तु एक पर हम पैर रखते है और दूसरे की पूजा करते हैं। भाव ही भगवान है।

स्वख न स्वपनस मंज़ ति तस जांह युस पराधीन गोव्यन्दो।

न्यबर् कर्यतन खम ति कोताह तिम छि गमगीन गोव्यन्दो।।

ग,अ,भ124,1

अर्थात खाने पीने, उठने बैठने, संस्कृति आदि में पराधीन व्यक्ति हो या देश या जाति हो वे कभी प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होते चाहे बाहर से कितना ही दम खम से चले कितु अन्दर से वे गमगीन ही होते हैं।

आदमी को जागरूक रहना चाहिए तो स्वामी जी ने कहा कि यदि किसी से हाथ मिलाओ तो बाद में अपनी अंगुलियों को गिनकर देखना चाहिए कि बराबर हैं या नहीं।

इनके अतिरिक्त गोविंद अमृत की दूसरी पुस्तक 156 भजन में बहुत सारी उक्तियां लिखी हुई हैं।

6(क) आत्मनिर्भरता –संत को आत्मनिर्भर होना चाहिए। उसे दूसरों के सामने हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं पडनी चाहिए। इससे संत पुरुष स्वतंत्र रहता है। उसकी प्रकृति ज़रूरतमंदों की सहायता करने की होनी चाहिए, तथा संतों को मीठे बोल बोलने चाहिए इनसे अगले को सांत्वना मिलती है।

7 अन्य प्रकार की रचनाएं - कशमीरी, उर्दू तथा हिंदी मिश्रित

कहीं कहीं उर्दू कशमीरी मिश्रित भाषा का रोचक प्रयोग किया है जैसे एक भजन की चंद पंक्तियां देखें–

गफलत से उठ ज्ञान द्वीप को जलाव, पुशराव दयस पान जुवो।

मनसे सब संकल्प हटाव, ज़िन्द् मर कर दयि ज़ान् जुवो।

को'रमुत क्रोवमुत सो'रमुत मशराव। पुशराव.......।

जीना मरना भ्रम है आव जाव, धारनायि धार आत्म ध्यान जुवो।

तरख च् मरि प्राव सर्वात्म भाव।   पुशराव....।

सतगुरु चरणों में ध्यान लगाव,   वन्द तस मन तय प्राण जुवो।

गोव्यंद् त्यलि छुय न् चे़'ह कांह वाव।   पुशराव.......   ।आदि ग,अ,भ

7(क)–स्वामी जी की एक भविष्य वाणी के कुछ पद प्रस्तुत हैं,

राज़्हंसस आसि गेलन काव बोज़,
वों'नमुतुय ये'मि समयुक स्वभाव बोज़   ।
सर हो'खन सागर हो'खन दरियाव बोज़,
ग्रज़नि लगन डोंफ ह्य'नर तलाव बोज़   ।
फाक् फुकर्य संतन्य आसन लगन,
पापियन गव ख्यो'न त् चो'न प्वलाव बोज़   ।
रछ्न् कने करि प्रज़ाये राज् नाश,
गछि यिछ्य ब्वद्ध राज़न्य कन थाव बोज़   ।   ग,अ,भ 172,1

अर्थात, ऐसा समय आएगा कि कौवा राजहंस की खिल्ली उडाएगा, पानी के स्रोत सूख कर जौहड उभरेंगें, पापी राजसी खाना खाएंगे और संत भूखे रह जाया करेंगें, तथा राजा पालने के स्थान पर प्रजा का नाश करेगा, ऐसी ही उनकी बुद्धि होगी।

स्वामीजी के शिष्य

स्वामीजी के शिष्यों की संख्या बहुत थी। बहुत से लोग इनके प्रेमी थे और इनके प्रति आसक्ति रखते थे। इनमें कई मुसलमान शिष्य जिन में अधिकतर गुप्त ही रहे हैं। स्वामीजी के पास वनपूह जाने के पश्चात शायद मैं ने इन के केवल एक तथा अंतिम जन्मदिन उत्सव सौलह मार्च 1973ई शुक्रवार तदानुसार चैत्र शुक्ला त्रियोदशी पर उपस्थिति दी थी। हर वर्ष की तरह इस दिन भी स्वामीजी के घर पर भक्तों का ऐकत्रीकरण हुआ। काफी लोग आ चुके थे। प्रथा यह थी कि स्वामीजी आगंतुकों को प्रीतिभोज कराते थे। शायद इसका आशय यह होता था कि आए हुए भक्तों पर दयादृष्टि की जाए, तथा उन को सेवा, सदभाव, समरसता तथा समर्पण का मौका दिया जाए। जन्म दिन का सारा खर्चा स्वामीजी अपनी ओर से वहन करते थे। उस दिन किसी भक्त ने चावल की एक बोरी तथा कुछ दाल लाई थी। जब स्वामीजी को ज्ञात हुआ तो

तुरंत वह सामान उसे वापस ले जाने को बाद्य किया। उनका कथन था कि किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना चाहिए। जब घर में सारी चीज़ें मौजूद हूं तो दूसरे लोग यह वस्तुएं क्यों लाएं। मेरी समझ में सामान वापस करने का दूसरा कारण यह भी हो सकता था कि उस भक्त के मन में दिखावे की भावना अधिक और सेवा की कम थी जिसे स्वामीजी जान गए थे। दिखावा तथा बाहिरी आडंबर उन्हें नितांत पसंद नहीं था।

इस दिन भी जोर शोर से तथा भक्ति भावना पूर्ण आरती हुई। प्रसाद पाने के लिए लोग बैठ गए। लोग खाना खा रहे थे कि स्वामी जी श्वेत अलवान का नया लंबा फिरन पहने सर पर स्फेद पगडी बांधे मस्तानी चाल से शनै शनै कमरे के द्वार पर ठहर गए और आगे चलकर बडी मधुर वाणी में बोले ''क्या स' नूना वूना छा सिन्यन?'' अर्थात सब्ज़ियों में नमक ठीक ही है क्या? स्वामीजी की वाणी सुन कर सारे मूक होकर प्रेम से उनको देखने लगे तो उन्होंने दया तथा अभय वर्दान का हाथ उठाकर सब पर कृपा दृष्टि की वर्षा की।

इसी दिन इन के शिष्यों के बारे में कुछ जानकारी भी मिली थी। उनके कुछ शिष्य अज्ञात ही रहे जिन में अधिकतर मुसलमान थे। साधक गनय उन में से एक था जिस के बारे में सारे लोग जानते थे जिस का वर्णन पहले एक भजन में आया है।

1–पंडित दयाल श्री पृथ्वीनाथ पंडित– स्वामीजी के शिष्यों में सब से ऊपर श्री पंडित पृथ्वीनाथ जी महाराज कुंजी वाले शिष्य का नाम आता है। जिनको पूर्ण संत की उपाधि स्वामीजी ने प्रधान की थी। इन को भक्त लोग **पंडित दयाल** के नाम से पुकारते हैं। इनका जन्म 16 अक्तूबर, 1929 ई को मिथुन राषि पर हुआ था। यह भी संतों के सरदार थे। इन के शिष्य श्री बालकृष्ण रैणा के कथन के अनुसार नंदबब (नंदलाल मस्ताना) ने पंडित को दो कागज़ के पन्ने दिए थे एक पर लिखा था 'बादशाहों के बादशाह' तथा दूसरे पर लिखा था 'फकीरों के बादशाह'। यह दोनों पन्ने अभी भी मुंबई में उनके भाई श्री सोमनाथ पंडित के पास मौजूद हो सकते हैं। इनका स्वभाव बहुत ही शीतल था जैसे सात आठ वर्ष का बालक हो। सरल स्वभाव, बोलचाल में नम्रता, चेहरे पर मुस्कराहट रखते थे। हर आगंतुक का प्यार से अभिवादन करते थे। सोफा, दरी, कालीन हो या टूटी खाट या टपकता हुआ छत इनके

लिए इनका कोई महत्व नहीं था। बात करते समय मानो मुख से गुलाब के फूल झिड रहे हूं। किंतु! ऐसे संत भी संसार को छोड जाते हैं और सेवकों को प्यासा छोड देते हैं। भवानी (भाग्यवान) के संत पुत्र पंडित दयाल पहले मुरन ग्राम तहसील पुलवामा में रहते थे। उनका कुटंब मुंबई चला गया और तत्पश्चात वहां ही रहने लगा। पंडित दयाल पढे लिखे होने के कारण वहां अच्छी नौकरी कर रहे थे। स्वामीजी से दीक्षित होकर नौकरी छोड कर स्वामीजी के पास रहने के लिए वनपोह आगए और पूरे छः महीने तक उनके साथ रहे। कहा जाता है कि वे पूरे समय स्वामीजी के साथ में सो जाते थे। कभी कभी स्वामीजी के साथ चिपक कर सो जाते थे जैसे कोई बालक हो। इसी प्यार तथा भक्ति को देखकर उन पर स्वामीजी की कृपा वर्षा हुई। स्वामीजी उनके लिए स्वयं रात को सोने के लिए बिस्तर लगाते थे। 1974 ई में लेखक ने उन को एक बार अनंतनाग के एक बाज़ार में जाते हुए देखा था और उनके पास कुछ जानकारी प्राप्त करने हेतु पहुंचा तो वे इतनी तीव्र गति से चल रहे थे कि एक नुकड पर घूमकर पता नहीं कहां चले गए। लेखक ने पहली बार इनको 21 फर्वरी 1999 को श्री बंसीलाल कुटवाल जी के घर में काफी समीप से देखा था। उनके दर्शन की अभिलाषा इसलिए बढ गई थी क्योंकि एक माह पहले स्वपने में उन्हें देखा था कि कोई महापुरुष तपस्वी की मुद्रा में बैठे हैं और दाईं बाईं साथ में दो विलक्षण पुरुष इसी मुद्रा में बैठे है..इत्यादि। कई दिन तक उनके साथ रहा। उन्होंने अपने हाथ से भाग्यवान ,स्वामीजी की शिष्या' की मनपंपोश भजन माला दे दी। उसी पुस्तक में से उनको भजन सुनाता तो वे अति प्रसन्न हो जाते थे, जिस से लगता था कि लेखक के ऊपर उन की विशेष कृपा थी। लेखक की दो साल की पोती, चेतना की टांग ठीक कर दी जो अब अच्छी प्रकार से चल रही है जिसके बारे में डाक्टर निराश हो चुके थे।

लेखक 2 अप्रेल 1999 को जम्मू हवाई अड्डे पर विमाऩ छूटने तक उनके साथ बैठा रहा। कई घंटों तक हम उसे निहारते रहे। वे खामोश मुद्रा में शांत बैठे रहे। मैं दुखी इसलिए था कि उन्होंने मेरे सपने की बात का अनुमोदन करते हुए कहा कि दो पार्षद लेने के लिए आए है। स्वामीजी स्वयं भी आए हैं। अब जाने का समय आचुका है, कुछ प्यासे जिज्ञासू लोगों को दीक्षा देने जम्मू आना पडा था। उन्होंने प्यार की अंतिम दृष्टि सब पर डाली तत्पश्चात उन्हें दो पहिए वाली कुर्सी पर बिठा कर जहाज़ की ओर ले जाया गया। 5 अप्रैल,1999 सोमवार प्रातः

चार बजे चतुर्थी के दिन वे मुंबई में निजधाम को चले गए और अपने शिष्यों तथा चाहने वालों को बिलखता छोड गए। उन के जन्म तथा महा प्रयाण की जानकारी श्री बालकृष्ण रैणा ने 18 अगस्त 06 ई अप्राह्ण के समय लेखक को दी। खेद है कि पंडित दयाल के बारे में विस्तार से लिखना स्थान अभाव के कारण संभव नहीं है।

2–माता कमला काचरू–दूसरे कुंजी वाले शिष्यों में शिष्या माता **कमला काचरू** थीं। जिस को लोग प्यार से **'बाब्'** के नाम से पुकारते हैं। इन का निवास स्थान श्रीनगर में था। वह स्वामीजी के ही ध्यान में ओत प्रोत, दूसरे नर नारियों के लिए पथ प्रदर्शक थीं। बहुत ही नम्र स्वभाव, तीक्षण बुद्धि युक्त साक्षात जगदांबा की प्रति मूर्ति थीं। सबर रखने वाली संता थीं। उनके धैर्य का बांध कितना दृढ़ था कि उनके बडे पुत्र स्व. प्रोफेसर चांदनरायण काचरू के जवानी में देहावसान होने पर उफ तक नहीं की। जम्मू में सत्संग के लिए अधिकतर समय महेंन्द्र नगर आती रहीं तथा वहां पर भक्तों की सहायता से एक छोटा सा कमरा भी बनवा लिया था जहां आजकल सत्संग होता रहता है।

हर एक के साथ प्यार से पेश आना, नम्रता से समझाना, उनका स्वभाव था। उनके एक अत्यंत विनम्र शिष्य ने सुनाया कि वे अपनी बहू को मांस खाना त्यागने की ज़िद कर रहा था। उससे बहू कुछ रुखी सी लगने लगी। वह तुरंत आश्रम की ओर चल पडा। तीन मील दूर महेंद्र नगर में माताजी के आश्रम पर जब पहुंचा। माताजी को झुक कर प्रणाम किया तो तुरंत माता जी ने कुछ रुखाई से कहा कहो बालजी! क्यों बहू के मन को दुखाया, समय आने पर स्वयं त्याग देगी मांस इत्यादि। तुम क्यों परेशान हो रहे हो। भक्त लज्जित होकर तथा माफी मांगकर संगत की पंक्ति में बैठ गया।

इनकी नाव पर भी कई भक्त लोग पार होने के लिए बैठे हैं। परमीश्वरीजी **'बाब्'** की कुंजी वाली शिष्या थीं। जो श्रावण शुक्ला पूर्णिमा 2005 को परम धाम को चली गईं। उन्हों ने चतुर्दशी का पूरा दिन महेंद्रनगर सतसंग भवन में व्यतीत किया। यह दिन स्वामी जी का पुण्य दिवस था। मैं उसके साथ में बैठा था और स्वामीजी का एक भजन गा रहा था संगत भी साथ में गा रही थी। सायं के साढे सात बज चुके थे। परमीश्वरी जी भी हमारे साथ गुनगुना रहीं थी। मैं अब उनसे विदा लेने वाला ही था कि उसने मेरे हाथ में एक केला थमा दिया उसके हाथ में

कंपन था। मैंने देखा वह तकिए से सरक रही थीं। वह बोली ''अब मैं इस शरीर को संभाल नहीं सकती हूं। हे गुरु देव! अब इस शरीर को छुट्टी दीजिए''। फिर वह निकट ही स्थित अपने घर चली गईं। पुर्णिमा अर्थात रक्षाबंधन प्रातः को मेरे फोन की घंटी बजी कि परमीश्वरी परमधाम को सिधार गईं हैं।

3—कमला कौल— तीसरी शिष्या धनवती अथवा कमलावती कौल हैं। वनपोह की रहने वाली 92 साल की तेजवान संता मस्त मौजी, अपने शिष्यों को ज्ञान प्रदान करती रहती हैं। उनको कशमीर विशेष कर वनपोह त्यागने का बहुत ही दुख है। उन्होंने अपने अनुभवों को अपनी भजन माला 'ज्ञान प्रकाश' में प्रकट किया है। इनके भक्तों ने इस पुस्तक को छपवाया, जिसमें सौ के करीब भजन हैं। मैं ने उनसे उनकी जन्म तिथि के बारे में पूछा तो हंसकर बोली "मैं तो केवल ग्यारह वर्ष की बालिका हूं"। यह उनके स्वच्छ हृदय की एक झलक है। इतनी आयु, संभवतः 92 वर्ष, के होते हुए भी रात को भजन मंडली में जागती रहती हैं। स्वामीजी के पहुंचे हुए भक्तों में नींद आलस्य आदि कहां ठहर सकते हैं।

2005 में माताजी के लिए एक भजन संध्या का आयोजन किया गया था। सूर्य विहार में जवाहरलाल भट के घर सत्संग का आयोजन हुआ था। धनवती भी आई हुई थीं। कुछ नर नारी कीर्तन में व्यस्त थे और रात के 12 बज चुके थे। भजन रोक कर माताजी को दूसरे कमरे में आराम करने के लिए सुलाया गया। कमरा बंद था। कुछ समय बाद भजन फिर आरंभ हुआ किंतु धीमी आवाज़ में ताकि माताजी की नींद न खुलने पाए। हम भी भजन में मस्त हो गए तो क्या देखा कि माताजी हमारे बीच में ही बैठी कीर्तन का आनंद ले रही हैं।

4—भाग्यवान— भाग्यवान स्वामीजी की उच्चकोटि की शिष्या थी। जिन की भजन रचनाओं से उनकी अध्यात्मिक ऊंचाई का पता लगता है। इनका नाम भवानी था और सुसराल का नाम तारावती था। बहुत सारे लोग इनको 'जिगरी' नाम से भी पुकारते थे। पंडित दयाल पृथ्वीनाथ की माता थीं। स्वामीजी ने इनका नाम 'भाग्यवान' रखा था। वे सदा मस्ती में ही रहती थीं। कई दिनोंके पश्चात पुनः सचेत हो जातीं। मुंबई में जब अकेली होती तो गुंगरू पहने श्री बाल कृष्णजी उनके साथ खेलते और प्यार से उन की गोदी में बैठते थे, बाहर दरवाजे पर किसी की आहट

सुनकर दीवार पर टंगे बालकृष्ण के चित्र में छिप जाते थे। बालपन से भगवत भक्ति की तीव्र चाहत थी। जानकारों का कहना है कि वह श्रीनगर में किसी गली में जा रही थी कि किसी घर में सत्संग हो रहा था और स्वामीजी के कहे भजन गाए जा रहे थे। वह आनंद विभोर होकर रुक गई। वह भी उसी घर में घुस गई। वहां माता कमलावती काचरु को व्यास गदी पर बैठी देखकर उनसे विनती की कि उसे भी दीक्षित किया जाए। परंतु ऐसा न हो सका। वह कुछ निराशा लिए वहां से निकल कर आगे चली। उसका भाई श्री वेशनाथ कौल उसके साथ था। कुछ दूर जाकर भगवान का करना कुछ ऐसा हुआ कि सामने से अब्दुल अहद ज़रगर आरहे थे और लोगों की भीड उनके साथ थी। भवानी ने न आव देखा न ताव झट से ज़रगर साहिब के पास पहुंच कर अपनी तीव्र भगवत भक्ति का प्रदर्शन किया। ज़रगर साहिब ने उनकी तीव्रता देखकर तत्काल उसे दीक्षा दी। कुछ समय के बाद वह ऊंचाईयों को छूने लगी और तीव्र गति से आगे जाने का ज़रगर साहिब से अनुरोघ किया। मस्ती की दशा में उन को अपनी कुछ खबर नहीं रहतीं थी। ज़रगर साहिब ने उनको अगले पडाव पर जाने के योग्य समझा, किंतु वह जल्दी अगले पडाव तय करना चाहती थी। अहद ज़रगर जी स्वामीजी को संतों का सरदार मानते थे। इसलिए भवानीजी को स्वामीजी के पास ही वनपोह लेजाना मुनासिब समझा।

जब वनपूह पहुंचे तो स्वामीजी पहले से ही अपने घर तथा मुहल्ले से बाहर एक पेड के नीचे बैठे मानो उनकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। ज़रगर साहिब भवानी को साथ लेकर वनपोह पहुंचे तो उसने सलाम करके भवानीजी से स्वामी जी की ओर इशारा करते हुए कहा कि यहीं पर तेरी मंज़िल है और यहां ही तुम्हें आगे का रास्ता मिलेगा। स्वामीजी को देख कर भाग्यवान प्रेम के कारण आपे से बाहर होकर भावुक हो गई तथा स्वामी जी पर एक झपटा मारकर उनके सर तथा पगडी को चूमने लगी तो स्वामीजी ने अपना कर कमल भवानीजी के शीष पर रखकर कृपा दृष्टि करके कहा, ''अब शांत हो जाओ, यहां दीवानगी नहीं चलती है, यहां से शान्ति का पथ है''। स्वामीजी की एक ही दृष्टिपात से वह तत्काल शांत हो गई। स्वामीजी उनको अपने घर ले गए और वहां उन्हें दीक्षित किया। तत्पश्चात स्वामी जी से उन्हें 'भाग्यवान' का उपनाम मिला। उन्हें पाकर भागयवान माता अध्यात्मिक पराकाष्ठा तक पहुंच गई। जिस का संकेत भागयवान कृत 'मन पम्पोश' कविता संग्रह से साफ

झलकता है, जिसमें उच्चकोटि का कवित्व तथा आध्यात्मिक अनुभव विद्यमान है।

तोन्दरस त् ठानस म्युल करुन,
रिंदय बनुन ज़िंदय मरुन।
हिय यियि फो'लिथ अद्‌ह ल्‌य् त्रो'पय,
छो'पय क'रिथ वुछ नप्‌नपय। मन,पं,भ 81

अर्थ–अपने तंदूर रूपी शरीर को भक्ति की अग्नि रूपी प्रेम तथा संसारी विषय वासनाओं तथा इंद्रियों के मनोनिरोध रूपी ढकन से रोक कर रिंद बनना है। इसी से हिय फूल रूपी ह्रदय खिल उठेगा। फिर मूक बनकर अखंड प्रकाश को निहारो।
उनके प्रायः सभी भजन सतगुरु को ही समर्पित हैं।

द्युत गोश भाग्याने, मदहोशिय सदाशिव,
गोविंद नावस् हे'थ प्याला डालि वे'सी मन,पं,80

अर्थ–भाग्यवान ने कान धरा तो देखा कि शिव मस्त मदहोश थे। गोविंद नाम का प्याला सौघात के रूप में ले लिया तो कहीं बात बन गई अर्थात उन्होंने मुझे अपना लिया। अर्थात गुरु का आसरा लेकर पार हो गई।

अनेक भजनों में उन्होंने ज़रगर जी का संकेत दिया है।

'चशम् वंदयो ज़रस ज़रस्‌य बो' मन,पं –2

ज़र्‌ह ज़र्‌ह ज़र बनिय पानस्‌य। मन,पं,81
अर्थ–मेरे नेत्र ज़रगर को समर्पित।

वे तत्काल भजन संरचना करती थी। निरक्षर होते हुए भी भजन रोचक तथा प्रभाव उत्पन्न करने वाले हैं। एक तत्काल भजन का वर्णन देखें। स्वामी जी अपने प्रयोग के लिए किसी से कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते थे। उनके पास किसी चीज़ की कमी नहीं थी। वे काफी ज़मीन के मालिक थे। एक बार भग्यवान जी ने स्वाम़ीजी के लिए ही बडे परिश्रम से महंगे शाहतोस को काफी देर तक कातकर शाल बनवाया। जब वनपोह आकर स्वामी को पेश किया तो स्वामीजी ने लेने से मना किया और कहा कि शाल को अपने प्रयोग के लिए रखो। मेरे पास तो हैं। ऐसे रूखे जवाब की भागयवान को स्वामी जी से आशा न थी। वह भावुक हो

गई तथा फूटफूट कर रोने लगी। कुछ चुप हो गई और तत्काल यह भजन उनको सुनाया। एक पद्य प्रस्तुत है।

शाहतोस्‌ह वलसय नोजुक पानस   करय जानानस हो तय हो।
प्यारि गोम कारि खम प्रारान पानस, सारि गोम तारि फम्ब कोह दर कोह।
दो'गन्यार कति रूद ओ'गनिस थानस, करय जानानस हो तय हो ।.....

मनपंपोश भजन 79

अर्थात तोसा का शाल उनके नाजुक शरीर पर ओढ कर सजा लूंगी और उसे प्यार से थपकी देकर प्रेम करूंगी। ए मेरे प्यारे (गुरुदेव)! आपकी प्रतीक्षा करते तथा पहाड जितना ढेर ऊन 'के'ल्य फंब' चुनते तथा कातते मेरी गर्दन टेढी होगई। शाल तो एक ही है यह दुगुना या दो तह वाला कैसे होगया, अर्थात यदि आप और मैं एक ही हैं अद्वैत हैं तो द्वैत कहां से आटपका कि आप यह शाल ओढना अस्वीकार कर रहे हैं। तत्कालीन उत्पन्न हुई कविता द्वारा उदगार सुनकर स्वामीजी बहुत ही प्रभावित हुए और शाल ओढना स्वीकार कर लिया। स्वामीजी के एक भक्त श्री श्याम लाल च़वगाम भी उस समय वहीं पर उपस्थित थे। अपने गुरु महाराज के प्रति अगाध प्रेम तथा उनका सफल भावपूर्ण नखशिख वर्णन देखिएः–

चशम् बु वन्दय चशम् वुछमय स्वरमा'लिये।
रुमन गुमय बुम् वुछमय कज़ा'लीये..............। मन,पं 145 तथा
होशि आयस चानि सोगंधि लोलो
सतगुरु म्यानि पंपोशि गो'न्दि लोलो।......
अद् लगयो पंपोशि अथन्य बो....आदि....। मन,पं, 2

अर्थ– हे कमल के फूलों के गुच्छे के समान मेरे सतगुरु आपकी सुगंध पाकर अथवा सानिध्य पाकर मुझे होश आया है। मैं आपके हाथों, चरणों, कंधे आदि की भलैयां लेती हूं............ ।

श्री श्यामलाल कौल का कहना है कि जिगरी 'भाग्यवान' चमत्कारों से भरी पडी थीं। स्थान अभाव के कारण उनका वर्णन करना संभव नहीं है।

5–डाक्टर मेडाड बॉस– स्वेटज़रलेंड में रहने वाले एक प्रभावशाली उच्चकोटि के विश्वविक्षात मनोवैज्ञानिक डाक्टर मेडाड बॉस थे। यह मनोवैज्ञानिक डाक्टर संसार के बडे बडे विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान पर भाषण देते थे, साथ ही साथ किसी महान गुरु की तलाश में भी थे। उन्हें बताया गया कि ऐसा मनोवान्छित महान गुरु भारत में ही

मिल सकता है। भारत में आकर उन्हें कशमीर में ऐसा गुरु ढूंडन के लिए कहा गया। स्वामी जी सर्दियों में वनपोह से मुंबई चले जाते थे। वहां पंडित दयाल श्री पृथ्वीनाथ जी के पास ठहरते थे। मुम्बई में डाक्टर बॉस की भेंट स्वामीजी से कराई गई। दोनों एक दूसरे की भाषा नहीं जानते थे। द्विभाषी से काम न चला फिर आमने सामने मूक वार्तालाप होने लगा। डाक्टर बास लिखते हैं मूक भाषा में मैंने स्वामीजी से जो कुछ भी पूछा मनोवान्छित उत्तर मिला। उन्होंने स्वामीजी को अपना गुरु मान लिया। वे कशमीर आकर स्वामीजी के पास महीनों तक रहे तथा राजयोग का पूरा अनुभव प्राप्त किया। स्वामी जी के भजनों का अर्थ उनको श्री गोपी नाथ खुशु स्मझाते थे। कुछ समय के बाद वह स्वामीजी के भजन सुनकर आनंदित हो जाते। डाक्टर खुशु समझाने का प्रयत्न करते तो वे उनको यह कह कर मना करते थे कि वे अब भजन का भाव समझ सकते थे। डाक्टर बास ने शिवपार्वती जी के दर्शन के बारे में स्वामीजी को पत्र लिखा था।

ऊपर दिए तथ्यों से साफ विदित हो जाता है कि मनुष्य ईश्वर को पाने के लिए उसकी ओर एक पग बढाता है तो ईश्वर आगे से आकर उसके राह में बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा होता है।

डाक्टर मिस **एरिना हॉक** मेनट्ल हॉस्पिटल श्रीनगर में एक डाक्टर थीं। वह स्वामीजी की श्रेष्ठ भक्तिन थी। हम दोनों कई बार अचानक मिलकर वनपोह जाते थे। वह श्रीनगर से खनबल तक कार में आती थीं और खनबल से वनपोह पैदल ही जाती थी। वह इसे पुण्य मानती थी। राह चलते वह कोई सुन्दर फूल स्वामीजी को भेंट करने के लिए चुन लेती थी। स्वामीजी वह भेंट लेकर अति प्रसन्न हो जाते थे। मैं सोचता था कि इतने मामूली फूल की भेंट लेकर स्वामीजी प्रसन्न हो जाते थे। स्वामीजी झट बोल उठे कि संत महात्मा के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए, कुछ न कुछ अवश्य साथ लेकर भेंट करना चाहिए, कुछ नहीं तो घास का एक तिनका ही देना चाहिए।

गाय चराने की घटना डाक्टर एरिना हॉक ने अपने शब्दों में बडे ही रोचक ढंगसे अपने एक पत्र मे लिखकर भेजा है तथा पुस्तक में स्थान देने का अनुरोध किया है। उन्होंने लिखा कि एक दिन वह स्वामीजी के दर्शन करने वनपोह गईं थी। उनको घर में न पाकर वहां चली गईं जहां वे गौ को रस्सी से पकड कर चरा रहे थे। गाय रस्सी को तनाव में ही

रखती थी ताकि नए घास तक पहुंचा जा सके। उससे 'एरिना' के साथ बात करने में बाधा आ रही थी। क्योंकि वह दूर से आई थी और वापस भी जाना था। ऐसा लग रहा था कि तीनों तनाव में आगए थे। स्वामीजी दोनों की विवशता जान गए तथा गौ से कहा ज़रा विश्राम लो और गाय तुरंत एक ही स्थान पर रुक गई। तभी उसके साथ बात हो सकी थी। स्वामीजी के इस कथन का उनके मन पर बहुत ही प्रबल प्रभाव पडा था कि पत्थर को देव रूप में, चक्की तथा ज़ीने में प्रयोग किया जाता है। यहां भाव ही इन का कारण है। ऐरिना द्वारा गाय के साथ स्वामीजी का खेंचा चित्र गोविंद अमृत द्वतीय आवृत्ति में देखा जा सकता है।

इन्हीं संतों की नाव में बैठकर हज़ारों भाग्यवान भवसागर पार करने के अधिकारी हो चुके हैं। आज कल भी स्वामी गोविंद कौल, कमला, पंडित दयाल सत्संग आश्रम महेंदर नगर जम्मू में सक्रिय है जहां नियमित ढंग से अभिलाषी भक्त जन मिल कर स्वामिजी के भजन गाकर सत्संग का अध्यात्मिक रस पान कर रहे हैं। यह सचमुच अच्छे आश्रम की परिपाटी को पूरा कर रहा है क्यिोंकि जिस स्थान पर केवल भगवत चर्चा हो वह सही आश्रम है। इनके अतिरिक्त कई सौ और भी महानुभाव भक्त हैं जिन में कई संत पद्ववी को छूने को तैयार है।

अष्टांग योग

यम	अहिंसा	सत्य	अस्तेय	ब्रहमचर्य	अपरिग्रह
नियम	शौच	संतोष	तप	स्वाध्याय	ईशवर प्राणिधान
आसन	सिद्धासन	शीर्षासन	आदि 64	प्रकार	72 हज़ार नाडियों का शोधन
प्राणायाम	कुम्भक	पूरक	रेचक आदि	श्वास प्रश्वास	आठ कियाए। सूर्योदन, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा, अनुलोम विलोम,
प्रत्याहार	वसनाओं का नियंत्रण				
धारना	चित वृत्ति का निरोध				
ध्यान	इष्ट या लक्ष्य का चिन्तन				
समाधि	सभी विचारों का केन्द्रीभूत होना।			वस्तविकता का ज्ञान होना।	

अष्टांग योग तथा कुण्डलिणी योग का इतना लंबा चौडा विधान तथा प्रक्रिया है, कि साधक के लिए संसार के ओर काम तो त्यागने पड सकते हैं। इन में अधिक समय देने की आवश्यकता है। अष्टांग योग में प्राणायाम की आठ क्रियाएं शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अत्यंत लाभदायक हैं अपितु आसन तथा प्राणायाम आदि अभ्यासी को केवल सहस्रार तक ले जाता है। कुंडिलिणी योग का विधान भी काफी लंबा है। समय के अभाव को देखकर संतों ने आज के समय के अनुसार लोगों के सामने सहज रास्ता रखा है। जिस से आत्मबोध होने में देर नहीं लगती। शेष सारे पंथों का लंबा विधान है जो इस जीवन में पूरा होना कठिन है, और पूर्णता को भी नहीं दर्शाते। अपने आत्मा को पहचानने तथा साक्षातकार होने में देर नहीं होनी चाहिए। इस लिए स्वामीजी के अनुसार संतों का ही सहारा लिया जाना चाहिए जो सरल, सुगम तथा अपरोक्ष पथ (short cut) दिखाकर मोक्ष का द्वार खोल सकते हैं।

कुन्डलिणी योग (कुन्डलिणी योग के चक्रों की जानकारी अंतिम पृष्ठ (पृष्ठ .185) पर देखें)

8 चमत्कार अथवा कारामातें:–

कुल करामातें यह करनी बच्चों का खेल है।
खुद तुझो मालूम होगा अनफास से।। ग,अ,भ

करामातें करके लोगों को फुसलाना और पथ भ्रष्ट करना यह बच्चों वाला खेल है। चमत्कार करने से यार का दर्शन दुर्लभ है। स्वामीजी चमत्कार करते ही नहीं थे। इसके वे समर्थक भी नहीं थे। किंतु कभी स्वयं हो जाती थीं। वह भी केवल किसी को ठीक रास्ते पर लाने के लिए ही । जैसे खालिक नाम का एक आदमी जिस को लोग 'खाल्ह जिन' के नाम से पुकारते थे, कोई भी वस्तु तत्काल बनाकर दूसरे को दे सकता था। एक बार वह ऐसी ही करामात अपने मित्रों के सामने कर रहा था। स्वामीजी भी वहां मौजूद थे। उस ने स्वामीजी से कहा कि बताएं क्या चाहिए ? स्वामीजी ने कहा कि उनके घर से नुस्खा लिखने के लिए कलमदान लाओ। खालिक ने कहा कि तुरंत ला कर देता हूं। कुछ देर हुई खालिक थर थर कांप रहा था और स्वामीजी के चरणों पर गिरकर क्षमा याचना करने लगा। स्वामीजी ने कहा, क्या हुआ मिला नहीं ? महाराज ऐसी बात नहीं है। आपके कमरे में से आगकी लपटें निकल रहीं थीं, सारा शरीर झुलसने लगा तो भाग आया। स्वामीजी ने संभालते हुए कहा कि तुम अपनी शक्ति को व्यर्थ नष्ट कर रहे हो। इस शक्ति को तू प्रभु की भक्ति में लगा सकता है और ऊंची मंज़िल पा सकता है। खालिक को भगवत भक्ति मार्ग पर लाने के लिए स्वामीजी ने वैसा किया था। उन का कथन था कि अष्ट सिद्धियों का सामान्यतः दुरुपयोग ही होता आया है। किंतु अपने भक्त के संशय मिटाने तथा अपने गुरु के प्रति श्रद्धा भक्ति बढाने के लिए कभी कभी करामाते करनी पडती हैं।

स्वामीजी तो स्वयं एक चमत्कार थे। फिर भी, श्री हरी कृष्ण रैणा के संस्मरण, चूनीजी द्वारा बताए गए कारनामे तथा अन्य भक्तों द्वारा जानकारी प्राप्त कराने तथा सोमनाथ पंडित द्वारा लिखी लघु किंतु मार्मिक पुस्तिका 'हमारे गुरुदेव' के आधार पर यहां कुछ घटनाओं का संक्षिप्त उल्लेख करना ठीक रहेगा।

घटना 1 बही सेब एक दिन स्वामीजी के पास कोई अतिथि आए थे। उन में श्रीनगर निवासी स्वामीजी के शिष्य श्री त्रिलोकी नाथ बान भी थे। बातचीत करके जब जाने के लिए विदा लेने लगे तो स्वामीजी ने रात को उनके पास ही रहने का अनुरोध किया। उन्होंने बही की सब्ज़ी खाने

की इच्छा जताई थी। वे लोग रात के लिए रुक गए। उसी दिन भास्कर नाथ ने अपने पुत्र हरी कृष्णजी से कहा कि यह सुन्दर बही सेब अपनी गाडी में लेकर तुरंत वनपूह स्वामी जी के पास पहुंचा देना, क्योंकि नई फसल का पहला भाग स्वामीजी का है। बही सेब की दो पेटियां दुपहर को वनपूह की ओर रवाना भी हो चुकी थीं। बान साहिब तथा दूसरे मेहमानों ने रात को सेब की सब्ज़ी का खूब स्वाद लिया। किंतु विस्मय से आपस में स्वामीजी की त्रिकाल दृष्टि की बातें करते रहे।

घटना 2 श्रीसीतारामजी के दर्शन—स्वामीजी कहा करते थे कि यदि कोई मनुष्य अपने आप को पूर्ण रूप से भूल कर एक पल के लिए भी भगवत में लीन हो जाता है तो उसी को सच्चा तीर्थ फल मिल गया। स्वामीजी ने इस पर एक दृष्टान्त देते हुए सुनाया, कि एक समय मलमास—भानुमास लगा हुआ था। विजया सप्तमी के रोज़ लोग पितरों का श्राद्ध करने के लिए मटन पहुंच गए थे। चा़का श्रद्धालओं की भीड से खचाखच भर गई थी। जगह जगह पितरों के श्राद्ध हो रहे थे। श्री कृष्णजू राज़दान उनको (स्वामीजी) को साथ लेकर एक स्थान पर बैठे थे। चा़का के पास में बहती हुई नदी के ऊपर पुली पर एक पुरुष और महिला बैठे थे। श्रीकृष्णजू राज़दान ने स्वामीजी को एक अदभुत दृश्य दिखाया कि वे और कोई नहीं श्रीरामचंद्रजी तथा सीताजी थीं जो औरों को साधारण मनुष्य ही दिखाई देते थे। दोनों की ओर देखकर सीताजी रामजी से पूछ रही थीं कि आज दिन के इस तीर्थ का फल किस के नाम हो गया है। श्रीरामजी ने उत्तर दिया कि आज के तीर्थ का फल उसी के नाम हुआ जिस का मन एक क्षण के लिए भी टूटा हो और अपने आप को क्षण भर के लिए भी भूल कर भगवत में लीन हो गया हो। संकेत इन दोनों की ओर था।

घटना 3 जीवन दान श्री हरीकृष्णजी रैना जो स्वामीजीके शिष्य हैं, का कहना है कि बाबा फकीरचंद रैनावारी में उनके घर आए थे। उनके विश्राम के लिए घर का एक कमरा अलग रखा हुआ था। उसमें बाबाजी अकेले बैठा करते थे। लोग सत्संग तथा दर्शनों को आते। 1958 ई जून के महीने के एक दिन एक विशेष घटना घटी कि एक महिला जो डाक्टर गोपीनाथ खुशु की बहन थी, बाबा फकीरचंद के कमरे में प्रणाम करने के लिए चली गई। जब प्रणाम करके आर्शीवाद मांगा तो बाबाजी ने कहा तेरा जीवन अब तो केवल हफते भर का मेहमान है आशीरवाद

क्या दें, हां भगवान का नाम लो। बाबाजी की बात भी झूठी नहीं हो सकती थी। जिस महिला ने अभी यौवन भी न देखा हो और मृत्यु की चेतावनी आ जाए। मृत्यु की खबर से तो शेरों के दिल भी दहल जाते हैं। फिर एक नन्ही सी जान। इस की बात ही क्या? उस पर मानो पहाड. टूट पडा हो। वह बहुत रोने लगी। वह डर के मारे कांपने लगी। सारे वातावर्ण में सनाटा छा गया। जब स्वामीजी से इस निस्तब्धता का हाल कहा गया तो स्वामी जी गंभीर होकर बोले, कि मेरे सेवकों के बारे में उन को कुछ निर्णय लेने या कहने का क्या अधिकार है ? यह उन का इलाका नहीं है। उनसे कहो कि वे अपने सेवकों की फिकर करें। हमारे भक्तों की फिक्र हम स्वयं करेगें। तो स्वामीजी ने उस महिला को अपने कमरे में पास बुलाकर कहा कि तू अभी बहुत देर तक जीवित रहेगी। तुम वहम छोडकर प्रसन्न रहो। तब जाकर वह होश में आकर बातें करने लगी। वह महिला अर्थात गोपीनाथ खुशु की बहन अभी अर्थात मार्च 2006 तक जीवित है।

घटना 4 मांगने की तरकीब। बातों बातों में स्वामी जी ग्रहण करने योग्य कुछ अमूल्य शब्द कह देते थे कि मांगना भी कोई आसान क्रिया नहीं है। क्या मांगा जाए देने वाले से? इसके लिए बुद्धि का प्रयोग करना ठीक है। एक उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि एक अंधा व्यक्ति बहुत ही निर्धन तथा लाचार था। उसका कोई परिवार भी नहीं था। श्रीनगर में शारिका माता के दर्शन के लिए हारी पर्वत नित्य जाया करता था। एक बार उसको माता की वाणी सुनाई दी, कि केवल एक ही वरदान मांग ले। बेचारा बडी परेशानी में पड गया कि क्या मांगे? यदि आंखें मांगे तो दरिद्रता नहीं जाए गी, यदि परिवार मांगे तो लाचारी फिर भी रहे गी। उसने अपनी बुद्धि से काम लेकर मांगा! ''हे माता, मैं अपने पोतों को सोने की थालियों में खाना खाते देखना चाहता हूं। देखो उसे सब कुछ मिल गया''।

घटना 5 अनंतनाग का कुतुब–एक दिन स्वामजी ने ध्यान में एक कुतुब को देखा था। वह एक वृद्ध मुसलमान, अंधेरे बंद कमरे में जिस का कोई रोशन दान नहीं, कोई फर्श नहीं न कोई ज़्यादा बर्तन ही उसके पास थे। किंतु उच्च्च कोटी का महात्मा था। स्वामी जी के मन में उन्हें देखने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। कई दिनों बाद स्वामीजी मटन गए तो वहां उन्हें एक और मुसलमान दरवेश मिले। वे स्वामीजी को अपने गुरु

के दर्शन करवाना चाहते थे जो अनंतनाग में रहते थे। वे दोनों अनंतनाग मैं दरवेश के मकान के पास पहुंचे तो क्या देखा कि वही मकान और वही व्यक्ति, वही वातावर्ण पाया जो ध्यान में देखा था। यह व्यक्ति बढई का काम करता था उस का गुज़ारा मुशकिल से होता था, मगर काफी सशक्त था। वे अब प्रायः मिलते ही रहते थे। एक रोज़ स्वामीजी उनके पास गए तो बढई अत्यंत विनम्र हो गए और स्वामी जी से अपने किए अपराध की क्षमा मांगते हुए कहा कि वह स्वामीजी को नीचा दिखाना चाहते थे। तो मनुष्य रूप में गुरु महाराज महर्षि दयाल उनके पास आए और तंबेह किया कि गोविंद जी के साथ छेडने की हिम्मंत कैसे की तूने ? जिस से वह बढ़ई, कांपने लगा। इस कारण उसने माफी मांगी।

घटना 6 मखदूम साहिब

स्वामीजी किसी एक भक्त को यह घटना सुना रहे थे कि सोफी संत मखदूम साहिब के एक चेले ने अपने पीर से कहा कि किसी कुतुब या पहुंचे हुए संत को दिखा दीजिए। जब ज़्यादा ही ज़िद की तो उसे कहा कि वह तुझे लकडी की एक गठडी लिए हुए शेरघडी श्रीनगर में मिलेगा। उसने तीन दिन तक उसे लकडी लिए हुए शेरघडी में आते देखा, तो तीसरे दिन वह इन के सामने खडा हो गया और कहा। बाबा तुम्ही कुतुब हो तो बताओ। कुतुब ने पहाडों की ओर अंगुली से इशारा करते हुए कहा यदि मैं कुतुब होता तो पहाड हिल जाते। चेले ने देखा कि सचमुच पहाड हिल रहे थे। स्वामीजी के अंगुली से पहाड की ओर इशारा किया तो सचमुच पहाड हिलने लगे। तो भक्त तत्कालीन उसके चरणों पर गिर पडा। भगवान के भक्त किसी भी रुप में मिल सकते हैं। उनके मन में न छाया होती हैं न वे किसी की परवाह करते हैं।

संत हा छिय बेपरवाय तिमन छ़ाय दिलस नो।

घटना 7 चावल के सत्तू। स्वामीजी के गुरु श्री शिवभरतलाल वर्मन 1931ई में श्रीनगर पधारे थे तथा एक हाउस बोट में ठहरे थे। स्वामीजी भी उनको देखने आए थे। वहां लोगों की काफी संख्या दर्शन हेतु आए थी। लोग फूलों के हार गुलदस्ते लेकर महर्षि जी के दर्शन करना चाहते थे और आशीर्वाद पाना चाहिते थे। वे बोट से बाहर आए। फूल आदि ग्रहण करके वे स्वामीजी के पास पहुंचे तो पूछा, मेरे लिए क्या लाए हो? स्वामीजी को अपने साथ लाई हुई सौगात सत्तू, दूसरों की तुलना में

मामूली सी लगी, इसलिए कुछ झिझके। महर्षिजी महाराज भांप गए और झट से स्वामीजी के जेब से रुमाल में बांधी हुई सत्तू की पोटली को निकाला और सबसे कह दिया कि इस पोटली में पीसे हुए चावल का सत्तू हैं। चख के कहा कितने मीठे हैं। क्यों ऐसी सौगात को छिपा रहे थे। अर्थात श्रद्धा तथा प्रेम पूर्वक भेंट मूल्यवान भेंट से अच्छी होती है। स्वामी जी की झिझक दूर होगई। कुछ दिनों बाद श्रीनगर से वे स्वामीजी के पास वनपूह गए। उस समय प्रोफेसर बलजीनाथ पंडित वहां उपस्थित थे जिन्होंने जून 2002 में यह बात मुझे सुनाई थी।

घटना 8 संत लालप्रकाश से भेंट–स्वामी जी लाहोर से संत लाल प्रकाश जी को देखने शाहपुर गुजरांवाला गए। स्वामी जी का उनके साथ देखे बिना ही अध्यात्मिक संबंध थे। उन्हें पता लग गया कि स्वामीजी उनके पास आरहे हैं इसलिए उन्होंने स्वामीजी की अगवाई के लिए अपने शिष्यों को भेजा और अपने निवास पर ले आए। संत लालप्रकाश बहुत ही कमाल के संत थे। महीनों के बाद समाधि से जागते और लोगों को आशीर्वाद देते। स्वामी जी से कहा कि उसने मृत्यु को जीत लिया है। स्वामीजी तथा उनमें अनेक बातें हुईं तो अंत में लालप्रकाश जी ने स्वामी को करामातें करना सीखने के लिए कुछ तरीके बताए तो स्वामीजी ने यह कह कर ऐसा करने से इन्कार कि यह निर्वान प्राप्ति में बाधक हैं।

घटना 9 कार की दुर्घटना । एक बार हरीकृष्ण रैणा के भाई श्री गिर्धारी लाल जो स्वामी जी के शिष्य थे, बंगलोर से आए कुछ संतों को लेकर अपनी कार में पहलगावं जारहे थे। उन की कार पांतछोक पहुंची ही थी कि कार भीषण दुर्घटना ग्रस्त हो गई। किंतु स्वामीजी सामने दिखाई दिए इसीलिए उसका कहना है कि वे बच गए, अन्यथा ऐसी दुर्घटना में किसी का भी ज़िंदा बचना असंभव था।

घटना 10 मुंबई में पुनर जन्म–श्रीनगर में स्वामीजी श्री भास्करनाथ के घर पर आए हुए थे। एक दिन कशमीर का कोई पहुंचा हुआ आध्यात्मिक व्यक्ति स्वामी जी के पास आया, कुछ बातें हुईं। मुक्ति की बात छेड कर उस व्यक्ति ने स्वामीजी से कहा महाराज, मैं मरने के पश्चात मुंबई में एक बडे कारोबारी के घर में जन्म लेना चाहता हूं जिसके पास काफी धन है तथा आगंतुक बच्चे के लिए एक भव्य महल

तैयार करा रहा है। वह इस ऐश व आराम का पूर्णतः उपभोग करना चाहता है। उस व्यक्ति ने मुंम्बई के उस स्थान का पूरा पता भी बता दिया। स्वमीजी की कृपा से ऐसा ही हुआ। कुछ समय बाद मम्बई में रह रहे स्वामीजी के मुख्य शिष्य पंडित दयाल श्री पृथ्वी नाथ जी ने वह ठिकाना ढूंड लिया और इस बात को सही पाया। इस बात को लिखकर स्वामीजी के पास वनपोह भेज दिया

घटना 11 शिवदर्शन। स्वामीजी अपने कुछ शिष्यों के साथ अमरनाथ स्वामी की यात्रा पर गए थे दर्शन करके वापस आरहे थे कि थकावट और भूख से निढाल हो गए थे। लगभग बेहोश होने लगे थे कि एक जटाधारी बाबा ने उन्हें पानी पिलाया तथा कुछ रोटिया देकर अदृश्य हो गया। वह और कोई नहीं स्वयं शिवजी महाराज ही थे। ऐसा स्वामीजी ने स्वयं लेखक से कहा था।

घटना 12 बालक। स्वामीजी से जब पूछा गया कि आप को पहले से किसी घटना की जानकारी कैसे होती है, तो वे कह देते कि एक छोटा बालक उनके कंधे पर बैठकर यह सब बता देता है।

घटना 13 स्वामी जी जीना नहीं चाहते थे। स्वामी जी के निर्वाण से चंद दिन पहले उनके एक शिष्य स्विटज़रलेंड के डाक्टर बॉस ने सुना था कि स्वामी जी अस्वस्थ हो गए है। उन्होंने वहां से मेडिक्ल कालेज श्रीनगर में नियुक्त स्विटज़रलेंड की एक महिला डाक्टर एरिना हॉक को निर्देश दिया कि वह तुरंत वनपोह जाकर स्वामीजी का उपचार करें। डाक्टर हॉक वनपोह पहुंचीं, देखा कि स्वामीजी ने खाना छोड दिया था। उपचार के लिए प्रयत्न तो किया किंतु स्वामीजी को कुछ भी खाने पीने या दवाई लेने की कोई इच्छा नहीं थी। वे अब ज़्यादा देर जीना नहीं चाहिते थे। यह बात मिस हॉक ने हरी कृष्ण रैणा को भेजे गए एक अपने अंतिम पत्र में लिखा था। जो उसने कारंगो स्विटज़रलेंड से जुलााई 2003 में लिखकर भेजा था। कितनी भक्त थी वह मिस हॉक! अत्यंत विनम्र पत्र लिखने के चंद सप्ताह बाद ही इस संसार को छोड कर चली गई। कुछ वर्ष पहले डाक्टर हॉक, स्वामी जी के पढने के लिए कुछ धार्मिक पुस्तकें अपने साथ लेकर वनपोह गईं थीं, तो स्वामीजी ने कहा था कि मेरे पास वनपोह आने से पहले यह सारी पुस्तकें दरिया में फेंको। एक रचना में स्वामी जी ने कहा है–

पो'जुय बूज़िव व्वन्य नो शोख परुन ग्रंथन हुंद।..... गअभ 37/1 तथा
अलिमय खोत् ब'ड छय अमल, जीवन स्वफल छुय चोन। गअभ 114/1

अर्थ–अलिम से अमल श्रेयस्कर है। तभी जीवन सफल होता है।

घटना 14 लक्ष्मणजी का अंतिम दर्शन के वासते वनपोह जाना। स्वामीजी के जीवन के अंतिम चरण अर्थात जुलाई 1973 के आखरी सप्ताह में भास्करनाथ रैणा, स्वामी लक्ष्मण जी, प्रभाजी तथा शारिका जी को अपनी गाडी में बिठा कर स्वामीजी के दर्शन के लिए वनपोह चले गए। स्वामीजी का शरीर क्षीण हो चुका था। प्रणाम हुआ तो साथ में पडा हुआ चशमा उठाकर पहना तो स्वामी लक्ष्मण जी के साथ बैठकर ही गले मिले। क्षीन आवाज़ में सब को आशीर्वाद दिया। केवल इशारों से ही भावों का आदान प्रदान किया। उसके चंद दिन पश्चात परम ज्योति में विलीन हो गए।

घटना 15 कुत्ते से बातचीत 1955 की बात है कि स्वामीजी कशमीर से गोरेगावं, मुंबई आए थे। एक बार शाम को नमक के खेतों की ओर घूमने निकले तो सामने से एक बडा डरावना कुत्ता स्वामी जी की ओर ही भागा आ रहा था। स्वामीजी ने सोमनाथ जी से कहा कि ठहरो, कुत्ते ो देखकर भागना नहीं चाहिए अन्यथा हो सकता है कि काट भी ले। कुत्ता स्वामीजी के साथ चलने लगा। भगाने पर भी न माने, दुम हिलाता साथ चलने लगा। जाने का नाम ही न ले रहा था। फिर स्वामीजी ने झुककर कुत्ते के कान में कुछ कहा तो कुत्ता वापस मुड कर तेज़ी से दूसरी दिशा की ओर चल दिया। सारांश यह कि स्वामीजी की नज़र सार्वभौम तथा त्रिकालदर्शी थी। वे उसके पूर्व जन्म को जान गए थे तथा कृपा रूपी समाधान भी बताया।

घटना 16 भारती जी के घर: एक बार मुंबई में एक प्रभु भक्त सरदारजी स्वामीजी से मिलने आए और उन्हें नज़दीक में ही रह रहे एक मराठी महात्मा जी के दर्शन करने के लिए निवेदन किया। स्वमीजी यह कहकर मान गए कि संत महात्मा के दर्शन करना पुण्य ही होता है। इनके दर्शन बडे भाग्य से ही मिलते हैं। एकादशी का पवित्र दिवस था वे जवाहर नगर में भारतीजी के आलीशान बंगले पर पहुंचे। भारतीजी उस समय पूजा कर रहे थे कि उन्होंने कमरे के दरवाज़े पर छः फुट ऊंचे कद तथा चमकीले आंखों वाले तेजवान पुरुष को खडा पाया जिस से उसका घर रोशन हो उठा। वह स्वामीजी को जाने बिना ही अनायास ही

खडा होकर उनके चरणों पर गिर पडा। स्वामीजी ने उसे गले लगाया, आनंद से वह मस्त हो गया तो स्वामीजी ने उनसे कहा कि बैठने को नहीं कहोगे। तो घर आए मेहमान के प्रति शिष्टाचार के नाते वह तुरंत जागरुक हुआ और उनको यथोचित आसन देकर सत्कार किया। उन्होंने अपने सरको गीला पाया जो गले मिलते समय स्वामी जी की आंखों से प्रसन्नता के आंसू सर पर गिरे थे। यह एक मिलन अलौकिक था। दोनों एक दूसरे की भाषा नहीं जानते थे फिर भी आध्यात्मिक एकता तथा मिलन के कारण भाषा का महत्व समाप्त होगया। वे लिखते हैं कि उसके शरीर का रोम रोम तथा मन प्रकाशमय हो उठा जिससे वह अपने तथा स्वामीजी दोनों के आत्माओं का एकीकरण साफ तोर अनुभव करने लगे थे। दोनों एक दूसरे में तुरंत विलीन हो गए। कुछ देर बाद उन्हें विदित हुआ कि स्वामीजी की आध्यात्मिक आकर्षन शक्ति द्वारा ही उन के पास आए थे। जो केवल उन्हीं को पता था और कुछ समय पश्चात स्वामीजी ने इसी बात का खुलासा किया था। भारती जी ने बडे आर्त स्वर में कहा कि "महाराज आपने आने में इतनी देर क्यों कर दी'?" स्वामीजी ने बाद में सोमनाथ पंडित से भी इस देरी का कारण बताया था कि समय पर सब काम हो जाते हैं तथा जिस के हाथ से जिस का उद्धार होना लिखा होगा उसी के हाथ से उस का उद्धार होगा। दूसरी बात यह है कि भारती जी में अहंता की मात्रा अधिक थी। जब तक मन रूपी दर्पण पूर्ण रूपसे स्वच्छ न हो जाए तभी उस में प्रभु के दर्शन हो सकते हैं। भारती जी कहते हैं कि उनके गुरु महाराज ने उन से कहा था कि समय आने पर एक उच्च कोटि के संत आकर तुम्हारी साधना को सार्थक करें गें। भारतीय फौज के एक बडे अफसर रह चुके थे और एक सफल गृहस्थी भी थे।

घटना 17 उदासीन आश्रम–गोरे गावं मुम्बई में एक उदासीन आश्रम था। उसका महंत स्वामी जी को देख कर बहुत ही आकर्षित तथा प्रभावित हुआ। उस ने आश्रम में एक दिन सत्संग का आयोजन किया था। स्वामीजी को भी ठीक तीन बजे संगत के दर्शनार्थ आने का निमंत्रण दिया। वे मान गए। ठीक तीन बजे स्वामीजी वहां पहुंच गए। सब संगत ने इन का अभिवादन खडे होकर किया। सत्संग आरम्भ हुआ। कुछ समय बाद लंगर का सेवादार महंतजी के पास आकर कान में कुछ कहने लगे। महंतजी काफी परेशान हो उठे। स्वामीजी ने पूछा कि क्या बात है महंतजी! महंतजी ने हाथ जोड कर कहा, महाराज, संगत आशा

से ज़्यादा है और प्रसाद कम पडेगा। क्या किया जाए? स्वामीजी ने कहा कि सेवादार से कहो कि वह प्रसाद का बर्तन यहां लाए और साथ में साफ कपडा भी हो। सेवक ने प्रसाद सामने रखदिया तो स्वामी जी ने थोडा सा प्रसाद अपने मुंह में डाल कर प्रसाद बांटने वाले सेवादार से कहा कि प्रसाद के बर्तन को कपडे से डक कर रखो और हाथ डालकर प्रसाद बांटते चलो। किंतु ध्यान रहे कि प्रसाद के बर्तन के कपडे को हटाया न जाए। प्रसाद बंट गया। जब अंत में कपडे को हटाया गया तो क्या देखा कि प्रसाद ज्यों के त्यों पडा है। इस पर महंत जी प्रसन्न होकर हाथ जोडकर बोले कि उन्हें अपने गरु ने यह तरकीब बताई तो थी किंतु एक दफा प्रसाद बांटते समय ऐसा हुआ कि एक संगी दूसरी बार प्रसाद लेने आया तो उसे झिडकी मिली। तब से मेरा यह गुण समाप्त हो गया। स्वामीजी से पुनः वेसा ही वरदान देने के लिए विनती की। किंतु स्वामीजी हरगिज़ नहीं माने और कहा कि प्रकृति के नियमों में संत हस्तक्षेप नहीं करते। कभी बहुत ही असाधारण स्थिति हो तो संत ऐसा कर सकते हैं। सारांश यह कि स्वामीजी हर जिज्ञासु व्यक्ति का मान रखते थे।

घटना 18 तांगे वाला.. ऐक दिन श्री सोमनाथ पंडित स्वामी जी के दर्शन के लिए वनपोह गए। बहुत देर तक स्वामीजी से बातचीत होती रही। उन्हें रात को अनंतनाग जाकर प्रातः श्रीनगर जाना था। देर होचुकी थी तो स्वामीजी से विदा मांगी, उन्होंने कहा कि कैसे जाओगे? सोमनाथजी का उत्तर था कि 4 किलो मीटर का मामला है पैदल ही गुज़ारा करना पडेगा। स्वामीजी ने आंख मूं दली और कुछ देर के बाद कहा कि वे भी सडक तक साथ चलेंगे। वे साथ चल दिए। सडक पर पहुंच कर कुछ देर रुके तभी एक टांगेवाला टांगा ले कर आरहा था। उनके सामने पहुंच कर वह स्वयं रुक गया। स्वामीजी ने सलाम का जवाब देकर पूछा, कहां जा रहे हो तो जवाब मिला अनंतनाग। यह सवारी भी अनंतनाग को जा रही है। उन्हें टांगे पर बिठाकर उसे ताकीद की कि इन्हें उस के गंतव्य स्थान तक पहुंचाना। टांगा चल पडा तो रास्ते में टांगेवाले ने कहा कि वह वनपोह आया था अपने प्रिय मित्र से मिलने और रात को ठहरने के लिए। किंतु अभी अभी मनमें कुछ हलचल उत्पन्न हुई कि अचानक उठ कर टांगा जोड कर चल दिया। मालूम नहीं कौन सी प्रेरणा मुझे विवश कर रही थी कि अपने मित्र के काफी अनुरोध करने पर भी टांगा निकालना ही पडा। मित्र की नाराज़गी की

कौन परवाह करता। तो स्वामी जी अपने भक्तों के लिए कितना खयाल रखते हैं।

घटना19 मामा जी का फोडा । एक बार सोमनाथ के मामाजी की जांग पर एक फोडा निकल आया। उपचार से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। समय निकल जाने पर फोडे से रक्त बहने लगा। कई बरी स्वामीजी से प्रार्थना की किंतु उपचार के लिए कोई दवाई न दी। इलाज तो वे निशुल्क करते थे। किंतु मामाजी को कोई दवाई नहीं दे रहे थे। कई बार विनती करने पर भी कुछ नहीं किया। एक साल तक दर्द झेलते बीत गया तो एक दिन स्वामीजी के पास आए, तो स्वामीजी ने फोडे का बारे में पूछा। मामाजी ने कहा कि अब दर्द का आदी हो गया हूं। स्वामीजी ने नदी पर जाकर एक प्रकार का घास लाने के लिए कहा और मामाजी ले आए। स्वामीजी ने पीस कर फोडे पर लगाने के लिए कहा। ऐसा करने से दो दिन में फोडे का निशान भी मिट गया। मामाजी कुछ दिनों बाद वनपोह गए तो स्वामीजी से गुस्से में कहा कि इतनी मामूली घास के लिए एक साल तक तडपता रहा मगर पहले नहीं बताया। स्वामीजी कुछ न बोले। बहुत देर बाद स्वामीजी ने मामा जी से कहा कि मेरी कमीज़ उठाओ और देखो। स्वामीजी के शरीर से कमीज़ डठाकर मामाजी ने देखा कि स्वामीजी का शरीर लाल फोडों से भरा पडा है। मामाजी ने आश्चर्य से पूछा! यह क्या ? स्वामीजी ने जवाब दिया कि कर्म भोग तो उठाना ही पडेगा। मामाजी समझ गए और रोकर कहने लगे कि आपने ऐसा क्यों किया। दयालु की दरिया दिली देखिने योग्य है कि भक्त के घातक फोडे को स्वयं अपने शरीर पर धारण करके उसे जडीबूटी से ठीक कर दिया। आह! क्या निर्मल व्यक्तित्व था उनका।

इन घटनाओं का वर्णन इस नियत से यहां किया गया है कि संसार किसी भी रूप में, रंग में दिशा में चल रहा हो, स्वामीजी जैसे संत व्यवहार में संसारी होते हुए भी संसारी दृश्य के साक्षी ही रहते हैं। स्वामीजी बाहर से संसारियों को कर्म में रत दिखाई देते थे, सुंदर वस्त्र पहनते थे, माथे पर केसर चंदन का तिलक लगाते थे, जनीव, श्रानपट, आ'टिपन पहनते थे, ऊनी दस्तरखां पर खाने की थाली रखकर खाना खाते थे, बाहर का बना हुआ खाना नहीं खाते थे। शोच के बाद हाथों में मिट्टी मलते थे आदि...। सारांश कि पूर्ण रूप से कशमीरी पंडित थे। ऐसा करना आवश्यक था क्योंकि छोटों को स्वधर्म का अनुसरण करने

की प्रेरण दी जाए, मगर अंदर से वे अकर्तृ भाव में ही रहते थे। सागर में बूंद मिल जाने के पशचात कुछ शेष न रहकर केवल एक परमसत्ता ही रहती है, कहने को कुछ भी नहीं रहता, केवल स्वयं उसमें डुबकी लगाकर ही उसे अनुभव किया जा सकता है। कोई दूसरा इस भाव को नहीं समझा सकता है। इसी अकह अवस्था को स्वामीजी पा गए थे। उन्होंने अपने सारे आध्यात्मिक तथा दूसरे अनुभवों को मूर्त रूप देकर संसार के सामने काव्य के माध्यम से रख दिया।

गोविंद अमृत उनकी ऐसी कृति है जिस में अपने आप को देखा जा सकता है। इसलिए ऐसे आदर्श कशमीरी पंडित का यह व्यवहारिक रूप लोगों के समक्ष रखा जाना आवश्यक है ताकि कशमीरी भक्त किसी भी अवस्था में अपनी संस्कृति को सुदृढ करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करते रहें। तथा इस पुस्तक के माध्यम से जटिल संसार के समस्याओं का समाधान मिल सके। साराशं यही है कि दूध से मक्खन निकालकर संसार के सामने रखा गया है। इस आनंद रूपी अमृत का पान भाग्यशाली लोग ही कर पाते हैं।

सारांश

जैसे पहले कहा गया है कि सब की मंज़िल एक है। इस एक ही मंज़िल को पाने के लिए विभिन्न दर्शनों ने जन्म लिया। इनमें काशमीर का शैवमत भी ध्यान देने के लिए स्थान चाहता है। जिसने किसी न किसी रूप में कशमीर के संतों को प्रभावित किया है। स्वामीजी ने कशमीर शैवमत का कोई गहन अध्ययन तो नहीं किया था फिर भी साधना पक्ष पर अधिक बल देते हुए जाग्रत, स्वपन तथा सुषप्ति से आगे अति दूर उडान भरी है। जिस अध्यात्मिक ऊंचाई को पाकर उस अनुभव का वे बखान करते हैं उस से साफ बात झलकती है कि संत मत भी शैवमत के ही करीब है हालांकि संतमत में शैवमत का कोई भी अभ्यास क्रम नहीं दिखाई देता है। कशमीर शैवदर्शन 36 तत्वों, तीन अवस्थाओं आदि का विवर्ण देता है और परम शिव को ही इन सब तत्वों में ओतप्रोत बताते हुए कहते हैं कि परम शिव की स्वांतत्र्य शक्ति ही अपने बिंब के रूपमें लीला करते हैं। परम शिव को तत्वों में शुमार नहीं किया गया है। स्वामीजी की लीलाओं में भी परमशिव का ही गुण गान है। दोनों में परमशिव ही लक्ष्य है। या यूं कहिए कि मनुष्य जो परमशिव का ही बिंब

है उसी वास्तविकता को पाने के लिए या उसके दर्शन के लिए ही अनथक प्रयास किया जाता है। कहते हैं –

वीद यिनय ओस ताफ प्यनय ओस,
जीव ईश्वर त्यलि ज़े'नय ओस।
जीव ईश्वर भ्रह्म् किन्य बोस, गोव्यंद.....ओस। ग,अ,भ 149,1

अर्थात जब मेरा भ्रम मिट गया तो मुझे होश आगया और पाया कि मैं गोविंद वास्त्व में गोविंद ही था तथा जीव ईश्वर की भिन्नता भ्रम मात्र थी। स्वामीजी पातन्यजली योग तथा कुन्डिलण योग आदि के लंबे तथा अपूर्ण एवं जटिल पथ के स्थान पर छोटा पथ ही दर्शाते हैं क्योंकि जीवन है ही कितना ? अर्थात अपरोक्ष मिलन के लिए प्रेरणा देते हुए जिज्ञासु लोगों के लिए अभ्यास की सरल विधि बताते है।
कुंडलिणी योग तथा पतंजली के अष्टांग योग वेदांत अथवा शून्यवाद के बारे में महामहिम श्री डा. बलजी नाथ पंडित **'श्रीः वसुगुप्तीयं शिवसूत्रम्'** के प्राक्कथन में लिखते हैं। कि "आत्मस्वरूप की भी दो अवस्थाएं होती हैं। एक होती है अज्ञानकृत संकोच से युक्त, जिसे सुषुप्ति कहते हैं। उसमें आत्मस्वरूप एकमात्र शुद्ध चेतना के रूप में चमकता रहता है, शांत स्वभाव और क्लेशहीन दशा में प्रकाशमान रहता है, परन्तु उसमें ऐश्वर्य की कोई भी अभिव्यक्ति नहीं हुआ करती है। प्राचीन माध्यमिक और योगाचार शाखाओं के बौद्ध भिक्षु चेतना के उसी स्वरूप का अभ्यास करते रहे। विवर्त्तवादी वदोंती भी प्रायः उसी स्वरूप की उपासना करते रहे। जापान के ज़ेन शाखा के बौद्ध भिक्षु अब भी उसी सौषुप्त चेतना का अभ्यास करते रहते हैं। इसी कारण से ये सभी संप्रदाय प्रायः अनीश्वरवादी हैं। वेदांती ईश्वर की ईश्वरता के मूल आधार को ब्रह्म के स्वरूप में देख नहीं पाए। अतः उस की व्याख्या के लिए ब्रह्म से अतिरिक्त तत्व माया की कल्पना करते आए। पातन्यजल योग के अभ्यासी भी सौषप्त और वैयक्तिक चेतना से आगे नहीं बढ पाए। अतः ईश्वर को पुरुष विशेष मात्र मानते रहे, सृष्टि–संहार आदि लीलाओं का सूत्रधार उसे नहीं बताते आए। वर्तमान युग के कई योग सम्प्रदायों के गुरु इसी सौषुप्त चेतना का अभ्यास सिखाते हैं, जैसे कृष्णामूर्ति, महेषयोगी आदि के सम्प्रदाय। ये सभी योग शाम्भवोपाय के भीतर नहीं आते हुए सुषुप्ति की साधना के उपाय हैं।" ...अतः

मत्तेवोदितमिदं मय्येव प्रतिबिम्बितम्।
मदभिन्नमिदं चेति त्रिधोपायः स शाम्भवः।।

आत्मदेव के स्वरूप की उत्कृष्टतर अवस्था वह है जिस में अहंरूप चेतना को ऐसी स्वसंवेदनात्मक निर्विकल्प अनुभूति हुआ करती है कि यह सारा संसार मुझसे प्रकट हुआ है, मेरे ही भीतर प्रतिबिम्बवत चमक रहा है और मुझसे सर्वथा अभिन्न है। तंत्रालोक 3–280

इस दृष्टांत की पृष्टभूमि में यह कहा जा सकता है कि स्वामीजी की स्वात्मभाव की पराकाष्ठा में वह सारी बातें स्वतःसिद्ध ही आगई हैं जिन को शैवमत आदि ने क्रमबद्ध पद्वति तथा नियमों के साथ अनुसरण करने को कहा है। स्वामीजी परमसंत थे इसलिए उनकी विचारधारा कशमीर की सांझी धरोहर है। जिसके अभ्यास तथा ज्ञानसे अध्यात्मिक पिपासा का शमन हो सकता है और जिसमें हर मानव मानव बनकर आनंद का आभास प्राप्त कर सकता है।

स्वामीजी राधास्वामी परंपरा से दीक्षित थे तथा पूर्ण संत की पराकाष्ठा को पा गए थे जिस से उन्होंने स्वतःसिद्ध ही कशमीर के स्थानीय मत अर्थात कशमीर शैव मत की ऊंचाइयों को प्राप्त किया तथा दूसरी मान्यताओं को भी परख कर जांच की, और अपनी रचनाओं में पूर्णतयः अपने आध्यात्मिक अनुभव की सफल अभिव्यक्ति की है, तथा समनवयात्मक दृष्टिकोण प्रभावात्मक ढंग से देकर एक नया तथा सरल व्यवहारिक पथ प्रस्तुत करके इसे निखारा है। जिस में कोई द्वैत नहीं, कोई दिखावा नहीं, केवल प्रेम की ही भावना है। अध्यात्मिक रहस्यों की वास्तविकता को अच्छी प्रकार से तथा सरल, अकृत्रिम तथा व्यवहारिक ढंग से जनता के सामने रखकर लोकहिताय अपना लक्ष्य पूरा किया है। इनके भजनों को सहृदयता से पढ कर गूढ रहस्यों से साधारण जनता भी लाभ उठा सकती है। इन्होंने सब के लिए विशेष कर अपने शिष्यों को मानवता की वास्तविकता को व्यवहार में लाने का प्रबल अनुरोध करके सिर्वविदित कर दिया कि प्रभु के दरबार में कोई भी दिखावा, हावभाव, ऊंच नीच, जातपात नहीं चलती। अपने अंतर को साफ तथा शुद्ध करके स्वात्म में लय होकर प्रभु के लिए छटपटाने का अनुरोध किया है जिस से कहीं भक्तों की गिनती में स्थान पाया जा सकता हैं।

अस्तु

व्याख्यात्मक टिप्पणियां एवं संदर्भ

1 विवेक चूडामणि, जगदगुरु शंकराचार्य।

2 गोविंद अमृत

3 त्रभवननाथ शास्त्री

4 नुकेल अर्थात नाक के बीच वाले पर्दे को छेदकर बना हुआ सुराख जिस के आर पार रस्सी पिरो कर बैल, भैंसा, ऊंट आदि को रोका अथवा काबू किया जाता है। त्राल के कमला वन पर्वत की एक चोटी पर नाव को रसी से बान्धने का घिसा हुआ निशान आज भी चट्टान पर दष्टिगोचर होता है जिसे अब भी लोग नाव नो'कुड (नुकेल) के नाम से पुकारते है अर्थात नाव को बांधने की जगह। उसके पास एक समतल भूमि भी है जिसे त्राग कहते हैं जिसमें नाविक संभवतः विश्राम लेते होंगे। लारीयार से ह्यरबूछू के रास्ते कमलावन के बीचमें से चढ़ाई चढ़कर सतपो'खत्रेण नाग तथा फ्रे' सनाड के बीचों बीच उस विशालकाय खड़ी चट्टान को देखा और पहुंचा जा सकता है।

5 भक्त शिरोमणि श्री पंडित रघुनाथ कुकिलू के कथन के अनुसार उस शिला के ऊपर कोई मंदिर बनाने की मनाही है। ऐसा करना शक्ति माता का अपमान है जो शुभ फलदायक नहीं है। यह बात उन्होंने लेखक से तब कही थी जब वह श्रीनगर में उन के घर दर्शनार्थ गया था। उसी दिन श्री शारिका माता के शिला रूप के ऊपर आजके निर्मित मन्दिर का शिलान्यास होना था, और उनके द्वारा इस बात का विरोध भी संदेश रूप में निर्माण समिति को भेझा गया था ऐसा उनका कथन था।

6 **नीलमत पुराण** 262 तथा **कशीर** के लिए नीचे नोट 9 को भी देखें।

नीलमत पुराण 262 पद

"कं वारि हरिणा अश्मनः देशादस्मादपाकृतम्।
कश्मीराख्यस्ततो पश्य नाम लोके भविष्यति।।" नीलमत पुराण 262

7 The Kashmiri Brahminns were Aryan Immigrants from central Asia, राजतरंगिणी 1,34A

Thompson wrote in History of India "the aryans were Long headed race of tall stature with narrow noses and fair complexion . Their purest representation are found today, mainly in kashmir,". Monier William says them finest type of aryan race.

also

a - Kashmir can claim the distinction of being the only region of India which possesses an uninterrupted series records of its history,....this is due to the preservation of documents alluded to; they testify to the continued existence among the population of the

valley of that genuine historical sense in which the Indian mind on the whole is so conspicuously deficient......Kashmirian history has well stood the test of historical criticism. The Valley of Kashmir, Chapter VII,177- to-80.

b - It is nothing to them that Kashmir was the birth place of the fair- faced Pandu race , 'and furnished sovereigns to the plain of India' Valley of Kashmir by W R Lawrence VIII/183.

c - valley of Kash. Chapter VII 184

8 It seems highly probable also that it (Kashmir) was the original dominion of Pandava princes, and that it furnished in them sovereigns to the planes of Hindustan.
The Valley of Kashmir, Lawrence-7- 183

9 रूपभवानी रहस्योपदेश पृष्ट 10.1977। डाक्टर अविनाशचंद्र दास ने 'गंगा–पुरातत्वांक, जनवरी 1933' भारतीय भौगोलिक मानचित्र का विश्लेषण करते हुए इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख किया है कि ऋग्वेद–संहिता के निर्माण कालामें आर्य–गण पंचनद, कश्मीर, बाल्हीक, गांधार, उत्तरी बिलोचस्तान और हिमालय के भू–भाग में पूरी तरह बस चुके थे और यही भू–भाग आर्यों का आदिवास है तथा वेदों में जिन नक्षत्रों का वर्नण मिलता है उनका दर्शन ऋषियों ने कशमीर में ही किया था। ऐत्तरेय–ब्राह्मण में वर्णित " परेणहिमवंतम्" का साक्ष्य मैक्डानल अपने वैदिक इंडेक्स ग्रन्थ में स्पष्ट रूपेण कर चुके हैं कि मूजवंनत उत्तर मद्र के स्पष्ट उत्तर में उत्तर कुरु का स्थान आर्यों का आदिम स्थान होना चाहिए, और यह कशमीर ही है। इसी प्राचीन भैगोलिक मानचित्र कों वैदिक–एज के लेखक आर. सी मजूमदार " वैदिक एज" पृष्ट 545 ने स्वीकार किया है। त्सिमर तथा वेवर का मत है कि उत्तर कुरु वास्तव में और कोई स्थान नहीं है कशमीर का ही सुंदरतम स्थान है। ऋग्वेदिक नदी सूक्त एवं निरुक्त में पंजाब की सबसे बडी नदी वितस्ता का मूल उद्‌गम कशमीर ही है। आजसे सताईस सौ पूर्व काशकृत्स्न व्याकरण के आधार पर कशमीर शब्द का मूल धातु **"कशिर दीप्तौ"** पर आधारित है। यही कारण हो सकता है कि कशमीरी भाषा भाषी कश्मीर को **"कशीर"** और यहां के निवासी को **'का'शुर'** कहते हैं। वास्तव में यह चिरंतन धातुज का ही व्यवहार है जो रूढ़ि के रूप में प्रयुक्त हुआ है। भातीय आर्य–भाषाओं में कशमीरी भाषा ही एक ऐसी भाषा है जिसमें अभी भी वैदिक भाषा का चिरप्राचीन शब्द–भंडार अर्थात वैदिक क्रिया का स्वरूप सुरक्षित है।

10 श्री लक्ष्मीदर कल्ला का तर्कसंगत मत यह है – "इतिहास की ऊषा में आर्यों ने इसी कशमीर घाटी में वेदों का संकलन और संग्रह किया है। उपनिषद कालीन युग में वीतरागी ऋषियों को इस कश्मीर घाटी की नैसर्गिक सुन्दरता ने भावमुग्ध किया था–5

'उपगह्वरे गिरीणां उपसंगमे नदीनां द्वियाविप्रो अजायत।' वही रूप,भ,रहस्य

11 कशमीरी भाषा का उदगम और विकास–डा़ त्रिलोकीनाथ गंजू, तथा इनके लेख "Linguistic Sociology of Ancient Kashmir'' in '*Studies of Kashmir Council of Research*, November, 1977." लाइन के नीचे का नोट।6

12 History of Indian Music Swami Prajnananda, The article of the late Raibhadur Pandit shivnaraian Shamim,ex president, Punjab Historical Society of Lahore, on "Kashmiri music" in Zamana,Cawnpore, November, 1916 says that it is highly significant fact that all Kashmiri musicians are Muslmans. The Kashmiri Pandits were theorists and chanted the shloks and mantra in set monotone.

13 Budhist Savants of Kashmir Adviatvadini Kaul'

14 Krishnamacharia has said that Sharangdev was the most important authority after Bharatmuni (300-200BC)...... पंडित शारंगदेव तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में 1210 से 1247 ई तक जदेवागिरि दक्षिन में यादव सम्राट सिंहन के दरबार में मंत्री थे। इनकी यह संस्कृत रचना 'संगीतरत्नाकर' 13वीं शताब्दी की एक अकेला आधिकारिक रचना authoritative work है जिसमें रागों, वाद्ययंत्रों तथा दूसरी तकनीकी विवर्णों जैसे राग, स्वर, ताल आदि का विस्तार से चर्चा की गई हैं। इस रचना का पहला संस्करण सुब्रामण्य शास्त्री ने 1943–44 में प्रकाशित किया। इस रचना पर कई भाषाओं में कई भाष्य भी लिखे गए हैं। शारंगदेव के दादा भास्कर थे जो 12वीं शताब्दी में कशमीर से दक्षिण में चले गए थे। 'Adviatvadini Kaul'

15 ललतादत्य – महाराजा ललतादत्य (695. 732 AD) ने एक बार दो लडकियों को एक विशेष स्थान पर रोज़ नाचते गातें देखा, इस स्थान का नाम सुरावरदमना गावं था। राजा ने इनसे नाचने गाने का कारण पूछा तो कन्याओं ने उत्तर में कहा हे राजन! उनके माता पिता ने ही रोज़ इसी स्थान पर नाचने और गाने के लिए कहा है, ऐसा क्यों है और कब से यह प्रथा चली है कोई पता नहीं। राजा ने इनकी बात सुनकर वह जगह खुदवाई और वहीं पर एक सुन्दर मन्दिर निकला। उसमें से केशव की मूर्ति प्राप्त हुई साथ में एक शिलालेख भी, जिस पर लिखा था' कि यह श्रीराम और लक्षमण ने स्थापित किया है।

16 कशमीर में यह सर्वमान्य घटना बताई जाती है जो हमने अपने बडों के मुख से सुनी है कि पीरपंडित पादशाह अर्थात महा संत ऋषिपीर माता शारिका के अनन्य प्रिय भक्त थे। एक दिन माता ने दर्शन देकर प्यार से उसे देखा तो महात्मा जीने माता को कृपालु देखकर मस्ती में निवेदन किया कि हे माता! क्या आपका ओर कोई भक्त है जो आप को मुझ से अधिक प्यारा है? माताने ज़यराम का नाम लिया। पता करते हुए ज़यराम के दर्शन हेतु उस स्थान पर

पहुंच गया जहां वह रहा करता था। एक घर के आंगन में बैठी महिलाएं ज़ीने पर एक दूसरे के पीछे पंक्ति बनाकर अगले के बालों को संवारती थीं। इसी पंक्ति में बैठकर ज़यराम अगली महिला के केशों में परभक्षी तलाश करते हुए उन्हें संवारता था। तो अचानक पंडित रे'षपीर आकर पूछने लगा कि क्या यहां ज़यराम रहता है। महिलाएं दुविधा में पड गईं क्योंकि वे केवल ज़नानज़ो'य को जानती थीं जो दग्धकाम पुरुष था और औरतों को उस की भक्ति परक जीवन की भनक भी नहीं लगी थी। आपसी बातचीत करते समय जयराम ने आहस्ता से कहा ओह! पहचाना गया और फुर्ती से उठकर मकान की ऊपरी मंज़िल के ठाकुर द्वार में जा बैठा और अंदर से कुंडी लगादी। महिलाओं ने उसे ज़यराम की ओर इशारा किया किंतु ज़यराम वहां नहीं था। वे उसे ठाकुरजी के कमरे की ओर ले गए जहां वह रहा करता था और ज़ोर लगाकर दरवाज़े को खोला तो क्या देखा कि ज़यराम मरा पडा है। अति शोक! अनायास पंडित ऋषिपीर पादशाह के मुखसे निकला। किंतु सत्य है कि तुम मुझ से भी महान भक्त हो।

16क हांगल गुन्ड, अनंतनाग, में हो गुज़रे संत द्वारा रचित रचनाओं के संकलित भंडार '**वाख पूथ्य**' से लिया गया पद। जो किसरी देवी (माता बाब् की शिष्या) के पास मौजूद है। इस प्रति की प्रतिछाया मेरे पास सुरक्षित है।

17 अंग्रज़ी हिंदी कोष, डाक्टर रघुवीर (भूमिका)।

18 Daily Exelsior April 23 2006,

19 Kashmir Shavism, The Secret Supreme Swami Laxman ji

20 कैछे'छकोट, श्रीनगर राजमार्ग पर अवंतिपुर और संगम पुल के बीच का ग्राम है। जो अवंतिपुर से चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। मूलतः यह दो गावं छेछकोट और कैग्राम दो नज़दीक ग्राम हैं। कैगाम का नाम कैवभट्ट के नाम पर पडा है। कैगावं के पास में एक विशाल शिवलिंग देखा गया था जो 1949 ई तक मौजूद था। इसके पास एक सुंदर चश्मा भी था जिस का पानी वातल आरा(एक नदी का नाम) में गिरता था। इस लिंग का अधिक भाग मिट्टी के नीचे दबा था। अनंतनाग से कशमीरी पंडितों का एक दल जिया लाल डासी के नेतृत्व में इस लिंग को सुरक्षित करवाने के लिए बिक्रमी 2006 के असोज मासमें कैगावं पहुंचे तो मुसलमानों ने रातोंरात इस लिंग को खोद कर निकाला और तोड़ कर अदृश्य कर दिया था। उन दिनों मैं छटी श्रैणी में पढ रहा था। डासी के घर मेरी बहन बियाही गई थी। मैं उनके घर में मौजूद था जहां कमेटी की बैठक हो रही थी और इस सारी घटना का व्योरा जियालाल डासी ने कमेटी को दिया। तथा सरकार को पेश करने के लिए शिकायत का नोट पास किया था। इस गावं का नाम कैव भट्ट के नाम पर ही पडा था। उसी प्रकार जिस प्रकार वाग भट्ट के नाम पर वागहोम पडा था। कैवभट्ट के बारे में कहा जाता है कि श्रीकृष्णजी ने कैव भट्ट को कशमीर से इंद्रपरस्त ले आने के लिए भीमसेन को विशेषकर भेजा था। कैव भट्ट के घर पहुंचा तो उनकी पत्नि ने बताया कि कैव भट्ट खेत पर काम कर रहे हैं। मक्की या बाजरे की

दो रोटियां तथा मिट्टी के घडे में गुरुस लेकर भीमसेन को साथ लेकर दोनों खेत की ओर चल दिए। भीमसेन ने अपना परिचय दिया। शिष्टाचार के बाद खाना आरंभ हुआ कि अपने हाथ से आधी रोटी तोडकर भीमसेन को पकडा दी। भीमसेन को नियमित खाने के तुलना में आधी रोटी ? ऊंट के मुंह में ज़ीरा। मन ही मन परेशान हो गया। कैव भट्ट जान गया और खाना आरंभ करने को कहा। भीमसेन ने आधी रोटी गौरस के साथ खाई। जीवन में पहली बार पूर्णतः तृप्त और आनंदित हुआ तो ओर खाने की इच्छा शेष नहीं रही। कैव भट्ट ने आने का कारण पूछा तो भीमसेन ने श्रीकृष्णजी की प्रार्थना सुनाई। कैव भट्ट ने हां की। हमारे पूर्वज सुनाते थे कि कैव भट्ट ने भीमसेन से कहा कि मेरी शर्त मानो तो चलूंगा। भीमसेन मान गए। कैव भट्ट ने कहा कि कशमीर की भूमि अभी तक पाप से मुक्त है कशमीर से आगे धरती पर पाप अधिक है इसलिए पाप की भूमि को हटा कर शुद्ध भूमि पर संध्योपासना की जाएगी। तो दोनों ने बारामुला के रास्ते इंद्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान किया। कशमीर से कुछ और सहयोगी भी इनके साथ चल दिए। सायं को कशमीर से बाहर किसी स्थान पर पहुंचे तो भीमसेन से दो हाथ की गहराई का घडा खोदने को कहा। भीमसेन ने घडा खोदा और कैव भट्ट उसमें उतरा और नित्य संध्योपासना की। ऐसा करते करते इंद्रप्रस्थ पहुंचने से एक दित पहले सोलह हाथ का घडा खोदा गया और कैव भट्ट संध्योपासना करता गया। यज्ञ मंडप में पहुंचकर श्रीकृष्णजी ने उनका आदर सत्कार करके उसे यज्ञ का मुख्य ब्राह्मण नियुक्त किया। आहुति का 'स्वाहा' करते समय पूरी सामग्री कैव भट्ट के मुख में चली जाती थी। इस पर अन्य ब्राह्मणों ने आपत्ति की किंतु श्रीकृष्णजी के मना करने पर चुप हुए। फिर कैव भट्ट अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त होकर शाम्वी अवस्था में हुंकारने लगे तो उनके मुंह से निकली जल, वायु से मंडप की दीवारों पर वेद की रिचाएं अंकित होने लगीं जिस पर मंडप में उपस्थित घमंडी ब्राह्मण आश्चर्य चकित रह गए।

अनुमान से ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण के कशमीर आते समय कैव भट्ट आदि कई संतों ने उनसे भेंट की होगी। जब श्रीकृष्णजी रानी यशोमती को राज्याभिषेक करने के लिए कशमीर पधारे हुए थे। जैसे नीलमत पुराण कहता है। कैवभट्ट के साथियों ने वापस कशमीर पहुंच कर यह वार्ता सुनाई होगी जो मौखिक रूपसे हम तक आपहुंची।

21 1 ऋषि अत्रेय का बनाया कर्मकाण्ड आर्यवर्त के पूर्व भाग में प्रचलित है।

2 ऋषि पाराश्वर का बनाया कर्मकाण्ड आर्यवर्त के दक्षिण भाग में प्रचलित है।

3 ऋषि गोबिल का बनाया कर्मकाण्ड आर्यवर्त के मध्य तथा उत्तरी भाग में प्रचलित है।

4 ऋषि लवगाक्ष का बनाया अलग कर्मकाण्ड काशमीर में प्रचलित हैं। जो आसुरी प्रकोप के कारण प्रायः लुप्त होचुका था।

जिसे स्वर्गी केशव भट्ट ने पुनः संकलित करके मुद्रित करवा दिया।

22 श्री माता रूपभवानी का जन्म संवत 1677 तदानुसार 1621 ईसवी ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन श्री माधवजू दर (द्यद्मर) आधुनिक सफाकदल निवासी के घर हुआ। उन दिनों मुस्लमानों के भय से कन्या का विवाह छोटी अवस्था में ही हुआ करता था। इसलिए इनका विवाह छोटी अवस्था में श्रीनगर के सप्रू परिवार में संपन्न हुआ। उन दिनों कशमीर की राजनैतिक परस्थिति अति भयानक थी। गहन तपस्या के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाना। शाह कलंदर ने माता रव्पभवानी से कहा कि मैं आपको रफ्क अर्थात चांदी से सोना बनाऊंगा। अर्थात यदि तुम इस्लाम कबूल करोगे तो शुद्ध हो जाएगी। श्री रफ्क ने कहा कि यदि तुम मेरे यहां आओगे तो मैं तुझे म्वखत् याने मोती बनाऊंगी अर्थात ब्रहमण बनाके मुक्त करूंगी। यहां अपने धर्म पर अडिग रहने का स्पष्ट संदेश है। इनके जीवन काल में ही मुगलों के गवर्नर कशमीर पर शासन करते रहे। अलीमरदां खां को छोडकर इरादत खां इफतकार खां आदि अत्यंत क्रूर तथा दमन कारी थे और हिंदुओं को ज़बरदस्ती मुसल्मान बनाते थे। कांपते हुए कशमीरी पंडित अल्क्षेश्री के पास फरयाद लेकर गए। माता के परामर्श पर गिने चुने 500 हिंदू दिवसर के रास्ते आनंदपुर पंजाब पहुंचे। गुरु खालसा तवारीख में 'भाग 3,पृष्ट 1358' भाई ज्ञान सिंह ज्ञानी तथा अपने ग्रन्थ ('सूरज प्रकाश' भाग 1, अध्याय 10) में भाई संतोष सिंह ज्ञानी लिखते हैं कशमीरी हिन्दओं की दुःख भरी दास्तान सुनने के बाद गुंरु श्री तेग बहादुर अत्यंत दुखी हुए और इस दुख के वातावरण ने सारी सभा में सन्नाटा पैदा कर दिया। ऐसे सन्नाटे को देखकर दस साल के श्रीगोविंदसिंह ने कारण पूछा तो पिताजी ने जवाब दिया कि पुत्र इस अत्याचार को रोकने के लिए किसी महापुरुष का बलिदान देना होगा। तो गोविंद सिंहजी ने कहा कि आपसे बढकर कौन महापुरुष होगा। आपकी रक्षा कौन करेगा? "भगवान" गोविंदसिंहजी ने निर्भीक होकर जवाब दिया। कश्मीरी ब्राह्मणों से यह प्रार्थना पत्र लिखवाया गया कि " हम सारे कशमीरी ब्राह्मण एक साथ मुस्लमान धर्म स्वीकार करने के लिए तैयार हैं यदि गुरु श्री तेगबहादुरजी मुस्लमान धर्म को स्वीकार कर लेंगे"। प्रार्थना पत्र लाहोर के काज़ी के पास पेश की गई और वहां से श्री तेगबहादुर की पेशी औरंगज़ेब के दरबार में हुई। इस्लाम स्वीकार न करने पर वे यह कहते हुए शहीद हुए कि सिर दिया पर धर्म न छोडा। कहा जाता है कि गुरु तेग बहादुर तथा गुरु गोविंद सिंहजी को अल्क्षेश्वरी के दर्शन हुए थे। शेष धटना तो इतिहास है।

23 अलखेश्वरी ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित "श्री रूपभवानी रहस्योपदेश"

23 कशमीरियों विशेष कर पंडित घरों में अभी भी यह कहावत है कि "वुछतोन यि जबार जंद् ,हारस ति को'रुन वंद्ज" अर्थात इस जब्बार चीथडे को देखो, आषाढ को बनाया शरद। कशमीर का गवर्नर मोहम्मद आज़िम (The valley of Kashmir, Lawrence chapter VII) सिख सेना के कशमीर की ओर कूच करने का समाचार सुन कर काबुल को भाग गया और राज दर की युवा

पत्नि को काबुल भेज दिया तथा अपने भाई जबार खां (लगबग 1816ई से 1819 ई तक) को कशमीर का गवर्नर नियुक्त किया। जबार खां भी अत्यंत ज़ालिम सूबेदार था। ऐसी कथा सर्व मान्य है कि एक दिन उस का बेटा नाव में बैठकर वितस्ता की सैर कर रहा था कि उस की नज़र एक कन्या पर पडी जो घाट पर मिट्टी से अपना हाथ धो रही थी। खां बच्चे ने लडकी की ओर इशारा करते हुए कहा कि काश मैं मिट्टी का रूप होता तो इस सुंदरी का स्पर्ष पा लेता। दो तीन बार ऐसे ही कहता गया तो लडकी उस की कुवासना को भांप गई। जवाब में लडकी ने कहा। 'हा प्योया म्यो'न्द अथ बुथिस!' अर्थात तेरे चेहरे को कोढ़ पड जाए। कुछ समय पश्चात जबार खां का पुत्र का चेहरा कोड ग्रस्त हो गया। कई उपचार करवाए गए किंतु कुछ भी लाभ न हुआ। अंत में जबार खां को शाप की घटना का समाचार मिल गया। उस मुहल्ले की सारी लडकियों को बन्दी बनाकर दरबार में लाया गया और उस के बेटे ने उसी लडकी की पहचान कर ली। लडकी को हुकुम दिया गया कि तेरे ही शाप से लडका कोडग्रस्त हो गया है इस को तुरंत स्वस्थ कर ले। लडकी ने कहा कि मेरे पावं में पहने पूले को जलाकर उसकी राख कौड पर लगा दो। ऐसा ही किया गया कुछ समय में ही लडका स्वस्थ होगया।

एक कम आयु वाली लडकी की वाक सिद्धि का कमाल देखकर जबार खां ने उसके दरबार में लिखने के लिए नियुक्त पंडितों से इस सिद्धि का कारण पूछा। डर के मारे उन्होंने कहा कि इसके दो कारण है। पहला यह कि कशमीरी पंडित किसी भी हाल में बासी खानपीन नहीं करते क्यिों कि अग्नहोत्री होने के कारण प्रातः ताज़ा अन्न की आहुति भगवान को दी जाती है। दूसरा कारण यह कि हेरथ (फाल्गुन कृष्ण द्वादशी) के पर्व पर हिमपात या बारिश होना अनिवार्य है इस समय शिव शक्ति की आराधना से प्रभु का अनुग्रह प्राप्त होकर वाकसिद्धि भी प्राप्त होती है। इस सच्चाई को सुनकर जबार खां अति क्रोधित हो उठा और दो फरमान जारी किए। पहला यह कि प्रातः काल में किसी भी पंडित घर में से धुआं न निकलने पाए। दूसरा फरमान यह कि फाल्गुण कृष्णपक्ष द्वादशी के स्थान पर आषाढ कृष्ण पक्ष द्वादशी (जून में कशमीर में अत्यंत ग्रीष्म के कारण बर्फ की कभी भी कोई संभावना नहीं होती है) को हेरथ मनाई जाए। अवज्ञा करने वालों को मुत्यु दंड दिया जाएगा। गश्त लगा कर अथवा गुप्तचर नियुक्त करके इस आदेश का कढाई के साथ पालन कराया गया। हेरथ फाल्गुण के बदले आषाढ कृष्ण द्वादशी को मनाई गई। शिव शक्ति ने मानसिक पीडा से ग्रस्त तथा त्रस्त पंडितों का मान रख लिया। द्वादशी की रात से ही हिमपात आरंभ हुआ और थमने का नाम ही नहीं लेता था। सहर्ष पूजा तो हुई किंतु सारे कशमीर की फसलें, फल से लदे पेड टूट गए तथा पौदे समूल नाश हो गए, चारों ओर से हाहाकार मच गया। जबार खां का कहर तो केवल हिंदुओं के लिए था किंतु मुसलमान भी कुदरत के कहर से न बच सके। इस्लाम के रक्षक गबराये और तुरंत शाही आदेश जारी हुआ कि तुरंत दूसरे दिन प्रातः हिंदुओं के घरों में जाकर वटक भगवान से

मुआफी मांग कर सलाम पेश की जाए। ऐसा ही किया गया और सारे मुसलमान, हिंदू घरों में आकर शिव भगवान को सलाम अर्ज़ करने लगे, वापसी पर पंडितों ने उनको प्रसाद के रूप में सूखे अखरोट दिए, यह प्रथा आजतक चली आ रही है। तब से हेरथ (शिवारात्री) के दूसरे दिन को सलाम का दिन कहा जाने लगा। उस दिन बर्फ गिरना बंद तो हो गया लेकिन कशमीर में इस कारण से मची हुई तबाही से महा विनाश हुआ। इस के पश्चात इसी वर्ष तुरंत जबार खां भी मर गया।

24 **मिरज़काक** कहा जाता है कि एक बार पठान कारदार या कारंदे ने स्वामी मिर्ज़काकजी को आदेश दिया कि धान से भरी एक बोरी को उठाकर श्रीनगर स्थित शुरायार या बटवारा घाट पर पहुंचा दे और वहां से रसीद लाकर दिखा दे। चूंकि बहुत लोग बेगार में सरकारी लगान को बोरियों में भर कर हांगल गुन्ड से श्रीनगर के लिए चल पडे थे। केवल काक जी ही रह गए थे। स्वामी काकजी को हांगलगुंड में अकेले बैठा देख कर पठान सरदार ने इन्हें भी ऐसा ही करने का आदेश दिया। आदेश न मानने की सज़ा मृत्यु दंड निश्चित था। एक अनपढ को क्या समझाता, झट से बोरी को कंधा देकर कुछ दूर चल दिए और ओझल हो गए। कुछ ही क्षणों में वे मुड कर वापस आगए और पठान सरदार को बटवारा घाट की रसीद पेश की। पठान इस चमत्कार को देख कर परेशान हो गया और मुआफी मांग कर वहां से भाग खडा हुआ। ज़ोरवार की शक्ति देखकर ऐसे कुकर्मी भागने की दौड में पहला स्थान प्राप्त करते हैं। अफगानी आकाओं का कशमीरियों पर इसी प्रकार के अनगिनत अत्याचारों का फल तब से आज तक अफगानी लोग भुगत रहे हैं।

25 **पठानों** के शासन काल में नाव में बैठे हुए पठान सोबेदार का परमानंदजी पटवारी के नाम आदेश हुआ कि नवाब के लिए खाने के वासते रसद तथा एक भेड भेजा जाए और यह भी फरमान हुआ कि कारंदों की देख रेख में यह भेड काफर नंदराम अर्थात परमानंद के कंधे पर लादकर नवाब के पास पहुंचाया जाए। फरमान बजा लाया गया और परमानंदजी ने कंधे पर कठ याने भेड लादकर नवाब के डेरे की ओर प्रस्थान किया गया। ज़ालिम साथी तथा दुखी परमानंद चल पडे तो परमानंदजी का दिल पसीजा। भेड के सर के लंबे लटकते बाल टेढे सींगों को देखकर मुक्ट धारी श्रीकृष्ण जी के ध्यान में मगन हो गया तथा अपने आराध्य श्री कृष्ण जी को संबोधित करके अपनी व्यथा स्तुति के रूप में कहनी आरम्भ की, उनका दूसरा साथी लिखता गया जिसमें तात्कालिक ज़ालिम अधिकारियों द्वारा हिंदुओं पर ज़ुलुम की दास्तान निहित है:–

26 कुलयात कृष्ण्जू राज़दान श्रीनगर 1984 जे के कलचरल अकाडमी, 1984.

27 हुमा असले महीश्वर बूद, शबशाहे कि मन दीदम......गर्वनर कशमीर

अलीमरदान खां ने रात को जो देखा था उस रूप का व्योरा दर्बार में सुनाया और पूछा कि वह कौन थे? फारसी भाषा में लिखा हुआ व्योरा देखिए।

हुमा असले महीश्वर बूद, शबशाहे कि मन दीदम। वह शायद महीश्वर था जो मैंने रातको देखा।

ज़ि बसमश जामए बर तन, ज़ुनारश मार बर गर्दन,
रवानश गंग बर सर बूद। कि.....

सारे शरीर पर बस्म मला था। गले में सांप रूपी यज्ञोपवीत पहना था गंगाजी बह रही थी। शब...। सेह चशमश बर जबीन दारद, ज़ि मेहरो माह रोशन तर। स्यह कारण दस्त बस्तह बूद। वे तीन नेत्र वाले थे जो सूर्य चंद्रमा से अधिक चमकते थे ब्रह्मा विष्णु महेश हाथ जोडे खडे थे। शबशाहे।......आदि। मनम मरदां अलीखांनम गुलामे शाहे शाहानम। अजब असरार मे बीनम।

शबशाहे कि मन दीदम। मैं अलीमरदानखां शहनशाह के गुलाम ने रातको विचित्र रहस्मय दृश्य देखा।

28 **वो'ज़ल वाव**–भारत के विरुद कशमीरियों के सशस्त्र स्वतंत्रता का गुप्त नाम। "वो'ज़ुल वाव" अथार्त लाल हवा बह चली। ऐसा वातावर्ण तैयार होना कि जिस से किसी को कुछ समंझ न आजाए कि क्या हो रहा है क्यों और कैसे हो रहा है कौन करा रहा है ताकि सारे लोग सहम जाएं।

29 गणक अंग्रेज़ी शब्द computer कमप्यूटर के लिए लेखक द्वारा दिया गया मौलिक नाम। इसी प्रकार गणकपत्री–chip गणक चक्री–CD, बटनपटी key board आदि।

30 कृष्णजू उच्च्य कोटि के भक्त कवि थे। इनकी रचनाऐं कुलियात 1984AD के नाम से कलचरल अकादमी श्रीनगर द्वारा छपवाई गई हैं। वनपूह गांव श्रीनगर काज़ीगुण्ड रास्ते पर खनबल से 3 किलोमीठर दूर पडता है। लोक–काव्य 'शिवलग्न' के रचियता श्रीकृष्णजू राज़दान के नाम का 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के भारतीय संस्करण 'भारत ज्ञानकोष' खंड एक, ज्ञानमंडल वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य कोष' में सादर उल्लेख है, तथा वैज्ञानिका तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित 'भारतीय साहित्य माला' के अन्तर्गत इन की रचना का अनुवाद संकलित किए हुए है।

31 च़ाका मटन में वह स्थान जहां विजया सप्तमी के रोज़ हिंदू लोग अपने पितरों का श्राद्ध करते हैं।

32 स्रोतः– अनंतनाग के स्वन् रईस की नाती, चूनीजी, जिसके पिता का नाम महानंदजू राज़दान वनपूह है। खतिजी ने उन्हीं को यह घटना सुनाई थी जो यहां वर्णन की गई है। एक बार नांदी नदी में पानी की कमी के कारण सूख गई। फसलें नाश होने लगीं। नफुल निकाले गए। किंतु नांदी में पानी के अभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। नांदी का पानी काफी क्षेत्रों को सैराब करता है। पानी के लिए सारे लोग त्राहि त्राहि करने लगे। तो वनपोह की रहने वाली ख'तिजी नाम की एक वरिष्ठ महिला जो सुबहान आ़रुम की पत्नि थी, कृष्णजू राज़दान के पास चली गई और रोते हुए विनती करके बोली, 'बा'यलाल

महारा! मरुनुय छाह, केंछ़ा करत् चय यथ ना'न्दी आबस'(राज़दान को आस पास के लोग प्यार से बा'यलाल के नाम से पुकारते थे)। अर्थात हे भाई लाल महाराज! क्या अब पानी के लिए मरना ही है? आप ही कुछ करो इस नांदी के पानी के लिए। श्रीकृष्णजू राज़दान ने नांदी की ओर मुखातिब होकर कहा,

"नांदी मा'ल्य वसतय वांयन त् ग्रायन, शोक बाब् सा'बन्यन पायन तल"

अर्थात हे नांदी मां! अपने पूरे जोश में पानी से लबालब भरके बह चलो, शोकबाब साहिब के पैरों को नीचे से छूते हुए।

नांदी की ओर से वापस जवाब के रूप में आवाज़ आई,

"त्ये'लि वस् ये'लि ग्रज् चान्यन पादन, पत् भोक् सा'बन्यन पायन तल।"

जब तुम्हारे पावं को छू लूंगी तब ही गर्जती हुई बहूंगी फिर शोकबाब के चर्णों के नीचे से छूकर बहूंगी। खतिजी जैसी चश्मदीद गवाहों के सामने यह गटना गटी थी उन्होंने ही चूनीजी को बताया था कि वनपोह के बो'न् मुहल्ले के सामने सडक के पार सोफीगुंड स्थित है जहां पर आस्ताना है, वहां पर ही श्रीकृष्णजू राज़दान सारी रात नदी में अपने पांव रखकर बैठे रहे तो नांदी का पानी ज़ोर शोर तथा बडे वेग से आकर आगे बढ गया और सारी प्रजा प्रसन्न होकर झूम उठी। खतजी श्री कृष्णजू राज़दान को बडे आदर की दृष्टि से देखते थे, कहा जाता है कि राज़दान साहिब परमधाम जाने के समय खतजी भी वहां उपस्थित थी।

32 क–संत, साधु, ज्ञानी और सिक्ख–यह वास्त्व में सन्त–मत रूपी विश्वविद्यालय की डिग्रयां हैं जैसे स्नातक आदि। हमारे शरीर में निचले छः चक्र होते हैं तथा तीसरे तल से ऊपर छः कंवल होते हैं, जो लोग नीचे के छः चक्रों को पार करलेते हैं वे पूर्ण योगी कहलाते हैं और जो ऊपर के पहले मंडल–सहस्रार पर पहुंच जाते हैं वे सिक्ख या सच्चे शिष्य कहलाते हैं। जो ब्रह्म देश में पहुंच जाते हैं वे ब्रह्म ज्ञानी या योगेश्वर कहलाते हैं। जो पार–ब्रह्म या दसवें द्वार तक पहुंच जाते हैं, वे साधु कहलाते हैं और जो गुरुधाम–सतलोक पहुंच जाते हैं वे संत कहलाते हैं। और जो इसके भी ऊपर की दो मंज़िलों को पार करके अनामी देश में पहुंच जाते हैं वे परम संत कहलाते हैं। जीवों को वापस अपने घर ले जाने के लिए संत इसी देश में आते हैं।

33 स्वामी जी ने नूरदीन अर्थात नुंदऋषि के पिछले जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई थी। कि सहज़ानंद पिछले जन्म में एक महा पंडित तथा भक्त था। उसके गुरु महाराज ने उसे कहा कि यदि पितरों का श्राद्ध करते समय केवल पिण्डदान के लिए ही जितना अनाज घर में हो और श्राद्ध करते समय कोई भूखा आपके पास खाना मांगने आए और घर में और कोई खाना देने के लिए न हो तो बिना झिझक के पितरों के लिए दान किए हुए पिंडों को उठाकर भूखे को खिलाने के लिए देना चाहिए। उन दिनों अनाज की उपज बहुत ही कम

होती थी। विधाता का करना ऐसा संयोग हुआ कि एक दिन गुरु महाराज अपने किसी पितर का श्राद्ध कर रहे थे। घर में केवल पिंडदान के लिए ही अन्न पका था और घर में और कुछ खाने को नहीं था। तो अचानक दरवाज़े पर अलख की आवाज़ आई कि भूखे को खाने को कुछ दीजिए। गुरु महाराज यही पिण्ड उठाकर मंगते को देने के लिए दरवाज़े पर आ गए। मांगने वाले का चेहरा गुरु ने देखा तो अपने शिष्य को देखकर अनायास गुरु के मुख से यह शब्द निकले " हा वातल्! ग्वरस् छा युथुय इमतिहान ह्य'वन ?" अर्थात हे चमार! अपने गुरु की ऐसी परीक्षा लेते है क्या? शिष्य लज्जित होकर विनीत भाव से प्रार्थना करने लगा कि चमार के बीज से चमार के घर जन्म लेना न पडे। गुरु ने कृपा करके कहा कि ठीक है। कुछ समय के पश्चात उसने चमार के घर जन्म लिया और वही है शेख इस बारे में घटना हरीकृष्ण रैणा द्वारा भेजे गए संसमृण से ली गई है। यही वार्ता उन्हों ने 28 जनवरी 2001 को महिन्दरनगर आश्रम में भी सुनाई थी, कि स्वामीजी यूसमर्ग यात्रा से लौटते हुए च्रारशरीफ पहुंचे। भक्तों ने शेख नूरदीन की दर्गाह में जाने का अनुरोध किया। जब हम (हरी कृष्ण आदि) दर्शन करके लौटे तो स्वामीजी बैठे विश्राम ले रहे थे। हमने उनसे पूछा कि "शेख नूरदीन वली, नुंदऋषि का चमार के घर जन्म लेने का क्या कारण था" तो उन्होंने शेख के पिछले जन्म की कथा सुनाई थी।

सहज़ानंद की कहानी कशमीरियों में जन विदित है। कहा जाता है कि सहज़राम नामी एक महात्मा था। उनके कोई संतान नहीं थी। उसकी पत्नि ने पति से संतान के लिए प्रार्थना की कि निःपुत्र मरना ठीक नहीं है। कोई पानी देने वाला भी पीछे रहना चाहिए। पति ने यह तर्क देकर साफ इनकार किया कि हमारी इसी जन्म में मुक्ति निश्चित है। इसलिए संतान उत्पन्न करने से फिर संसारी जाल में फंसकर आवागवन के चक्कर में पड जाएंगें। तुरिया हठ को देखते हुए उन्होंने पत्नि से कह दिया कि अच्छा! आप दूसरे दिन प्रभात स्नान करके बहती नदी के किनारे प्रतीक्षा में रहना तो कुछ कमल के फूल बह कर आऐंगें तो सबसे पहले कमल को उठाकर सूंघ लेना। उसकी पत्नि निशचिंत होकर प्रातःकाल की प्रतीक्षा कर रही थी। उस दम्पति के घर में दैनिक काम में सहायता देने के लिए एक मोचिन काफी वर्षों से रोज़ाना आती रहती थी। इनके प्रसंग को वह भी ध्यान से सुन रही थी। उस मोचिन की भी कोई संतान नहीं थी। वह ज़्यादा ही उत्सुकता से प्रभात तक जागती रही कि वह भी एक फूल को सूंघ लेगी। नहा कर देखा कि फूल बहने लगे किंतु पंडिताइन अभी तक नहीं आई। उसने झुक कर पहला फूल उठाकर बडी श्रद्धा के साथ सूंघ लिया और चली गई। प्रातः जब पंडिताइन किनारे पर पहुंची तो बहुत फूल बह चुके थे। एक फूल सूंघा मगर बेकार। नव मास के पश्चात 1377ई को, खीह जोगीपूर में रहने वाले मोची के घर एक लडका हुआ। किंतु अफसोस! नवजात दूध पी ही नहीं रहा था। तीन दिन भीत गए। नवजात शिशु कमज़ोर होने लगा फिर भी दूध पीना नहीं मानें। अन्ततः किसी ने मोची से

कहा कि उस गावं के पास में ललद्यद जाती देखी गई है (ऐसा लग रहा है कि सहज़राम जो उसी गावं में रहता था, ने ही लल को खी ग्राम में आने के लिए भेजा था।) उन से विनती की गई। वह शेख के घर आई और उसने शिशु की ओर झुक कर देखा और शिशु की ओर संबोधित होकर कहा कि ''चे'ह मालि चे'ह, ज़्यन् ये'लि न् मंदछोख, त् च्यन् क्याज़ि छुख मंदछन''। अर्थात जब चमार के गर्भ से पैदा होने में लज्जा नहीं आई तो इस का दूध पीने में क्यों लज्जा करते हो। तो उसने तुरंत दूध पीना आरंभ किया। वास्त्व में उस शिशु अर्थात नंदराम को अपना पिछला जन्म पूरी तरह याद था, कि वह नंदराम ही है। सहज़राम का अंश कमल के फूल में था जिसको सूंघ कर वह चमारिन के गर्भ में आया। इसी लिए वह अपने को नुन्द कहता था, तभी दूध पीने से हिचकिचाया था। ललद्यद के दर्शन से उस को सात्वना मिल गया। बाद में यही शिशु शेख नूरदीन या सहज़ानंद कहलाया (ऐसा अनुमान है कि सहज़राम ही शाप देने वाला गुरु था।) जो आजीवन तपस्या में व्यस्त रहकर ललद्यद का अनुयायी रहा तथा श्रुक्य –श्लोक– की प्रसिद्ध परंपरा प्रारंभ की। इन्हें शैख नूरदीन वली– नूरानी, शेखुल–आलम, आदि नामों से लोग पुकारते है। चरारि शरीफ में इनकी दर्गाह है। जिस को नवे के दशक में इस्लामी कट्टर पंथियों ने जलाया था। हर आस्था के लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। उनकी पत्नि का नाम ज़य द्यद था जो लेखक के गावं लारीयार के निकट डाडसरा ग्राम की रहने वाली थी। उनके श्रुक्य आज भी बडे प्रेम तथा चाव के साथ गाए जाते है। ललद्यद तथा इने श्रुक्य एक दूसरे से मिलते जुलते है। इसका आस्ताना चरार शरीफ में अब नया बनाया गया है और बहुत ही गर्म ज़ियारत है।

34 हारीपारीगाम, त्राल के निवासी श्री श्यामलाल बस चालक को नंदबब **(नंदलाल–नंद्म्वोत')** ने कहा था। अपनी जीवन यात्रा सुनाते हुए श्यामलाल सरकारी बस चालक ने लेखक से 1964 ई में कहा था कि उसकी गाडी को कभी कोई खरोच नहीं लगी थी। नंद बब की दास्तान सुनाते हुए कहने लगे कि श्रीनगर से जम्मू जाते हुए स्वनवार मार्ग पर खडे नंद बब ने हाथ के इशारे से गाडी रोकने के लिए कहा। गाडी रोकी गई और वे बिला झिझक के पहली सीट पर बैठ गए। जम्मू तक वे कुछ भी न बोले। जम्मू में सवारियां उतार कर बस खाली हो गई। हाथ से आगे गाडी चलाते रहने का संकेत किया। गाडी चल पडी पता नहीं था कि कहां ले जाऐंगे। केवल अपने साथ रखे थैले में से गीताजी को निकाल कर सामने वायु रोधक शीशे के साथ टिका दी। अंग्रेज़ी टोप पहने पुलिस की सी वेशभूषा पहने सारी रात चलते रहे। लक्षणपुर चुंगी का डर चालक को सता रहा था। लोहे के तंग पुलपर फौजी पहरा था। संतरी ने सिल्यूट किया और गाडी रफतार से चल दी तथा दिल्ली पहुंच कर वे उतर गए और गाड वापस चल पडी। पास में कशमीर से दिल्ली जाने की न सरकारी परमिट है न तेल न इसके लिए पैसे? परंतु कशमीर से दिल्ली तथा दिल्ली से कशमीर वापस पहुंचने तक रास्ते में न तेल डाला न तेल ही समाप्त

हुआ। अंग्रेज़ी हैट पहने फ्रंट सीट पर बैठे नंद बब की उपस्थिति में रास्ते में किसी भी नाका या चेकिंग प्वंट पर किसी ने नहीं रोका।

35 आकाशवाणी श्रीनगर द्वारा प्रसारित। दुखित मां को लेकर मुहल्ले में कुछ वरिष्ठ मुसलमान महिलाएं हबीबउलाह नवशहरी के पास गईं। दुखडा सुनकर संत ने पूछा "नाव क्या ओसुस अमिस लडकस?" नाम क्या था बालक का? बच्चे की मा ने उत्तर दिया "नाथ्"। "ना'ल्य क्या ओसुस?"क्या पहने हुए था? पलवन प्यठ म्वखत् माल। कपडे तथा ऊपर से मोतियों की माला। "नेर क्वलि प्यठ दिस आलव, नाथो!" नदी पर जाकर नाथो नाम उस को पुकारो। नदी पर जाकर मां ने पुकारा, नाथो! तो पहले पानी में मोती की माला बह कर आई, फिर इसके पीछे लडका बह कर आया। जिसे झटसे मां ने उठाकर गोद में ले लिया। यह दास्तान रेडियो कशमीर से सत्तर के दशक में प्रसारित हुआ था। तिथि याद नहीं है।

36 19 वीं शताब्दी के बीच की बात चुरसू के हलमत गनाई की है कि एक दिन गेरू आज का नूरपुर के पंडित के घर जमाई जी रात गऐ पधारे तो वह मांस लाने के लिए चुरसू गए। वहां एक बधिक रहता था नाम था, हल्मत गनाई। किंतु उसके पास मांस कुछ भी मौजूद न था। पंडित परेशान हो गया। 'जामात्रः दशमो ग्रहः' क्या करे ? कसाई तो इसका मित्र था मगर रात को भेड ज़बह करना इस्लाम धर्म के विरुद्ध है। मित्र होने के नाते कोई तरकीब न सूझी। कुछ देर के बाद भेड रखने के कमरे में गए और गला न काट कर उसकी रान काटना तय हो गया। ज्यों ही कसाई ने छुरी भेड के रान पर चलाना चाही, कहा जाता है कि भेड की ज़बान आ गई और हलमत गनाई से कहा कि रुक जाओ। मैं ने पिछले जन्म में आपके साथ ऐसा तो नहीं किया था। यह हम दोनों का अंतिम लेन देन तथा जन्म है। क्यों पुनः आवागमन के चक्र में फंसना चाहते हो। भेड की बातचीत सुनकर नूरपुर के पंडित जी हका बका रह गया और हलमत गनाई ने मन से सन्यास लिया और अपनी सारी पूंजी लोक सेवा में आन की आन में व्यय कर दी। ऐसी मान्यता है कि वे पहुंचे हुए सोफियों की श्रेणी में पहुंच गए थे। चुरसू तथा अवंतीपुर के बीच में राजमार्ग पर एंक पुल बनवाया जो आज भी विद्यमान है। इस पुलको लोग 'हलमत गनयुन कद्‌ल' या हलमत गनय का पुल, के नाम से पुकारते हैं।

37 Colonel's Report Daily Excelsior Jammu July 19, 1999

37क श्री रामजी लेखक के स्वर्गी माता राजरानी (1909 से 1955 ई), और पिता श्री नानकचंद रैणा (1905 से 1980 ई) के गुरु थे। उनकी अल्पायु में छः कन्याएं हो गईं थीं। नवंबर 1937 ई में अपने पडोसी से इन की आपसी तकरार हो गई। कस के ताने दिए गए। ताने पराकाष्ठा पर पहुंचे तो उग्र पडोसियों ने आगे भी लडकियां ही जन्मने का वाग्तीर चलाया। जो कारगर सिद्ध हुआ। छलकते नयनों से दुखी माताजी कहती गई कि वह सायं काल तक रोती रही, इतने में स्वामी रामजी भी घर पर आ पहुंचे। वे भी ताने सुन रहे थे। माताजी

की बेटा होने के लिए विनती को सुनकर तथा सांत्वना देकर प्रातः तक शांत रहने के लिए कहा और अपनी कुटिया में चले गए। वे एक शक्ति शाली संत थे। दूसरे दिन प्रातः श्रीरामजी आए और दम्पति को सामने बिठाया और कहा कि एक ही लडकी रहेगी तथा पांच मृत्यु को प्राप्त होंगी तथा अब उनके स्थान पर आप के यहां पांच लडके जन्म लेंगे। जो बाद मे सच हुआ। माता जी से किसी एक कन्या पर हाथ रखने के लिए कहा। वही लडकी जीवित रही तथा कुछ समय पश्चात अन्य पांचों कन्याएं एक ही दिन मृत्यु को प्राप्त हुईं इसके बाद दिसंबर 1938 में लेखक का जन्म हुआ।

37 ख – नासिकाग्र अर्थात नाक का अगला भाग। दो नथनों से नाक आरंभ होती है और दोनों आंखों के बीच में समाप्त होती है। अर्थात दोनों आंखों के बीच की जगह या बिंदु। अनजान लोग होंटों के पास वाला नाक का बाहरी भाग दिखाते हैं। और नाक की बाहरी नोख पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का उपदेश देते हैं। जो कि नितांत अशुद्ध है। क्योंकि नाक की बाहरी नोक पर नज़र टिकाने से एकाग्रता में कोई लाभ नहीं होता अपितु उलटा यह प्रक्रिया साधन हानि कारक हैं।

37 ग जिसके 5 शब्द ह्रींग श्रींग क्लींग सूहंग ओम और 4 मुकाम संतों ने गुप्त रखे है।

38 **हिंद समाचार** 8 जून 1998 से उदरित लेखक डाक्टर मदन मोहन शर्मा चंदीगढ। हजूर पुरनूर स्वामीजी फुर्माते हैं कि– अभ्यास करने में मनके दो अंग हैं । एक तो मन खास उमंग अभ्यास की रखता है और शौक से ऐसा करने की तडप रखता है। दूसरा यह कि मन चाहता नहीं कि अभ्यास करूं लेकिन उसको जबरन अभ्यास के लिए लगाया जाता है। जिस अभ्यासी के मन में अभ्यास की उमंग है हम उनसे बात करते हैं।

सबसे पहले अपने संत सतगुरु के स्वरूप को बाहर की तरफ ख्याल में लाए। और धुनात्मक शब्द का सुरत की ज़बान से आहसता 2 स्मरण ध्यान करें। फिर अपनी दोनों आंखें बंद करके अपनी तवजह को अंतर में छटे चकर या आज्ञाचक्र या भ्रूमध्य पर रूह के मुकाम पर कायम करें और वहां पर ही अपने संत सतगुरु का तसवुर कायम करें। और शब्द का स्मरण करते जाएं जब तक आप मुरशिद के ध्यान व तसवुर में मगन न हो जाएं। आहसता 2 नाभि चकर पर एक बोझ सा मालूम होता है फिर कंठ या शहरग में एक खफीफ सा बोझ मालूम होगा। फिर आखिरकार तीसरे तल पर दोनों आंखों के मध्य में नाक की जड पर कीडों का रींगना जैसा मालूम होता है। इस समय सांस बहुत धीरे चलती है। और सरूर आने लगता है फिर रूह याने तव जह नीचे कर तरफ फैल जाती है और यकदम सतगुरु के स्वरूप के ध्यान में लग जाती हैं। और पहले से ज्यादा सिमटाव होना शुरू हो जाता है। इसी तरह निचले चकरों पर बोझ सा मालूम होता है। और पहले से ज्यादा वृत्ति तिल के मुकाम पर ठहरती है। कुछ दिनों के बाद एक दिन यकदम शब्द झंकार ज़ोर से शुरू हो जाता

है। जो हर तरह के शब्दों से मिली होती है। गोया कि दूरसे घंटा का शब्द सुनाई देता है। इसके सुनने में तवजह खिच जाती है। इसी तरह कुछ समय अभ्यास करने के बाद जब मन और रूह दोनो आनंद में मगन हो जाते हैं। तो फिर यकदम एक लम्बा सांस आता है और इसी तरह तवजह नीचे की तरफ फैल जाती है। चूंकि मन में खास उमंग और प्रेम होता है बौर कुछ सरूर और लज़त में महव हो जाता है इसलिए तीसरी दफा खास प्रेम से तवजह ऊपर को सिमटती है। अबके हाथ पावं सुकडते हुए मालूम होते है ऐसे जैसे इनसे जान निकल रही है। फिर हृदय चक्र पर एक मामूली सा तडाका होता है। यानी किसी वस्तु के टूटने की आवाज़ आती है। और वजूद बिलकुल मुरदा सा हो जाता है। कंठ से वृत्ति सिमटने पर ऊपर की तरफ प्रकाश नज़र आने लगता है। जैसे कि कोई ऊंची चोटी वाला पहाड हो। फिर सतगुरु का स्वरूप नज़र आता है। अर्थात गर्दन से ऊपर सिर तक स्वरूप का आकार इनसानी सुरत में नज़र आता है। अभ्यासी की रूह इस रूप में खूब मगन हो जाती है। इस समय सांस का चलना बिलकुल मालूम नहीं होता। इसी हालत मन और रूह दानों खूब सरूर और आनंद में मग्न हो जाते हैं। पहले सुन्हले रंग की रोशनी नज़र आती है। और फिर इसी रोशनी के आकार और रंगका सतगुरू का मनोहर रूप नज़र आता है। और शब्द खुलता है। याने बडे ज़ोर से घंटा का शब्द सुनाई देता है। और नज़दीक आता मालूम पडता है। फिर साफ तरीन सुनाई पडती है। ऐसा लगता है कि स्वयं घंटा का रूप हो गया है। केवल आवाज़ को सुनना है न कि बजने को। ऐसा करने से हर अभ्यासी स्वयं ही जैसे घंटा और शब्द रूप हो जाता है। और अपना और सतगुरु का रूप एक ही नज़र अएगा। यह पहले पहल अभ्यासकी क्रिया है।

अर्थ यह हुआ कि सब संत फकीरों की ज़िकिर करने की तरकीब एक ही होती है कि रूह को आखों के पीछे केन्द्रित या यकसू करने के तरीके अलग भी हो सकते हैं किंतु आंखों के ऊपर ले जाने का सिर्फ एक ही साधन शब्द या कलमा इलाही है यकसूई का तरीका फिर एक बार समझाते हैं।कि यकसूई करते समय 1. कोई भी विचार न आए। 2. मन केवल नाम स्मरण या ज़िकिर तथा गुरु ध्यान में मग्न रहे। 3. खयाल आंखें के पीछे टिकाए रखें। ज़बानसे ज़ोर से बोलने की कोई ज़रूरत नहीं है। गुरु का ध्यान करने से खयाल हमेशा नाम स्मरण में ही बदल जाता है। गुरु, शब्द या कलिमा की सूरत है। अर्थात अपनेको शब्द में ही बदल जाना है। नाम स्मरण का, बाहरी संगीत से कोई सरोकार नहीं। गुरु के शरीर की सुरत शब्द की होती है। तस्सवुर का अर्थ है गुरुके बारे में ही सोचना।

39 अथ चित्तं समाधतुं नशक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।।

भगवान के नाम तथा गुणों का श्रवण मनन कीर्तन तथा श्वास के द्वारा जप आदि करने का नाम अभ्यास योग है।

40 **Kashmir Shavism by Swami Laxmanji, XVI/ 114.**

41 Kashmir Shavism by Swami Laxman Joo, op.cit, Chap.7

42 चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वार्योपि सुदुष्करम।। अर्थात अर्जुन श्रीकृष्णजी से कहते हैं कि यह मन चंचल स्वभाव वाला दृढ और बलवान है, इसलिए इसका वश करना वायु से भी अधिक दुष्कर है।

43 त्रेय बंद बंद **आंख** कान **ज़बान** ही क्यों इस का कारण यह हो सकता है कि यह तीनों अपरोक्ष या परोक्ष रूप से हर समय अर्थात दिन रात उठते बैठते सोते जागते समाध प्रमाद आदि अवस्थाओं में भी अपने कर्म में लगे रहते हैं इसीलिए इनके अंदर की और मोडने से मन को एकाग्रता केंद्र पर आने में अधिक समय नहीं लगता। जब कि शेष इन्द्रियां समय पाकर विशेष परस्थिति में ही क्रियाशील हो जाती हैं, हर समय नहीं, तथा इनके क्रियाशील होने के लिए यही तीन इन्द्रियां ज़िमेदार होती हैं। यदि कहा जाए कि आंख दूसरी दोनों इंद्रियों की तुलना में अधिक बल शाली है तो अतिषयोक्ति नहीं होगी।

44 इसीलिए आर्याओं द्वारा स्वच्छ तथा शुद्ध वातावर्ण प्रदान करके बच्चों को संस्कारित किया जाता था। आर्य लोग पूरे 16 संस्कारों का पूर्ण रूप से निष्ठा के साथ हर घर में अनुष्ठान करते है, ताकि शिशु अपनी पूर्णता को स्थिर रख सके। इनमें पुनसवन (शोख–त्–पो'नसुन या शावकस्य पुनसुनः) संस्कार भी एक है जिसको कशमीरी पंडित महिलाएं मनाती हैं। बच्चे के सर्वांगिण विकास की प्रक्रिया माता के पेट से ही आरम्भ हो जाती है। अर्थात यह संस्कार माता के पेट में आने पर ही आरंभ कर दिए जाते हैं। क्योंकि वैदिक संस्कारों का प्रभाव माता के पेट में ही बच्चे पर पडना आरंभ होता है। हमारे इतिहास के अनुसार महर्षि बामदेव, श्री हनुमान जी और अष्टावृक ने माता के गर्भ में ही वेद और शास्त्रों की विद्या प्राप्त कर ली थी। और जन्मते ही पूर्ण ज्ञानवान थे। इसी तरह माता सुभद्रा के पेट में ही अभिमन्यु ने शस्त्र विद्या प्राप्त कर ली थी और वह अपने पिता अर्जुन की गैरहाज़िरी में कौरवों के चक्र व्यूह का भेदन कर दिया था। महर्षि वालमीकीजी ने लव और कुश को युद्ध विद्या, शस्त्र प्रयोग, शास्त्रो के रहस्य गर्भ में ही सिखा दिया था। श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिए पहला संस्कार गर्भादान है।

45 क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषईश्वरः।
तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम, पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।
45क तस्य वाचकः प्रणवः, तज्जपस्तदर्थभावनम्। योगदर्शन ।।

श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा कि हे महाबाहो, निसंदेह मन चंचल, कठिनता से वश में होने वाला है अभ्यास और स्थिति ठहराव के बारे में बारंबार यत्न करने और वैराग्य से वश में होता है। 6,35

गीता अध्याय 12,9 अगर मन को मेरे में स्थापन करने के लिए समर्थ नहीं हो तो हे अर्जुन अभ्यास योग द्वारा मेरे को प्राप्त करने की इच्छा कर।

45ख Autobiography of a Yogi , Paramhans Yogananda, यदि जल्दी करना चाहे तो 30 सेकंड के लिए रीढ के गोदे में स्थित षट चक्रों में क्रमष: ध्यान करने अर्थात क्रिया योग से एक वर्ष की बचत होती है, रोज़ आठ घंटे ऐसा करने से मोक्ष होने में साढे तीन साल लगेंगे

"outward rituals cannot destroy ignorance, because they are not mutually contradictory ." wrote Shankara in his famous Century of Verses. "Realised knowledge alone destroys ignorance. Knowledge can not spring up by any other means than inquiry. 'who am I? How was this universe born? Who is its maker? What is its material cause? This is the kind of inquiry reffered to" The intellect has no answer to these questions; hence the rishis evolved yoga as the technique of spiritual inquiry. The true yogi, withholding his thoughts, will and feelings from false identification with bodily desires, uniting his mind with superconscious forces in the spinal shrines, thus lives in the world as God hath planned; he is impelled neither by impulses from the past nor by fresh motivation of human witlessness. Receiving fulfillment of his Supreme Desire he is safe in the final haven of inexhaustibly blissful Spirit. Chapter 26/254 of Autobiography of a yogi by Paramhans Yogananda. (1974)

46 एक नेत्रहीन से 20 मई 05 को इस बारे मे नरवाल में एक नेत्रहीन से सविनय निवेदन किया कि आप नींद में स्वना देखते है? उसने साफ इनकार किया कि सुना है कि सपना देखते हैं किंतु उसने तो कभी सपने का अनुभव नहीं किया है। और भी कुछ बातों की जानकारी उसने दी।

48 परमशिव का आध्यात्मिक नाटक

कशमीर शैव दर्शन के 36 तत्व अर्थात तत–वह that त्व ness & thatness

1–5	पंचभूत	आकाश स्वपन	वायु जागृत	अग्नि सुषप्ति	अप्स–जल तुरी	पृथ्वी तुरीयातीत
6–10	तनमात्रा	शब्द–	स्पर्श –	रूप–	रस–	गंध–
11–16	कर्मेन्द्रिय	वागेन्द्रिय बोलना	हस्त इंद्रिय हाथसे कर्म	पद इंद्रिय चलना	पेवंद्रिय मलत्याग	उपस्थेंद्रिय भोग उत्पति
17–20	ज्ञानेंद्रिय	श्रवण, कान	स्पर्ष, त्वचा	दर्शन,नेत्र	रस, जीवा	घ्राण, नाक

21–23	अन्तः करण तीन	बुद्धि,निर्णय Jud gement		मनस, imagi- nation	अहंकार per- sonal ego	
24–28	कंचुका, पर्दा	कला, activity	विद्या, knowing capacity	राग, interest	नियाति restriction	काल, time sequence
29–30	दो तत्व	पुरुष, soul प्रकृति, का समिक (एनरजी)				
31	माया	अगले तत्व	का स्रोत			
32–36	शुद्ध तत्व	शिव तत्व, शंभव, Being	शक्ति तत्व, शक्ति Being	सदाशिव तत्व,मंत्र महेश्वर	ईश्वर तत्व, अहं इदम	सदविद्यातत्व शुद्ध विद्या

नोटः–इकतीस्वां तत्व माया कशमीरी शिवदर्शन में शुद्ध ब्रह्म का ही अंग है। जो हर दूसरे तत्व का स्रोत है। जबकि अद्वेत वेदांत में माया का स्थान है और शुद्ध ब्रह्म भी है। राधा स्वामी पद्वति के अनुसार मायाकाल भंवर गुफातक ही है।

स्वामी जी के भजनों में शैवमत के 36 वें तत्व शुद्धविद्या से आगे अवस्था के बारे में कहा गया है कि :–

"यि ज़ाननस मंज़ तिय तति छुना, पान्य प्रज़ाव बनिय बूद।
पान मों'चुन ज़ाननुक ज़ानुना। अमा सना पथ क्या रूद।

संभावित अर्थ पहले दिया गया है।

49 ओमकार की वृहद् व्याख्या ॐ

समष्टि ॐ की मात्राएं	अ–कार	उ–कार	म–कार	अर्थ मात्र बिंदु/शुन्य
समष्टि ॐका अधिष्ठाता	विराट	हरण्यगर्भ	ईश्वर	शुद्धब्रह्म
ॐ का समष्टि शरीर	स्थूल जगत	सूक्षम जगत	कारण जगत	—
व्यष्टि ॐ का अभिमानी	विश्व	तेजस	प्राज्ञ	साक्षी– कूट
व्यष्टि ॐ का शरीर	स्थूल	सूक्षम	कारण	अशरीर

ॐ की अवस्था	जग्रत	स्वप्न	सुषुप्ति	तुर्या
ॐ के गुण	रजोगण	सतोगण	तमोगण	निर्गुण
ॐ के रंग	लाल	श्वेत	कृष्ण	रंगहीन
ॐ के देवता	ब्रहमा	विष्णु	शिव	सर्वरूप
ॐ के स्थान	दायां नेत्र	कंठ	ह्रदय	सम्पूर्ण शरीर
ॐ के कर्म	उत्पति	पालन	संहार	अक्रिय
ॐ के भोग	स्थूल	सूक्षम	आनंद	अभोक्ता
ॐ की वाणी	वैखुरी	मद्यमा	पश्यन्ति	परा
वाणी के स्थान	मुख	कंठ	ह्रदय	नाभि
बुद्धि | बाह्य प्रज्ञा | अन्तः प्रज्ञा	विज्ञान धन	अप्रज्ञा		
ॐ की उपाधि	व्यष्टि समष्टि	व्यष्टि समष्टि	व्यष्टि समष्टि	निरोपाधक

पंजाब के संत श्री **हेमराज** कृत राम पुष्पावली नामक पुस्तक में ॐ का ध्यान इस प्रकार बताया गया है कि प्रथम पद की प्रथम पद से, दूसरे पद की दूसरे पद से, तीसरे पदकी तीसरे पद से, तथा समस्त पदों को चौथे पद अर्थात साक्षी या शून्य में मिलाने से ब्रह्म का साक्षातकार होता है।

ओम ही परम तत्व का प्रतीक है:– कठोपनिषद के श्लोक 15 में कहा गया है। "सर्वे वेदा यत पदमामनन्तितपांसि सर्वानि च यत वदन्ति द्यछान्तो ब्रह्म चयम चरन्ति ततते पदमसंग्रहेणा ब्रवीतिइति यत——।" वेद जिस को लक्ष्य कहते हैं तथा जिस की इच्छा करके तपस्वी ब्रहमचर्य व्रत धारण करते हैं वह लक्ष्य ओम ही है। यह प्रतीक भी है और इस का अर्थ भी। जब भारती ऋष्यिों ने पूर्ण सत्य तथा ब्रह्मण और आत्मा की एकता को जान लिया। इस अवाक सत्य को प्रगट करने की आवश्यकता पड गई तो इसके लिए उन्हें ओम शब्द का साक्षतकार हुआ। तत्रैय उपनिषद 1.8। इसी बीच दर्शनकारों ने सतस्त विश्व विस्फोट बताया। इस शब्द को ओमं प्रतीक के बिना कोई भी अक्षर स्वर या व्यंजन व्यक्त नहीं कर सकता था। और देखा कि शंब्द सार्वभौम भी है। ओम अ, उ तथा म वर्ण से बना है। ओम शब्द बोल कर अमात्रा अर्थात बिना आवाज़ में लय हो जाता है। वैदिक ऋष्यिों ने ओमं को नाद ब्रह्म तथा शब्द ब्रह्म तथा ब्रह्म का शब्द रूप माना है। 12 श्लोकों के मण्डूकोपनिषद में आत्मा को तीन अवस्थाओं के माध्यम से व्यक्त किया है जागृत स्वपन सुषप्ति जो ओम के तीन हालतों अवस्था को व्यक्त करता है। तथा अमात्रा पद सावंड़ल्यस में अर्थात तुरीय अवस्था में आत्मा को व्यक्त किया गया है। मण्डूकोपनिषद के आठवें श्लोक में

कहा है; यह सर्व जगत ओम अक्षर ही है। भूत भविष्य तथा वर्तमान श्री ओम ही है तथा समय से परे जो कुछ भी है केवल ओम ही है। ''सर्वमहि एततब्रहमा अयम आत्मा''

शिव संहिता में कहा गया है। ''एक ओमकार जिसकी नाभि से निकल कर कुम्भक द्वारा ब्रह्मरंध्र में जा मिले और यही मंत्र जिसके मन प्राणमें बस जाए, उसको सहस्रों मंत्रो के जप की क्या आवश्यकता है।''

कशमीर की ललीश्वरी माता ने ॐ का अनुभव इन शब्दोंमें व्यक्त किया है।

अकुय ओमकार युस नाभि दरे, **कुम्ब्य** ब्रहमांडस **सुम** गरे।
अख सुय मंथ्र चे'तस करे। तस सास मंथ्र ज़न क्या करे।

अर्थात जो ओंकार को अपनी नाभिमें धारण करे। कुम्भक प्राणायमको पुल बनाकर ब्रह्मांड को पार करे गा तथा इसी मंत्र को पूर्णतया चित में धारण करे। उसे हज़ारों दूसरे मंत्र पढनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

सृष्टि के तीन देश तथा तत्व

सत्य देश	कारण तत्व
ब्रह्म देश	सूक्षम तत्व
पिण्ड देश	स्थूल तत्व

तुमरी चिनत मैं मन धारी, तुम अचिंत रह धरो प्यारा।
संशय छोड कर दृढ प्रीति और परतीत संवारा ।
यह करनी मैं आप कराओं और पहुंचाओं धर दरबार ।।

SELECT BIBLIOGRAPHY

With great Masters in India, Dr. Julian

Path of the Masters, Jhonson

Sant Samagam 1963 edition, by Sawal Singh ji

Shivlagan Parmanandji

Shri Rupabhavani Rahasia Updesh, Shree Alakh Sahiba Trust Kashmir

The Secret Supreme by Swami Laxmanji

Valley of Kashmir by Lawrence

My Froozen Turbulence in Kashmir by Jagmohan

Sufis of Kashmir, JK Cultural Acedamy

Lull Vakiani

Kuliat-Sheikh ul Allam, JK Cultural Acedamy

Raj Tarangini Kalhan Pandit by M A Stien

संत साधना के बीज शब्द डाक्टर अरविंद पाराश्वर पी. एच. डी. मानव मंदिर हुश्यार पुर

Budists Savants of Kashmir by अद्वैतवादिनी कौल

हमारे गुरुदेव सोमनाथ पंडित वसई रोड मुंबई

Autobiography of a Yogi by Swami Yogananda.

Trika Shavism in Kashmir

Moti Lal Pandit, N. Delhi, 203.

कुन्डिलिणी चक्र – 150 पृष्ठ से

चक्र	मूलाधार	स्वाधिशठान	मणिपूरक	अनाहत	विशुद्ध	आज्ञा	सहस्रार
स्थान	जनेन्द्रिय गुदा के बीच	पेडू और जनेन्द्रियां	नाभि	हृदय	कंठ	भ्रूमध्य	मस्तिष्क
आकृति	चतुष्कोन नारंगी रंग	चंद्राकार श्वेत वर्ण	अधोमुखी त्रिकोण			ज्योतर्मय लिंग श्वेत	परमशिव उनकी शक्तियां
बीज ध्वनि	लॅं	वॅं	रॅं	यॅं	हं	ॐ	: विसर्ग
बीज वर्ण	स्वर्णाभ	स्वर्णिम	स्वर्णिम	स्वर्णिम	तेजोमय	तेजोमय	तेजोमय
कमलदल	वं शं क्षं सं	वं भं मं यं रं लं	डं ढं णं तं द धं नं प यं फं	कं खं गं घं ड़ं चं छं जं झं न्यं टं ठं	अं आं इं ईं उं ऊं ऋंॠंलृं लृं एं ऐं ओं औं अं अः	हं क्षं	ॐ
बीज वाहन	ऐरावत	मकर	मेढा	हिरण	हस्ती	नाद	बिन्दु
चक्रगुण	सुरक्षा, भोजन आश्रय स्थल	प्रजनन, कुटम्ब कलपना	देखना, अहंकार, रूप	स्पर्श, सर्व में भगवत दृष्टि	शब्द, उपदेश वक्ता	आज्ञा देना सिद्धि	प्रत्येक कार्य, समर्थ, सर्व सिद्धि
तत्व	पृथ्वी, पीला वर्ण	जल हल्का नीला	अग्नि	वायु	आकाश	महत्तव	प्रत्येक तत्व
तत्व रूप	चतुष्कोन चतुर्भुज	वृत	त्रिकोन	षटकोण	निराकार	तेजोमय	प्रत्येक रूप
प्रधान ज्ञान	गंध	रस, स्वाद	दृष्टि	स्पर्ष	वर्ण	बुद्धि	चित्त
ज्ञान अवयव	नासिका	जीहवा	चक्षु	त्वचा	कर्ण	तालू मूल	मस्तिष्क
कायावयव	गुदा	जनेन्द्रियां	हाथ पैर	हाथ	वाक्	अमृत, सोम पान	स्माधि, ज्ञान
वायु	अपान	अपान	समान	समस्त शरीर में विचरण	प्राण	उदान	डदान
लोक	भूः	भुवः,नाग, मंगल	स्वः लोक, स्वर्ग	महत लोक	जनः	तपः	सत्य
ग्रह	मंगल, सूर्य सम्बंध	बुद्ध–चंद्र	रवि	गुरु चंद्र	शुक्र	सूर्य चंद्र व समस्त लोक	शनि
देवता	ब्रह्मा निर्माण	विष्णु पालक	रुद्र संहार	ईशान रुद्र	पंचवक्त्र	लिंग अर्द्ध–नारीश्वर	परब्रह्म
शक्ति के वर्ण	डाकिनी, अः फ उ	राकिनी ए,र	लाकिनी ऐ, ल	काकिनी ओ, क	शाकिनी औ, र, स	हाकिनी अं, द	महा शक्ति ह्रीं
कमल दल	चार	छः	दस	बारह	षोडस	द्वि	सहस्र
दलके वर्ण	रक्त	सिन्दूर	नील	अरुण	धूम्र	श्वेत	श्वेत
मुद्रा	अंगुष्ठ, कनिष्ठा को मिलाना	अंगुष्ठ,अनामिका को मिलाना	अंगुष्ठ, मध्यमा को मिलाना	अंगुष्ठ, तर्जनी को मिलाना		मुष्टि लिंग	योनि
ध्यान का फल	वक्ता, विनोदी, सर्वविद्या आरोग्य, मनुष्यों में श्रेष्ठ, काव्य प्रबंध में श्रेष्ठ	अहंकार विकार का नाश, श्रेष्ठ ज्ञानवान योग में रुचि	संहार पालन में समर्थ जिह्वा पर सरस्वति	योगीश्वर ईश्त्व सिद्धि परकाया प्रवेश	प्रसन्न चित त्रिलोकदर्शी चिरं जीवी	प्रत्येक कार्य में समर्थ सिद्ध पुरुष	आकाश गामी, समाधि युक्त, अमर
अनुभूति तथा परीक्षा हेतु स्वाद	मीठा स्वाद जैसे गन्ना	क्षाय कैसला जैसे आंवला	तिक्त जैसे मिर्च	अम्मल खट्टे जैसे इमली	कटु कडवा जैसे करेला	मिश्रित	अवर्णनीय परम आनंद
प्रहरी देवता	गणपति सिद्धि बुद्धि	सरस्वती ब्रहमा	लक्ष्मी विष्णु	पर्वती शिव	ईशान रुद्र प्राण शक्ति	पंचवक्त्र शिव ज्ञान शक्ति	अर्द्ध– नारीश्वर
प्रतिदिन जप संक्षा प्रहरी देवता को प्रसन्न करने के हेतु	600	6000	6000	1000	1000	1000	1000
मंत्र	गं गणपतये नमः	ॐनमो नारायणाय	ॐनमो भगवते रुद्राय स्वाहा	ॐ ह्रीं घृणिसूर्य आदित्य श्रीं	श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिने स्वाहा	ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डाय विच्चे	ह्रीं श्रीं हुं ट्/महामृत्युजय
संबन्धित उपासना मंत्र	गणेश	विष्णु	रुद्र	लेकपाल सूर्य	मातंगी सरस्वती	नृसिंह	गायत्री महामृत्युंजय
चक्र की प्रवृत्तियां	निर्माण कार्य, भय निवारण	ज्ञान, युद्ध, सम्भोग	अहंकार , विजय	योग	संत	सम्राट	योगीराज

